ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ओम् खम् ब्रह्म।।
जो आदित्य पुरुष (ईश्वर) है, वह मैं हूँ। ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है। (यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

वैदिक मञ्च, कानपुर

डॉ. कृष्णदत्त (संरक्षक) डॉ.उमेश पालीवाल (संरक्षक) स्वामी शरण (चतुर्वेद भाष्यकार) अम्बिका प्रसाद वेदव्यास (वेद पीठ संचालक) पंकज राठौर (प्रधानाचार्य, वेद विद्यालय)

★ वेद पाठ ★ प्रशिक्षण ★ पुस्तकालय ★ संस्कार

वेद पीठ 87/6 शास्त्री नगर, पुरानी रामलीला पार्क कानपुर - 208005

गायत्री साहित्य केन्द्र, 117/एच-1/02, पाण्डु नगर, जे. के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005

website - vedayan.simplesite.com

मो ★ 9839105629 ★ 6390254281 ★ 8687849004 ★ 9794392436

आत्मीय निवेदन

हमारा प्रमुख उद्देश्य सच्चे अध्यात्म को जीवन में उतारना तथा अधिकतम लोगों तक इसका प्रकाश पहुँचाना है। वेद स्थापना, वेदपाठ, स्वाध्याय, सत्संग हमारे लिए महत्वपूर्ण कार्यक्रम हैं। आप सब सहयोगी परिजन स्वयम् तो प्रतिदिन वेदपाठ का क्रम बनायें ही, अपने निवास तथा कार्यस्थल पर साप्ताहिक अथवा मासिक सत्संग का आयोजन अवश्य करें।

** * **

वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा भारतीय धर्म संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद का पाठ तथा स्वाध्याय करना हमारा परम धर्म है। हमारी मान्यताएँ, चिन्तन तथा आचार-विचार वेद के अनुकूल होना चाहिए। **स्वामी शरण**

वैदिक सर्वोदय

मूल्य - 500 रुपये

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म।।

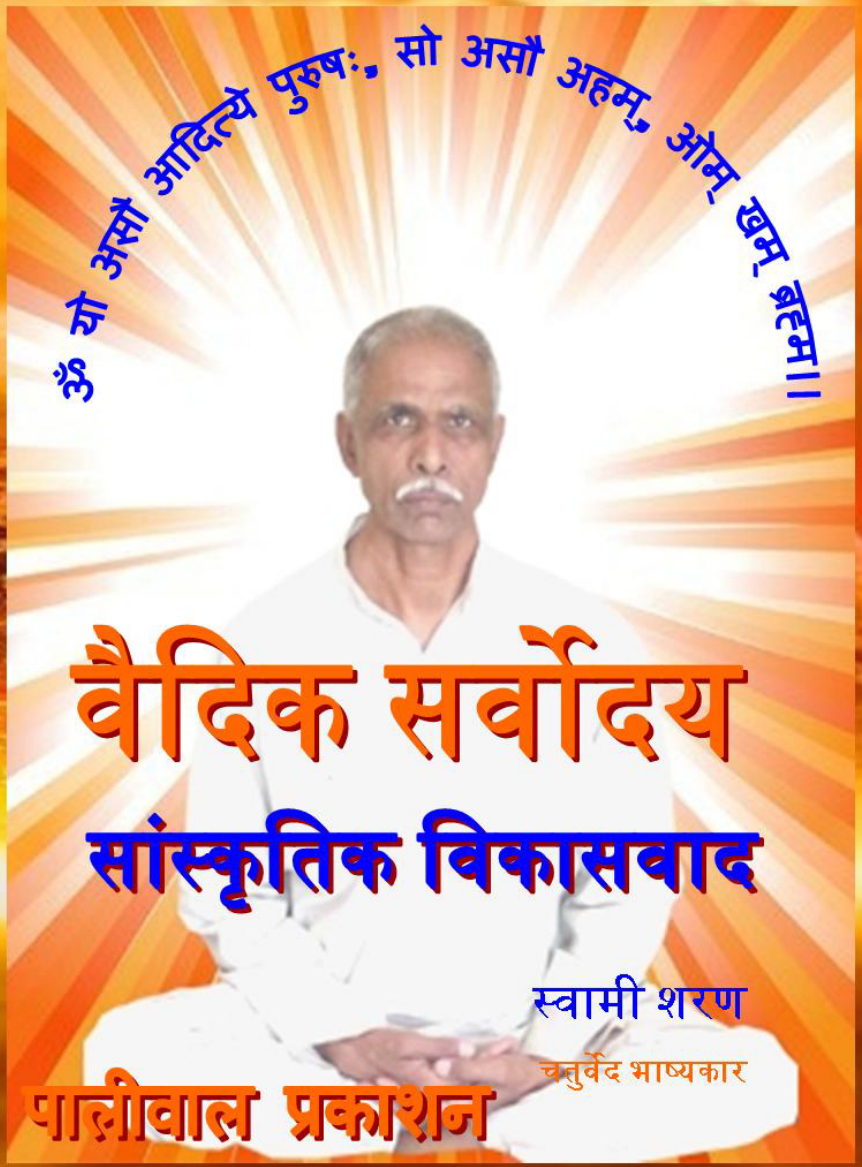

वैदिक सर्वोदय

सांस्कृतिक विकासवाद

स्वामी शरण

चतुर्वेद भाष्यकार

पालीवाल प्रकाशन

ॐ

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्।

ॐ खम् ब्रह्म। (यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

जो आदित्य पुरुष (ईस्वर) है, वही मैं हूँ, ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है।

स्वामी शरण कृत

वैदिक सर्वोदय

सांस्कृतिक विकासवाद

सम्पादक

डॉ. कृष्ण दत्त

पूर्व चिकित्सा मनोवैज्ञानिक,

केजीएमयू, लखनऊ

पालीवाल प्रकाशन

117/एच-1/02 पाण्डु नगर, जे.के. मन्दिर के सामने,

कानपुर - 208005

E-mail : paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com

website : www.vedayan.simplesdite.com

ॐ

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्।

ॐ खम् ब्रह्म। (यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

जो आदित्य पुरुष (ईस्वर) है, वही मैं हूँ, ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है।

पुस्तक	:	वैदिक सर्वोदय
लेखक	:	स्वामी शरण
सर्वाधिकार	:	लेखक के अधीन
संस्करण	:	प्रथम, मकर संक्रान्ति, 5120 युगाब्द, 2075 वि., जनवरी 2019
मूल्य	:	500.00
प्रकाशक	:	पालीवाल प्रकाशन
मुद्रक	:	पालीवाल प्रकाशन

117/एच-1/02 पाण्डु नगर, जे.के. मन्दिर के सामने,

कानपुर - 208005

मो. 9839105629, 9839034844

E-mail : paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com

website : www.vedayan.simplesdite.com

vedic sarvoday

BY SWAMI SHARAN

मूल्य : 500 रुपये

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्,
ॐ खम् ब्रह्म। (यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

विषय सूची

प्रथम भाग - विद्या

1.	विद्या और अविद्या	15
2.	ओम् साधना	22
3.	ओम् मन्त्र साधना	24
4.	ओम् नाम का महत्व	25
5.	ओम् साधना : पात्रता तथा उपासना	27
6.	भाव का महत्व	29
7.	आत्म में परमात्म भाव	31
8.	एकत्व भाव ही परम लक्ष्य	32
9.	ब्रह्म और सृष्टि	34
10.	सब कुछ ब्रह्म ही है	36
11.	परमात्मा का अग्नि स्वरूप	37
12.	परमात्मा सहनशील है	38
13.	परमात्मा का साकार रूप	39
14.	परमात्मा को मानने के बजाय जानो	40
15.	परमात्मा का आश्रय	43

16.	परम सत्य की अनुभूति	45
17.	आत्म परिष्कार	45
18.	द्वेष भाव से दूरी	46
19.	अध्यात्म	47
20.	सम्पूर्ण चिकित्सा का मूल है अध्यात्म	51
21.	योग और अध्यात्म	58
22.	वैदिक अध्यात्म चिकित्सा केन्द्र	59
23.	आध्यात्मिक स्वास्थ्य का महत्व	61
24.	स्वाध्याय का अमृत, सत्संग की संजीवनी	62
25.	अग्नि का धारण	63
26.	जीवन में देवत्व की प्राप्ति	65
27.	ईश्वर का शुद्ध स्वरूप जानना आवश्यक	66
28.	ईश्वर की कृपा	67
29.	प्रकृति का अहिंसक स्वरूप	68
30.	अहिंसा का लाभ	70
31.	अहिंसक सिद्धि	71
32.	सारा खेल मन का है	73
33.	दर्शन ही नहीं, आचरण भी श्रेष्ठ हो	77
34.	समाज का हित सोचें	78
35.	सेवा धर्म	79

36. सज्जनता का धर्म 81
37. न कर्म लिप्यते नरे 82
38. साधना से सिद्ध होती है सरस्वती 83
39. वैदिक मन्त्र साधना 84
40. ध्यान में सफलता के पाँच नियम 85
41. साधना-उपासना के आठ सोपान 89
42. साधना से ही सफलता सम्भव 93
43. सत्संग 94
44. विभिन्न आसन 96
45. उपासना-सत्संग का पवित्र अवसर 99
46. उपासना 100
47. वेद मन्त्रों पर सभी का अधिकार 101
48. विद्वानों का सम्मान, संगठन व दान : वैदिक यज्ञ 102
49. वेद स्थापना, वेदपाठ 104
50. उपासना का स्वरूप 106
51. वेद की महत्ता 107
52. वेद मन्त्रों से जाग्रत होती हैं दिव्य शक्तियां 108
53. संस्कृत व वेद सनातन धर्म के आधार हैं 109
54. वैदिक मन्त्र-साधना तथा उपचार 110
55. वेदपीठ : संकल्पना तथा संकल्प 111

56. वेद महोत्सव 112
57. वेद में सोम 114
58. नवसम्वत्सर 115
59. विनम्र प्रणाम 116
60. तमसो मा ज्योतिर्गमय 117
61. धर्म का पाठ्यक्रम आवश्यक 119
62. ब्रह्मा की देन है धर्म 121
63. ओम् महामन्त्र चिन्तन 122
64. चिन्तन धारा 135

द्वितीय भाग - अविद्या

1. महाभारत का पहला दिन इतिहास की आधार तिथि भी है 145
2. वसन्त का स्वागत 149
3. नया उल्लास, नयी उमंगें 152
4. हरित भूमि, निर्मल आकाश 153
5. सेवा में प्रथम वर्ष 155
6. धन्यवाद, आभार 156
7. पर्व 158
8. सभी को प्रकाश मिले बिना दीपावली बेमतलब 159
9. मितव्ययी पत्रिका - निःशुल्क पत्रिका 172

10. सहयोग में सावधानी 174
11. स्वस्थ चिन्तन, स्वस्थ जीवन 175
12. सदाचार की सम्पत्ति 176
13. आचरण की पवित्रता 178
14. शालीनता - शिष्टाचार 179
15. ऊर्जा : नूतन संकल्प 180
16. विशेष निवेदन 182
17. श्रावणी पर्व 183
18. आश्विन नवरात्र : साधना तथा संकल्प 185
19. अन्त्येष्टि संस्कार : हमारा संकल्प 186
20. धैर्य : अनमोल हार का मोती 187
21. गुरु-पूर्णिमा - वेदव्यास जयन्ती 188
22. सेवा में एक वर्ष और 190
23. व्रत 191
24. मन 192
25. जीवन पथ 193
26. प्रकृति और हम 194
27. हमारे कर्म व्यापक हों 196
28. सुनने का धैर्य, कहने का साहस 196
29. क्या बात हुई कि खतरे में है हस्ती हमारी 198

30. प्राचीन इमारतों की रक्षा की जाये 206
31. रविवार को कोसें या सात बजने को 207
32. हाथ नीले करने की समस्या 208
33. मुशायरा बनाम दर्शक सम्मेलन 211
34. गरमी आयी पानी गया 212
35. रंगारंग वी.आई.पी. मेला सम्पन्न 215
36. तेरी गलियों में न रखेंगे कदम, आज के बाद 217
37. बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले 219
38. हुक्म मिल जाये तो हम शहर को चौपट कर दें 221
39. अब मुफ्त में मरना हुआ मुश्किल 223
40. दिखावा ही सही कुछ तो भलाई आप ने कर दी 225
41. ओ जाने वाले लौट के फिर मत आना 228
42. कृपया दान मत दीजिए 231
43. यथास्थिति, जातिवाद और हिन्दुत्व के बीच चुनाव 234
44. समाज को बांटकर सामाजिक न्याय सम्भव नहीं 239
45. वर्तमान समस्याओं का हल 243
46. आरक्षण नहीं विकास का अवसर जरूरी 244
47. विकासवादी व्यवस्था में बेकारी को कोई स्थान नहीं 246
48. मूक 'गण' फंस गया विदेशी 'तंत्र' के जाल में 250
49. गरीबी और अधूरी शिक्षा ही विवादों की जड़ 259

50.	विकासवाद ही साम्प्रदायिक विद्वेष का समाधान	271
51.	विकासवादी अर्थव्यवस्था ही एकमात्र विकल्प	275
52.	परिवर्तन की कसमसाहट	284
53.	अर्थशास्त्रियों की उपेक्षा का परिणाम	290
54.	भारत के एक राष्ट्र होने पर उठते सवाल	294
55.	सर्वस्वीकार्य न्याय चाहिए, मुकदमे में हार-जीत नहीं	300
56.	6 घण्टे में संस्कृत सीखें	306
57.	संस्कृत सीखना इतना मुश्किल नहीं	307
58.	संस्कृत का सरल होना जरूरी	315
59.	वैज्ञानिक नागरी लिपि	316
60.	यान्त्रिक नागरी लिपि	319
61.	समाचार पत्र और हिन्दी भाषा का स्वरूप	322
62.	कविता और छन्द विज्ञान	330
63.	अन्त्यानुप्रास या तुकान्त अलंकार	336
64.	हमारा योग धक्का खाये उनका 'योगा' घर-घर जाए	338
65.	केवल दुःख नश्वर है	347
66.	सबका सम्मान करें	352
67.	जीवन में निश्चित लक्ष्य होना जरूरी	353

ॐ

भूमिका

चिन्तन प्रवाह श्री स्वामी शरण जी द्वारा विभिन्न विषयों पर लिखे गये लेखो का संकलन है। अधिसंख्य उस समय के हैं जब स्वामी जी दैनिक जागरण के संपादकीय विभाग में थे और बहुधा सम्पादकीय पृष्ठ तथा परिशिष्ट आदि में लेख एवम् समाचार आदि लिखा करते थे। कतिपय लेख अन्य पत्र-पत्रिकाओं मे समय-समय पर लिखे गये है।

जो भी हो, इन लेखों मे स्वामी जी की बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। यह तो सर्व विदित है कि स्वामी शरण जी ने अपना समूचा जीवन वेदों को सर्व ग्राह्य बनाने हेतु लगा दिया है। यह अत्युक्ति न होगी कि स्वामी जी आधुनिक वेद ऋषि हैं। अकिञ्चन जीवन-यापन करते हुए हम सबके लिए वेदों को सर्व सुलभ कर दिया है। वेदों के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों पर उनके लेख मौलिक हैं। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था पर स्वामी जी के विचार अद्भुत एवम् व्यावहारिक होने के साथ-साथ अनुकरणीय भी हैं। सच कहूँ तो इन लेखों मे स्वामी जी के दूसरे ही व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं जो कि आधारभूत ढंग से भारतीय मनीषा से ओतप्रोत है। विद्या एवम् अविद्या, दोनो पर समान रुप से एकाधिकार रख पाना उनके ही वश की बात है। तीस से भी अधिक पुस्तकों के रचनाकार का आकलन मेरी क्षमता के बाहर है। बस इतना ही कह सकता हूँ कि चिन्तन प्रवाह पर विहंगम दृष्टि डालने से पाठक को

स्वयम् उनके व्यक्तित्व की विराटता के दर्शन हो सकते हैं।

पुस्तक हर दृष्टि से उपयोगी है। यह पाठकों के चिन्तन मे व्यापकता लायेगी। मेरा ऐसा मानना है कि कभी राष्ट्र-राज्य के विभिन्न क्षेत्रों की कार्य प्रणाली मे चिन्तन प्रवाह एक सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप मे काम आ सकेगी। पुस्तक की उपादेयता हेतु मंगल कामना, स्वामी जी को स्नेहिल साधुवाद। हरि ॐ तत्सत्।

शुभाकांक्षी, आप सब का

डॉ. कृष्ण दत्त

पूर्व चिकित्सा मनोवैज्ञानिक, केजीएमयू, लखनऊ

ॐ

निवेदन

यह चिन्तन प्रवाह पुस्तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित लेखों का संकलन है। इन लेखों को इस पुस्तक के रूप में व्यवस्थित एवम् सम्पादित करने का सम्पूर्ण श्रेय हमारे अग्रज डॉ. कृष्ण दत्त जी को है। उन्होंने परिश्रम पूर्वक इस कार्य को सम्पन्न किया, यह उनकी महती कृपा और हमारे लिए उनका स्नेहिल आशीर्वाद भी है। इसके प्रकाशन में डॉ. उमेश पालीवाल जी की भूमिका ही प्रमुख है। हमारा सम्पूर्ण सेवा धर्म आप दोनो महानुभावों के सहयोग से ही सञ्चालित हो पा रहा है, अन्यथा हमारे लिए तो जीवन-यापन के साधन जुटा पाना भी कठिन कार्य है।

हम सबके प्रिय गौरव श्रीवास्तव जी की भूमिका सच्चे कर्मयोगी की है। सभी पुस्तकों को तैयार करने में उनका ही श्रम-कौशल महत्वपूर्ण है, अन्यथा हम सबकी भूमिका तो मात्र मार्गदर्शन तथा सहयोग-सहायता की है। ईश्वर की कृपा तथा डॉ. कृष्ण दत्त जी एवम् डॉ. उमेश पालीवाल जी के आशीर्वाद के साथ गौरव जी इस कार्य-योजना को सफलता तक ले जा सकेंगे, वेद-सेवा के कार्य को भविष्य में आगे बढ़ायेंगे, ऐसी हमारी अपेक्षा तथा उनके लिए शुभेक्षा-शुभकामना है।

स्वामी शरण

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्,
ॐ खम् ब्रह्म।

जो आदित्य सृष्टि में पुरुष (ईश्वर) है, वही मैं हूं,
ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है।

(यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

प्रथम भाग - विद्या

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्,
ॐ खम् ब्रह्म।

जो आदित्य सृष्टि में पुरुष (ईश्वर) है, वही मैं हूं,
ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है।

(यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

ॐ

1. विद्या और अविद्या

इसके दो सूक्त एक साथ हैं। पहले में कहा है सम्भूतिम् च विनाशम् च, यः तत् वेद उभयम् सह। सम्भूति और विनाश को जान रहे हैं साथ। एक सम्भूति है और एक विनाश है। इसे जोडेगें तो विद्या और अविद्या भी समझ में आयेगा। यह सृष्टि और जगत् दो तरह का है एक अविनाशी है और एक विनाशी है जो कुछ हम देखते हैं जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है चाहे जीव हो या निर्जीव हो एक दिन यह सूरज भी मरेगा; क्योंकि यह भी एक दिन जन्मा है। भले ही उसको मरने में करोड़ो, अरबो साल लगें, लेकिन अनन्त नहीं है। हम जिसे एक दिन कहते हैं बहुत से कीड़े मकोड़ों का जीवन काल ही उतना है कुछ लोग कुछ दिनों तक जीवित रहते हैं, कुछ महीनों तक, कुछ वर्षों तक कुछ तत्व ऐसे भी हैं जो लाखों करोड़ो अरबों वर्षों तक जीवित रहते हैं, लेकिन जो जन्मा है वह जरूर मरेगा, यह ध्रुव सत्य है। अविनाशी तो एक मात्र परमात्मा है। न उसका जन्म हुआ है न उसकी मृत्यु संभव है। जो जन्मा है वह मरेगा जरूर और जो जन्मा ही नही वह मरेगा क्यों? अब क्या केवल एक को जानने से काम चलेगा। अध्यात्म की चरम उपलब्धि उस अक्षय अविनाशी परमात्मा को जानना है। जो आदित्य पुरुष है आदित्य माने अक्षय अविनाशी, जो बिल्कुल अक्षय, अविनाशी आदित्य है उस परमात्मा को जानना अध्यात्म का चरम लक्ष्य है। यह सत्य है लेकिन केवल उस परमात्मा को जानने में लगे रहें तो उसको भी नहीं जान पायेंगे। क्योंकि उसको जानने के लिए जो हमें

साधना करनी है जो परिश्रम करना है वो इसी शरीर से करना है यह शरीर नाशवान है इसे नष्ट होना है यह सच्चाई है लेकिन इस नश्वर शरीर के बिना उस अविनाशी परमात्मा की साधना नहीं हो सकती है। साधन यही है तो हमें इस शरीर को जानना पड़ेगा जब इसको जानेंगे तभी हम इसको स्वस्थ रख पायेंगे। जब शरीर स्वस्थ रहेगा तभी हम साधना कर पायेंगे तो उस परमात्मा तक पहुँचने का साधन यह शरीर है तो उसने कहा 'सम्भूतिम् च विनाशम् च' जो सम्भूति है, सम्यक् रूपेण से हुआ है, जो सम्यक् है, सम्पूर्ण है, परिपूर्ण है, वो परमात्मा है, वो तो हमारा परम लक्ष्य है ही, अगर कोई उसकी ओर ध्यान नहीं देता है तो संसार में भटकता रहता है। तरह-तरह की चीजों में उसे एक व्यावहारिक दृष्टि में कहें तो दिशा, शान्ति नहीं मिल पाती है। उसे परमात्मा की उपलब्धि नहीं मिल पाती है, लेकिन अगर हम सारे संसार की उपेक्षा करके वहां लगे, तो कैसे हो सकता है। जैसे हम लोग एक जगह सत्संग में बैठते हैं तो एक सज्जन ने यही कहा की शरीर की मेन्टेनेन्स में क्रीम, पाउडर और सजाने संवारने में लगे रहते हैं यह तो विनाशी है एक दिन नष्ट हो जायेगा। हमें ध्यान तो परमात्मा पर देना चाहिए शरीर पर उतना नहीं देना चाहिए। शरीर तो व्यर्थ है, नश्वर है, इसे तो एक दिन छोड़ के चले जाना है। इस पर क्यों इतना ध्यान दे रहे हो, तो हमने कहा अगर शरीर इतना ही व्यर्थ है, तो यह बात शरीर को छोड़कर कहिए यह कहना क्या सम्भव है? नहीं सम्भव है। "शरीरम् माध्यम्, खलु धर्म-साधनम्" है - यह हमें जानना चाहिए यह सीढ़ी है, लक्ष्य नहीं है मंजिल नहीं है, लेकिन यह रास्ता है, इसके बिना हम वहाँ तक पहुँचेंगे नहीं। उसी को जब उसने आगे कहा - 'विद्याम् च अविद्याम् च'। विद्या को और

अविद्या को उससे पहले स्पष्ट किया है कि - विद्या का फल अन्य कुछ, अन्य अविद्या देय। विद्या से कुछ और मिलता है और अविद्या से कुछ और मिलता है। जो उस सम्भूति परन्तु अविनाशी परमात्मा को जानता है, यह विद्या है और जो असम्भूति है "विनाशम् च" जो विनाशशील है वह अविद्या है। अगर केवल हम अविद्या में लगे हैं और हमें मालूम है कि एक दिन इसे नष्ट होना है और हम उसी में लगे है, तो निश्चित रूप से हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं है।

माना गया है कि 'आहार-निद्रा-भय-मैथुनम् च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्'। जो भी जीव जगत्, कीड़े, मकोड़ों से लेकर मनुष्य तक है, सब की कुछ सामान्य आवश्यकतायें हैं, उसके बिना जीवन सम्भव नहीं है। प्रत्येक प्राणी को भोजन चाहिए। बिना भोजन के जीवन सम्भव नहीं होगा। आहार सबको चाहिए, निद्रा सबको चाहिए, खूब बढ़िया-बढ़िया खिलाओ, सोने मत दो, वह चला जायेगा। निद्रा से आशय निद्रा के लिए एक उपयुक्त जगह, एक ठीक-ठाक घर हो, जहाँ हम चैन से सो सकें तब तो निद्रा की बात पूरी होती है। भय का मतलब है सुरक्षा की भावना। हमको डर सबसे रहता ही है। अगर जंगल में पड़े हैं तो जानवरों का डर, मौसम का डर, उसी के लिए हम घर और तमाम सामाजिक व्यवस्थाएँ बनाते हैं। 'आहार निन्द्रा, भय मैथुनम् च' यह सभी में सामान्य है। मध्यकाल में बड़ा फैशन चला था तथाकथित ब्रह्मचर्य का। ब्रह्मचर्य का जो शाब्दिक अर्थ है वह ब्रह्मचर्या है। उस परमात्मा की ओर चलने के लिए जो साधना करते हैं वह ब्रह्मचर्या है। वैदिक ऋषियों की अनेक पत्नियाँ और पुत्र हुआ करते थे। अमूमन वैदिक ऋषियों के इस तरह के अपवाद मिल

सकते हैं जो परिस्थितिवश किसी को अपनाना पड़ा हो। शायद ही चार युगों के इतिहास में चार नाम ढूंढ़ना मुश्किल हो जायेगें, जो परिस्थितिवश उन्हें ऐसा कुछ करना पड़ा हो, लेकिन वो आपातकाल में मध्यकाल में यह लगा कि कुछ ऐसे लोगों की आवश्यकता पड़ी, जो घर-परिवार-संसार का मोह छोड़कर पूरी तरह से साधना में लगे। उसमें राष्ट्र की साधना भी थी और अध्यात्म की साधना भी थी। शायद अभी कुम्भ में आया है नागा बाबाओं के बारे में वो कठिन साधना है, तो कुछ आवश्यकता पड़ी। कुछ लोग उसमें गये, ये अच्छी बात है लेकिन यह कहते जाना कि - वही लोग समाज के आदर्श हैं, यह सही नहीं है। नीति-शास्त्र हमारे पाठ्यक्रम में था मैंने पढ़ा विश्वविद्यालय में नीति-शास्त्र में स्पष्ट यह प्रश्न उठाया गया कि अगर तथाकथित ब्रह्मचर्य इतना ही श्रेष्ठ मान लिया जाये, तो इस आदर्श का पालन सबको करना चाहिये। अगर पूरा समाज इस ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे, तो यह ब्रह्मचारी आयेगें कहाँ से? यह ब्रह्मचारी अपने आप समाप्त हो जायेगें। तो यह अपने आप में विरोधाभासी अवधारणा है। जो सम्भव ही नहीं है, व्यावहारिक भी नहीं है। इसलिए नीति-शास्त्र कहता है 'आहार निन्द्रा, भय मैथुनम् च, 'सामान मे तत् पशु इन्द्रियाणाम्'। ये तो सामान्य है यह तो चाहिए ही चाहिए इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। यह विनाश है - जो कहा है "विनाशम् च" और यही अविद्या है। लेकिन अगर हम इतने में सीमित रह गये तो हममें और पशुओं में अन्तर क्या रहा? दूसरा पक्ष यह है यह तो सत्य है इसके बिना तो जीवन सम्भव नही है लेकिन अगर हम इतने में सीमित रह गये तो उन कीड़े, मकोड़ों और हममे क्या अन्तर रह गया। अगर हम जानवरों की तरह केवल चरने

में लगे रहेगें तो, हममें और जानवरों में अन्तर क्या रह जायेगा? इसीलिए कहा "धर्मो हि तेषाम् अधिको विशेषो, धर्मेण हीनः पशुभिः समानः।" यह सब तो सबमें है, हममें भी है, पशुओं और कीट-पतंगों में भी है, लेकिन एक चीज मनुष्य के पास है जो उनके पास नहीं है। वह है धर्म। परमात्मा को पाने का जो एक चिन्तन है, दिशा है, दर्शन है, अच्छे और बुरे की सोच है। हमने जो व्यवस्था बनाने का विवेक पाया है - यह सिर्फ मनुष्यों के पास है। पशुओं का भी समाज होता है झुण्ड होता है, उनके कुछ आपस के नियम भी होते हैं - लेकिन उसकी सीमायें हैं। इतनी स्पष्ट वाणी, इतने स्पष्ट विचार करने की क्षमता - यह मनुष्य के पास विशेष है। यह मनन करना, विचार करना, यही हमारे पास विशेष है। इसलिए हम मनुष्य कहलाते हैं, मनुष्य माने जो मनन कर सके। अन्यथा वह मनुष्य कहाँ? वह तो पशु है। सभी पशुओं की तरह वह भी एक पशु था। इस संदर्भ में पहले भी चर्चा हो चुकी है जब उसने मनन करना सीखा, मनन करने लगे तो हम मनुष्य हो गये। इस चिन्तन, मनन से हम परम तत्व परमात्मा तक पहुँचे। उसे जानने समझने में समर्थ हुए कि वह अविनाशी है अब तक हम जिसकी चर्चा कर रहे थे यह जाना कि सब विनाशशील है, एक दिन सब मरते हैं। प्रश्न आया - 'किम् आश्चर्य मता परम्' कि - हे युधिष्ठिर सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है। उसने कहा हम रोज इतने लोगों को मरते हुए देखते हैं फिर भी हम भूले हुए बैठे होते हैं कि हमें भी मरना है। हम यह मान लेते हैं कि - जैसे हमें मरना ही नहीं है और जरा-जरा सी बात पर मार-काट में लगे रहते हैं। हम यह मान लेते हैं कि हमें नहीं मरना है सबसे बड़ा आश्चर्य यह है। हमें भी एक दिन मरना है, इधर हमारा ध्यान नहीं

जाता, यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। ये दोनो तत्व हमारे सामने आते हैं।

एक कथा है - भोज और उसके चाचा मुंज की। भोज छोटा था, उसके चाचा मुंज ने उसकी हत्या की योजना बनायी, सैनिक को भेजा, इसको बच्चे पर दया आ गयी, क्योंकि वह उसे खिलाता था। तब भोज ने अपने खून से एक श्लोक लिखकर अपने चाचा मुंज को भेजा। उसने लिखा था - इस पृथ्वी पर राम, युधिष्ठिर जैसे जाने कितने महान सम्राट हुए और चले भी गये। यह पृथ्वी किसी के साथ नही गयी। 'मुंज त्वया सह यासति' ऐसा लगता है कि मुंज यह पृथ्वी तेरे साथ जरूर जायेगी क्योंकि तुम इस पृथ्वी पर शासन के लिए अपने प्यारे-दुलारे भतीजे को मारने की स्थिति में आ गये। मुंज ने भोज को बचपन में बड़े प्यार से खिलाया था, पर किसी ने उसको यह समझा दिया कि बड़ा होकर ये उत्तराधिकारी बनेगा क्योंकि इसके पिता राजा थे। तेरा राज चला जायेगा, तू तब तक राजा है जब तक यह बच्चा है। इसलिए तुम इसे मार दो, तो हमेशा के लिए राजा हो जाओगे। इसलिए ये भी सही है कि विद्या उस परमात्मा की साधना है, जो परमतत्व है, वह हमें जानना है यह विद्या है लेकिन अविद्या यही है जो सांसारिक चीजे हैं उसे भी जानना आवश्यक है। अगर लोक व्यवहार में यह चीजें हम नहीं जानेंगे तो हमारा जीवन-यापन संभव नही होगा। अगर जीवन-यापन संभव नहीं होगा तो परमतत्व की साधना भी सम्भव नहीं होगी। इसलिए यहाँ पर यह बताया गया है कि अविद्या माने कि जो वास्तव में हमारा परम लक्ष्य नहीं है उसको हमे जानना है पर पूरी तरह से अपना जीवन अर्पित नहीं कर देना है वो अविद्या है। वह हमारे जानने का परम

लक्ष्य नहीं है, लेकिन फिर भी हमे उसे जानना आवश्यक है।

एक बड़े दार्शनिक थे। नाव से कहीं नदी पार कर रहे थे। वह नाविक से चर्चा कर रहे थे कि तुमने धर्म-शास्त्र पढ़ा है? दर्शनशास्त्र पढ़ा है? वह बोला नहीं पढ़ा है, तो दार्शनिक बोले तुम्हारी आधी जिन्दगी तो बेकार हो गयी, कुछ ज्ञान के बारे में पढ़ो। फिर वो चलते रहे। कुछ देर बाद नाविक ने दार्शनिक से कहा, महोदय आपने तैरना सीखा है? वो बोले - वो तो नहीं सीखा है, क्यों, क्या बात है? नाविक बोला - नाव तो अब डूबने वाली है। आपका तो पूरा जीवन बर्बाद होने वाला है। आप उस विद्या की साधना में तो लगे हैं अविद्या आपने नहीं पढ़ी। यहाँ पर इस सन्तुलन की आवश्यकता है। ये महत्वपूर्ण है कि हमारे लिए इस सन्तुलन की आवश्यकता है। यही वेद का वेदत्व है। यही वैदिक धर्म का मूल है कि हमें जीवन में सन्तुलन बनाना होता है। एक तरफा जीवन नहीं चल सकता है। पूरा घर-बार छोड़कर सब संन्यासी हो जायें तो यह संसार कैसे चलेगा?

अगर हम इन सारी बातों को छोड़ दें तो जानवरों की तरह हम लोग मारने-काटने में लग जायेंगे, तो फिर हम मनुष्य कैसे रहेंगे? समाज कैसे चलेगा? इसलिए हम मनुष्य हैं, मननशील है। चिन्तनशील प्राणी हैं। हमें विवेक से अपना दिशा-निर्धारण स्वयं करना है। उस परमतत्व की साधना करनी है लेकिन अपना जीवन और अपने समाज को चलाने के लिए जो सांसारिक चीजे हैं, उनको जानना है। वेद कहता है - वो अविद्या है, वो परम ज्ञान नहीं है, वो हमारे जीवन का परम लक्ष्य नही हैं, फिर भी जीवन के लिए आवश्यक है। जितनी देर हम ट्रेन में यात्रा करते हैं - उतनी देर वो सीट हमारे लिए बहुत कीमती होती है। दूसरा कोई बैठने आये तो हम

नहीं बैठने देते हैं - हमने बुक करायी है, रिजर्व करायी है। वो सीट हमारे लिए है। जैसे ही स्टेशन आने वाला होता है, हम थोड़ी देर पहले ही अपना बैग समेट कर खड़े हो जाते हैं। अब उस सीट पर कौन बैठेगा, हमे चिन्ता नहीं है। ओम् स्तुति में हम लोग पढ़ते हैं 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कत् स्वित् धनम्' त्याग पूर्वक भोग करें। वेद हमेशा सन्तुलन की बात करता है। वह इतना भोग करने की बात नहीं करता है कि आप संसार में उलझ जायें और अपने मार -काट में लगे रहें।

2. ॐ साधना

ॐ परमात्मा का मुख्य नाम है। सनातन वैदिक धर्म में सभी मन्त्रों तथा प्रार्थनाओं से पूर्व ॐ का उच्चारण अवश्य किया जाता है। वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ तथा समस्त ज्ञान-विज्ञान एवम् धर्म - संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद परमात्मा की वाणी तथा शब्द ब्रह्म के रूप में परमात्मा का प्रत्यक्ष स्वरूप भी है। चारों वेद संहिताओं में जिन मन्त्रों में मूल रूप में स्वतः ॐ शब्द आये हैं, उन्हें विशेष रूप से ॐ मन्त्र कहा जाता है। सामान्यतः वेद के सभी मन्त्र ॐ का ही वर्णन तथा स्तुति करते हैं, अतः सभी वेदमन्त्र ॐ मन्त्र ही हैं। यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय ॐ स्तुति है। इसका अन्तिम सूक्त ॐ सूक्त है। इसका अन्तिम मन्त्र ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ॐ खम् ब्रह्म।। प्रमुख ॐ मन्त्र है। इसे ॐ महामन्त्र भी कहा जाता है। वेद ब्रह्म का अमृत ॐ स्तुति है, उसका भी सार तत्व ॐ सूक्त है। उसमें भी सर्वोच्च तत्व ॐ महामन्त्र है। ॐ यो असौ

आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ॐ खम् ब्रह्म।। इसका अर्थ सहित चिन्तन-मनन करना चाहिए।

प्रतिदिन प्रातः सायम् ॐ स्तुति का पाठ तथा अर्थ चिन्तन करना चाहिये। इसके पश्चात् वेद पाठ का क्रम चल सके तो अति उत्तम है। ज्योति-स्वरूप ॐ का ध्यान भी करना चाहिये। दैनिक पारिवारिक सत्संग करना बहुत लाभप्रद है। यदि इतना सम्भव न हो सके तो साप्ताहिक - पाक्षिक सत्संग तो होने ही चाहिये। सत्संग में ॐ स्तुति की व्याख्या प्रमुख रूप से होनी चाहिए। अन्य वेद सूक्तों की चर्चा भी यथासम्भव करना चाहिए।

सत्संग तथा साधना- उपासना सहित सभी धार्मिक कार्यों में शब्द ब्रह्म वेद भगवान् को ही परमात्मा के प्रत्यक्ष प्रतीक स्वरूप में स्थापित करना चाहिये। मूर्ति, चित्र, अग्नि, जल आदि कोई प्रतीक मानना आवश्यक नहीं है। आस्था-श्रद्धा केवल परमात्मा के लिए है तथा शब्द ब्रह्म वेद ही उसका एक मात्र प्रत्यक्ष स्वरूप है।

सम्पूर्ण वेद उपलब्ध नहीं हो तो एक, दो या तीन वेद भी स्थापित कर सकते हैं। यह भी सम्भव न हो तो केवल ॐ स्तुति की स्थापना भी कर सकते हैं। यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय होने से इसे ही वेद का सूक्ष्म स्वरूप माना जा सकता है। माता-पिता, गुरु तथा विद्वानों का आदर-सम्मान तथा सेवा-सहायता अवश्य करनी चाहिये, परन्तु आस्था-उपासना केवल परमात्मा तथा वेद के लिए है। दैनिक साधना- उपासना तथा पारिवारिक सत्संग के लिए ॐ स्तुति को काव्यानुवाद सहित प्रस्तुत किया जा रहा है।

3. ओम् मन्त्र साधना

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ॐ खम् ब्रह्म। यह यजुर्वेद का अन्तिम मन्त्र है और इसका अर्थ है कि जो आदित्य पुरुष ईश्वर है, वही मैं हूँ, ओम् आकाशवत् व्यापक ब्रह्म है। यह मन्त्र सम्पूर्ण वेद के मूल तत्व को व्यक्त करता है। वेद के अन्त में प्रतिष्ठित होकर यह स्पष्ट सन्देश देता है कि यही वेद का फल है। इसी तत्व का अनुभव करना जीवमात्र का परम लक्ष्य है। यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय ईशोपनिषद् के रूप में भी बहु विख्यात है। वेद का अंश होने के कारण ही इसे उपनिषदों में प्रथम स्थान प्राप्त है। अन्य मान्य उपनिषद् आरण्यक अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों के भाग हैं। सभी उपनिषद् वेद के इसी मूल तत्व की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं जो इस एक मन्त्र में ही सूत्र रूप में कह दिया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता को उपनिषदों का सार कहा जाता है। वेदान्त आदि दर्शनों का भी प्रतिपाद्य विषय मूलतः यही तत्व है।

अतः स्पष्ट है कि यही मन्त्र वेद का मूल मन्त्र, बीज मन्त्र, गुरु मन्त्र है। इस मन्त्र का स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन-मनन करना हम सभी का कर्तव्य है। इसी से हमें अपने सत्य स्वरूप का ज्ञान हो सकेगा तथा जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी। इस मन्त्र के ऋषि स्वयम् ब्रह्मा जी है तथा देवता आत्मा। वेद में आत्मा तथा परमात्मा को अभिन्न माना गया है, अतः वेद में परमात्मा के लिए आत्मा शब्द का ही प्रयोग किया गया है। परमेश्वर तथा परमात्मा जैसे शब्द लोक में इसलिए प्रचलित हुए क्योंकि आत्मा परमात्मा में भेद माना जाने लगा। वेद तो एक ईश तथा एक आत्मा का विचार

ही मानता है।

गायत्री वेद का प्रमुख छन्द है। वेद में सर्वाधिक मन्त्र गायत्री छन्द में हैं। इसके अनेक भेद होते हैं। दैव गायत्री छन्द में मात्र एक अक्षर होता है। ओम् शब्द में एक वर्ण या अक्षर है। ओम् परमात्मा का मुख्य नाम है। यह ओम् ही दैव गायत्री मन्त्र है। सभी उपनिषद् इस ओम् का ही ध्यान करने का आदेश देते हैं तथा ओम् को जानना, समझना, पाना ही जीवन का परम लक्ष्य बताते हैं। याजुषो गायत्री में 6, प्राजापात्या गायत्री में 8, साम्नी गायत्री में 12, आसुरी गायत्री में 15, आर्ची गायत्री में 18 तथा आर्षी गायत्री में 24 वर्ण या अक्षर होते हैं। विचारणीय है कि गायत्री मन्त्र के रूप में प्रचारित ॐ भूः भुवः स्वः, तत् सवितुः वरेण्यम्। भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्। में ॐ सहित 28 तथा ॐ को हटाकर मूल मन्त्र में 27 वर्ण या अक्षर हैं। 28 अक्षरों का उष्णिक् छन्द होता है। अतः यजुर्वेद का अन्तिम मन्त्र ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ॐ खम् ब्रह्म।। ओम् मन्त्र तो है ही, यह वास्तविक गायत्री मन्त्र भी है।

4. ॐ नाम का महत्त्व

ऋग्वेद (1.3.6) का मन्त्र है, ॐ आसः चर्षणीधृतो, विश्वेदेवास आ गत। दाश्वांशो दाशुषः सुतम्।। इसका अर्थ है कि ॐ परमात्मा आनन्दमय है। सभी दिव्य गुण तथा दिव्य शक्तियाँ उसमें समाहित हैं। वह दान-शील सज्जनों तथा विद्वानों के लिए महादानी है। इस मन्त्र में प्रथम शब्द ही ॐ है, अतः इसका विशेष महत्व है।

सामान्यतः वेद पाठ में प्रत्येक मन्त्र के प्रारम्भ में ॐ का उच्चारण किया ही जाता है। सामान्यतः वेद संहिताओं में ॐ (ओम्) आसः को मिलाकर ओमासः लिखा जाता है। पदों को मिलाकर लिखने-पढ़ने को संहिता या सन्धि कहते हैं। छन्द तथा अर्थ स्पष्ट करने के लिए मन्त्रों में ऐसे संहिता पदों का व्यूह करने अर्थात् सन्धि - विग्रह करने का निर्देश प्राचीन ऋषियों ने दिया है। मन्त्रों का मूल सन्धि - मुक्त अथवा व्यूह पाठ ही हमने चारो वेदों के सरल पाठ के रूप में प्रस्तुत किया है। ॐ परमात्मा का मुख्य नाम है, निज नाम है। ॐ अव्यय है अर्थात् इस शब्द में व्याकरण के किसी नियम से परिवर्तन नहीं होता है। यह लिङ्ग, वचन, कारक से परे है। इसमें न कोई उपसर्ग लगता है, न प्रत्यय। ॐ शब्द पूर्णरूपेण अविकारी है। वह एक ही है, अतः उसका द्विवचन या बहुवचन नहीं बन सकता। परमात्मा का नाम भी उसके जैसे गुणों वाला ही है। इसीलिए ॐ नाम प्रमुख है, शेष सभी नाम गुणवाची हैं, अतः नाम नहीं हैं, वास्तव में स्तुति हैं। परमात्मा का नाम केवल ॐ ही है।

ऋग्वेद के उक्त मन्त्र में बताया गया है कि ॐ परमात्मा आनन्द को धारण किये हुए है, आनन्दमय है। सभी देवशक्तियाँ उसी में समाहित हैं। अतः ॐ से पृथक् किसी देवता की कोई आवश्यकता नहीं है, कोई विशेष महत्व तो नहीं ही है। सभी देव उसके अंश मात्र हैं, गुणमात्र हैं। ॐ सूर्य है तो अन्य देव एक किरण मात्र हैं, वह महासागर है तो अन्य देव एक परमाणु मात्र हैं। वह दानियों के लिए महादानी है। वह सुत को देता है। सुत का सामान्यतः अर्थ सन्तान है। हम सब उस परमात्मा के लिए सन्तान ही तो हैं। सु धातु का अर्थ उत्पन्न करना है, परमात्मा से ही हम सब उत्पन्न हैं, अतः हम

परमात्मा के सुत हैं। सु धातु का अर्थ ऐश्वर्य होना भी होता है। हम परमात्मा के सुत होने के कारण ऐश्वर्यवान् हैं, अतः सुत कहे जाने योग्य हैं। सु धातु का अर्थ आसवन करना, रस निकालना भी होता है। हम परमात्मा की चेतना का रस आसवन करने में समर्थ होते हैं तो भी सुत कहलाने के अधिकारी बनते हैं। सुत का एक अन्य भाव सु - अच्छा, श्रेष्ठ, सुन्दर भी हो सकता है। त प्रत्यय है पूर्णतावाची। अर्थात् सुत ऐसा हो जिसमें श्रेष्ठता की पूर्णता हो, जो पूर्णतः श्रेष्ठ हो। परमात्मा का सुत तो ऐसा होना ही चाहिये। हमें परमात्मा की इस गरिमा के निर्वाह का प्रयास अपनी क्षमता भर करना चाहिये, परमात्मा की कृपा से सफलता तो मिलेगी ही।

5. ॐ साधना : पात्रता तथा उपासना

ॐ आनन्दमय, सर्वदेवमय है, दानियों के लिए तथा सुत के लिए महादानी है तो हमें भी यह सब कुछ दे सकता है, दे ही रहा है। बस केवल हममें पात्रता होनी चाहिए। परमात्मा ने हमसे एक ही मांग की है, स्पष्ट किया है कि उसके पास सब कुछ है तथा वह उदार महादानी भी है। परन्तु वह देता है दानियों को एवम् सुत को। हमें दानी बनना होगा, परमात्मा का अनुग्रह अनुदान पाने के लिए देना भी सीखना होगा। जो देना नहीं जानते, वे पाने के अधिकारी नहीं है। हमे सुत होना होगा, श्रेष्ठ गुणों को, श्रेष्ठ आचरण को अपने जीवन में पूर्णता देनी होगी। परमात्मा का अनुदान निकृष्ट लोगों के लिए नहीं हो सकता है।

यजुर्वेद के एक मन्त्र (2.13) में कहा गया है कि वेगवान्

चञ्चल मन यजनीय परमात्मा की उपासना करे। विराट परमात्मा इस यज्ञ को (जीवन रूपी यज्ञ) विस्तृत करे। इस निर्मल यज्ञ को (यज्ञमय जीवन को) भलीभांति धारण करें। सभी विद्वान् आनन्द प्राप्त करें, ॐ को हम अपने जीवन में प्रतिष्ठित करें, ॐ हमें प्रतिष्ठा प्रदान करे।

मन बहुत शक्तिशाली है, वेगवान् है, चञ्चल है। मन ही मस्तिष्क की चेतना शक्ति है, वही हमारे सभी कर्मों का सञ्चालन कर्ता तथा उत्तरदायी है। मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। अतः मन श्रेष्ठ, सुन्दर कल्याणकारी होना आवश्यक है। इसके लिए मन को यजनीय परमात्मा की उपासना करनी चाहिये। यज् धातु के तीन अर्थ होते हैं, 1. देवपूजा, 2. संगतिकरण, 3. दान। देवपूजा का अर्थ है दिव्यगुण सम्पन्न का सम्मान सेवा, सहयोग करना। समाज के परोपकारी वेद प्रचारक विद्वान ही देव हैं। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार विद्वांसो हि देवाः अर्थात् विद्वान् ही देव हैं। उनका सम्मान करें, सेवा करें, सहयोग करें जिससे वे वेद तथा वैदिक संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते रह सकें। संगतिकरण-संगठन भी आवश्यक हैं क्योंकि एकाकी प्रयास सफल नहीं हो सकते। दान तो देते ही रहना है अन्यथा सामाजिक कार्य हो ही नहीं सकेंगे। परमात्मा यजनीय है। इस प्रकार देवपूजा, संगतिकरण, दान के रूप में यजन या यज्ञ परमात्मा के लिए तथा उसके ज्ञान वेद के लिए करना ही चाहिये। परमात्मा यज्ञमय है। वह तो सृष्टि यज्ञ कर ही रहा है, हमें उसके लिए, उसके वेद ज्ञान के लिए, उसके सुतों के लिए तथा दिव्य प्रकृति के लिए यज्ञ करना चाहिये। हमें प्रार्थना करनी चाहिये कि वह बृहस्पति अर्थात् विराट और महान् परमात्मा हमारे इस यज्ञ को

फैलाये, विस्तार दे। हम इस विराट सामाजिक दायित्व को समझें तथा हम भी वेद प्रचार यज्ञ को फैलायें, विस्तार दें, विस्तृत करें। इस निर्मल यज्ञ को धारण करें, जिससे सभी देवशक्तियाँ इस महायज्ञ में आनन्दित हों। हम अपने जीवन में ॐ को प्रतिष्ठित करें तथा ॐ हमें प्रतिष्ठा प्रदान करे।

6. भाव का महत्त्व

ॐ स्तुति (मन्त्र 15) में कहा गया है कि गतिशील सृष्टिकर्ता (ॐ परमात्मा) स्पन्दनशील चेतन तथा अविनाशी है। यह शरीर अन्त में भस्म हो जाने वाला है। अतः हे प्राणी! ॐ का स्मरण करो, ॐ की सामर्थ्य (असीम शक्ति) का स्मरण करो तथा अपनी सामर्थ्य तथा उसकी सीमाओं का स्मरण करो। ॐ के कृतित्व का तथा अपने कृतित्व का स्मरण करो।

परमात्मा ॐ ऋत को उत्पन्न कर उसके अनुसार सृष्टि की गति तथा रचना का नियामक है। गति, स्पन्दन, सृजन ॐ में ही निहित है। वही अमृत अविनाशी है। अब दूसरी ओर विचार करो, यह शरीर अन्त में भस्म हो जाने वाला है। जीवों का शरीर हो, प्रकृति का शरीर, वेद पर्वत आदि विराट सृष्टि हो, उसका अन्त होना ही है। अतः हे प्राणी ॐ का स्मरण करो, उस ॐ की सामर्थ्य का स्मरण करो तथा अपनी सामर्थ्य का स्मरण करो। ॐ की कृति विराट सृष्टि का स्मरण करो तथा अपने कृतित्व का स्मरण करो। ॐ के स्वरूप का स्मरण रहे, उसकी सामर्थ्य तथा अपनी सामर्थ्य, शक्ति-क्षमता तथा सीमाओं का स्मरण रहे, ॐ के तथा अपने कृतित्व का स्मरण

रहे तो श्रेष्ठ विचार रहेंगे, जीवन उत्कृष्ट बना रहेगा, जीवन सफल होगा।

इसमें (मन्त्र 17) कहा गया है कि सत्य का मुख स्वर्णिम पात्र से ढँका हुआ है। सत्य के दर्शन में चमक-दमक ही बाधा है। जिनके पास धन-वैभव है, वे उसकी चमक में खोये हैं। वे साधनहीन विद्वान सज्जनों के निर्मल हृदय नहीं देख पाते हैं। विद्वान साधक भी वैभव की चमक से वञ्चित होकर अपनी भावना तथा चिन्तन को साधनहीनता के कारण समाज तक पहुँचा नहीं पाते हैं। समाज और सत्य ज्ञान के बीच वैभव की चमक बाधा बनी रहती है। परन्तु इस स्थिति से मुक्त होना आवश्यक है। ईशोपनिषद् के ऋषि ने यहाँ एक वाक्य जोड़ दिया है कि हे पूषन्, (पोषण प्रदान करने वाले परमात्मन्) सत्य धर्म को देखने के लिए उस आवरण को दूर कर दो जिससे हम सत्य का स्वरूप देख सकें। हे पूषन्, जिसे ज्ञान के पोषण की आवश्यकता है, उन्हें ज्ञान-विवेक प्रदान करो तथा जिनको संसाधनों की आवश्यकता है, उनको वह भी प्रदान करो। आवश्यकतानुसार पोषण प्रदान करो। हे पूषन्, पोषण देने वाले परमात्मन्, सभी को उसकी आवश्यकता के अनुसार पोषण प्रदान करो। यही तो हवन है। हवन शब्द हू धातु से बना है जिसका अर्थ ही है आदान-प्रदान करना तथा देना। हम सबको हवन करना चाहिए, इसका अर्थ है कि हम अपनी क्षमता के अनुसार समाज को दें तथा अपनी आवश्यकता के अनुसार ही लें। दम्भ या वैभव प्रदर्शन के लिए संग्रह करना उचित नहीं है। ॐ स्तुति के प्रथम मन्त्र में ही कहा गया है कि त्यागपूर्वक भोग करें, धन का लालच न करें।

7. आत्म में परमात्म भाव

ॐ महामन्त्र में कहा गया है कि सम्पूर्ण सृष्टि के आदि मूल अविनाशी स्वरूप में परम चेतन सत्ता परमात्मा ही है। वही मैं (जीव या सृष्टि का कोई अंश) हूँ। ॐ सर्वव्यापी तथा सबसे अधिक महान् है। यदि सांसारिक संकीर्ण दृष्टिकोण के चमकदार आवरण को हटा सकें तो यही सत्य हमारे सामने होता है। हम देखते हैं कि आदित्य अर्थात् अदिति अथवा अविनाशी, अखण्डनीय से उत्पन्न सृष्टि में आदि तत्व के रूप में जो परम चेतन सत्ता परमात्मा है, वही मैं भी हूँ। आत्मा-परमात्मा, जीव-ब्रह्म की एकता का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। यही सत्य है क्योंकि ॐ खम् ब्रह्म अर्थात् ओम् विराट सर्वव्यापक, सबसे बड़ा तथा महान् है। सब कुछ ॐ ही तो है यही तो परम सत्य है। इस सत्य का साक्षात्कार अवश्य हो जायेगा, बस सांसारिक वैभव की चमक का आवरण हटाकर देखना होगा, इस आवरण से मुक्त होना होगा।

अथर्ववेद (19.68) में कहा गया है कि मैं समझता हूँ कि व्यापक तथा अव्यापक का भेद माया अर्थात् भ्रम के कारण है। अतः दोनो को समझने के लिए वेद को उद्धृत कर, वेद को ही प्रमाण मानकर सभी कर्मों को करता हूँ। इस मन्त्र में अव्यसः शब्द से व्यापक अविनाशी परमात्मा तथा सार्वभौम प्राकृतिक नियम ऋत के साथ ही सार्वकालिक आदर्श आदि भाव माने जाते हैं। व्यचसः से सीमित चेतनायुक्त एकदेशीय तथा तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार सामाजिक कर्तव्य का भाव लिया जाता है। वास्तव में दोनों के बीच कोई मौलिक अन्तर नहीं है। वेद को प्रमाण मानकर हमें

सभी कर्म करने चाहिए। इससे किसी प्रकार के भ्रम की सम्भावना नहीं रह जाती है।

मध्यकाल में वेद का भाष्य करने में अपने मत को स्थापित करने के प्रति पूर्वाग्रह की प्रवृत्ति भी रही है। पुनर्जागरण काल में राष्ट्रीय गौरव स्थापित करने के प्रयास में वेद में सब कुछ सिद्ध करने का प्रयास हुआ। भावना सराहनीय होने पर भी स्वीकार करना होगा कि इससे वेद के वास्तविक अर्थ का निष्पक्ष उद्घाटन तो नहीं हो सका। अतः वेद का सत्य अर्थ जानने के लिए व्याकरण सम्मत पदार्थ या शब्दार्थ होना अनिवार्य है। इस तथ्य को सभी वेद-विद्वानों ने स्वीकार किया है। यह सम्भव है कि विभिन्न कारणों से वे इसका पूर्णतः पालन न कर पाये हों। यह भी सम्भव है कि उनके समय के सुयोग्य पाठकों को इतनी आवश्यकता न रही हो। अपने समय की आवश्यकता के अनुसार हमने अपने वेद भाष्य में व्याकरण सम्मत, तथ्य पूरक, तटस्थ, निष्पक्ष तथा प्रामाणिक अर्थ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आपके बहुमूल्य सुझावों का स्वागत है।

8. एकत्व भाव ही परम लक्ष्य

नाना रूपमयी सृष्टि की एकता की भावना समस्त अध्यात्म का मूल भी और अन्तिम लक्ष्य भी। भारतीय संस्कृति को हम आध्यात्मिक मानते हैं। इस अध्यात्म मूलक संस्कृति का मूल भाव एकात्म ही है। इसी एकात्म भाव को दर्शनशास्त्र की शास्त्रीय शब्दावली में अद्वैत कहा जाता है। महान विचारक गुरु जी ने अपनी पुस्तक भारतीय संस्कृति में इसी अद्वैत भाव को प्रेमभाव का मूल कारण स्वीकार करते हुए कहा कि इसके बिना प्रेम नहीं हो सकता

तथा प्रेम होने पर ही मनुष्य विभिन्न ज्ञान अर्जित करता है। तथा मानवता की सेवा में उसका समुचित उपयोग करता हुआ सच्ची आध्यात्मिकता का परिचय देता है। सामान्यतः संसार के समस्त ज्ञान को दो प्रकार का माना जा सकता है। एक तो चेतना का विज्ञान है जिसे अध्यात्म कहते है और दूसरा सांसारिक जानकारी जिसे भैतिक ज्ञान कहा जाता है इन दोनों प्रकार के ज्ञान को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। है।

अध्यात्म का जानकार व्यक्ति अनुभव करता है कि समस्त सृष्टि एक ही परमात्मा की कृति है अथवा एक ही मूल चेतना सत्ता की विभिन्न रुपों में अभिव्यक्ति है इस भावना के कारण वह सभी मनुष्यों को अपना मानकर उनसे प्रेम करता है तथा उनकी सेवा - सहायता को अपना अनिवार्य कर्तव्य समझते हुए अपनी दिनचर्या में सम्मिलित कर लेता है।

अब मानव सेवा इतना सरल कार्य तो है नहीं कि इतनी भावना आ जाने भर से ऐसा हो जाये। यदि किसी बीमार व्यक्ति की सेवा करने की भावना है तो कम से कम पथ्यापथ्य आदि का ज्ञान होना ही चाहिए। रोगी की अवस्था के अनुसार किस प्रकार का खान - पान व कार्य - व्यापार उसके अनुकूल होगा, इस बात का यदि ज्ञान न हो तो हम सेवा भाव होते हुए भी रोगी का हित के स्थान पर अहित कर ही गुजरेंगे। इसी प्रकार डूबते को बचाने के लिए स्वयम् को तैरना आना चाहिए। इस प्रकार मानव प्रेम व सेवा भाव से प्रेरित होकर अनेक प्रकार के व्यावहारिक ज्ञान ऐसा प्रेम भावना वाला व्यक्ति प्राप्त करता है। यदि यह व्यावहारिक योग्यता – क्षमता उसके पास न हो तो उसका अध्यात्म कौड़ी का नहीं, बिल्कुल बेकार है।

यहाँ यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि वे लोग अंधेरे में

हैं जो लोग भौतिक ज्ञान को छोड़कर अध्यात्म का प्रसार करना चाहते हैं। भौतिक विज्ञान सृष्टि के रहस्यों का उद्घाटन करता है तथा मानवता के हित उन रहस्यों का उपयोग करना बताता है। यह भी अध्यात्म का ही अंग है। केवल इतना कहा जा सकता है कि यह बाह्य कलेवर है, वास्तविक सत्य का साक्षात्कार नहीं। बटन दबाने से बल्व प्रकाशित हो जाता है यह बाह्य या मोटा ज्ञान है तथा विद्युत धारा किस प्रकार प्रकाश ऊर्जा में बदलती है ये सूक्ष्म ज्ञान की उपयोगिता को कम नहीं नापा जा सकता था, उसके बिना कमरे में प्रकाश नहीं हो सकता, सैद्धान्तिक ज्ञान पर चाहे जितना व्याख्यान देते रहें। मानव - मानव में भेदभाव करने वाले व्यक्ति को न तो आध्यात्मिक कहा जा सकता है और न ही भौतिक विज्ञानी। धर्म के नाम पर मानव - मानव के बीच दीवार खड़ी करने वाले सबके सब अधार्मिक हैं।

सच्चा धार्मिक व्यक्ति तो यही अनुभव करता है कि सभी जीवात्मायें एक ही अनन्त चेतन सत्ता के विभिन्न रुप में है, उसी के अंश है, अतः उनमें आपस में भेद कैसा? यही अद्वैत भाव भारतीय संस्कृति का प्राण है, यही सच्चा अध्यात्म है और यही सच्ची मानवता। इसके बिना सारी वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति उसी तरह आत्मघाती है जैसे किसी बन्दर के हाथ में जलती हुई मशाल दे देना। सच्चा अध्यात्म, सच्चा विज्ञान वही है जो इस अद्वैत भाव को अपनाता है और मानवता के लिए प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है।

9. ब्रह्म और सृष्टि

वेद में स्पष्ट कहा गया है कि परमात्मा का एक पाद सृष्टि के रूप में व्यक्त हुआ है तथा शेष तीन पाद अमृत दिव्य स्वरूप में

है। इसका अर्थ है कि परमात्मा या ब्रह्म का अल्प अंश ही सृष्टि के रूप में प्रकट है, उसका विराट स्वरूप अव्यक्त शुद्ध अमृत स्वरूप में ही है। इससे यह भी स्पष्ट है कि सृष्टि भी परमात्मा का ही स्वरूप है, उससे भिन्न नहीं है। सम्पूर्ण जड़-चेतन-जीव सृष्टि मूलतः परमात्मा ही है। यही परम सत्य है।

परन्तु यह भी सत्य ही है कि सृष्टि का अस्तित्व है। जब तक महाप्रलय के रूप में यह सृष्टि परमात्मा में विलीन होकर शुद्ध स्वरूप में समाहित नहीं होती है, तब तक उसका अस्तित्व रहता ही है, और वह अमृत दिव्य स्वरूप से व्यावहारिक रूप में भिन्न भी होता है। वह अव्यक्त नहीं है, व्यक्त है, अमृत नहीं है, परिवर्तनशील है। सृष्टि ऋत के अनुसार सञ्चालित है।

इस प्रकार हमारा मूल स्वरूप तो परमात्मा है, परन्तु व्यावहारिक रूप में सृष्टि में हम सबका पृथक् अस्तित्व भी है। सम्पूर्ण सृष्टि में उत्पत्ति, परिवर्तन तथा विनाश का क्रम चलता रहता है। जीव की चेतना परमात्मा या ब्रह्म का शुद्ध, दिव्य, चेतन स्वरूप है तथा शरीर जड़ पदार्थ है। इस प्रकार जीव को अमृत दिव्य स्वरूप के निकट माना जा सकता है तथा उसका अमृत दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेना सम्भव होता है जिसे मोक्ष या निर्वाण कह सकते हैं। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। सब कुछ परमात्मा का स्वरूप होने से कर्ता-भोक्ता का भाव जीव में नहीं होना चाहिए। अध्यात्म का मूल मन्त्र है कि ब्रह्म ही सत्य है तथा सत्य ही ब्रह्म है। अतः जीवन में सत्य का पालन आवश्यक है। अध्यात्म में सत्य ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसमें कोई छूट सम्भव नहीं है। अध्यात्म की प्राप्ति के लिए, अव्यक्त शुद्ध अमृत स्वरूप की अनुभूति के लिए, उस परम

सत्य अव्यक्त शुद्ध अमृत स्वरूप की उपलब्धि के लिए सत्य का पूर्णतः पालन आवश्यक है, अनिवार्य है।

10. सब कुछ ब्रह्म ही है

सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर से व्याप्त है, ईश्वरमय है और ईश्वर का ही स्वरूप है। परमात्मा ही विभिन्न रूपों में सृष्टि में व्याप्त हो गया है। ब्रह्म का मूल स्वरूप सूक्ष्म, अव्यक्त और निराकार है। सृष्टि के विविध रूपों में वह स्थूल, व्यक्त और साकार हो गया है। सृष्टि और प्रकृति ही परमात्मा का साकार रूप है।

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कहा गया है कि ईश्वर, जीव, प्रकृति मूलतः एक ही हैं। उनमें तत्वतः कोई भेद नहीं है। भेद तो ऊपरी दृष्टि से दिखायी पड़ता है। जैसे जल, बर्फ और वाष्प मूलतः एक ही पदार्थ है परन्तु साधारण दृष्टि से उनमें बहुत अन्तर दिखायी पड़ता है। उनके गुण धर्म, शक्ति, स्वभाव अलग-अलग हैं। परन्तु वे सब एक ही पदार्थ जल से ही बने हैं। इसी तरह मूल तत्व तो ब्रह्म ही है। वही सृष्टि में अनेक रूप धारण किये हुए है।

वेद के महावाक्य हैं - 'ईशावास्यम् इदम् सर्वम्' अर्थात् सर्वत्र सभी में ईश्वर ही व्याप्त है तथा 'ओम् खम् ब्रह्म' अर्थात् ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है। इनसे यही सिद्ध होता है। इसके अलावा एक महावाक्य है - 'एकत्वम् अनुपश्यति'। इसका अर्थ है कि एकत्व को देखता है। वह शोक और मोह से मुक्त होता है। 'तत्र को मोहः को शोकः एकत्वम् अनुपश्यति' हमें बहुत बड़ा संदेश देता है। यदि हमें दुःखों से बचना है तो 'एकत्व' को देखना होगा, सम्पूर्ण सृष्टि में

एकमात्र मूल तत्व परमात्मा को स्वीकार करना होगा। तब किसी प्रकार का मोह नहीं होगा, द्वेष नहीं होगा और कोई भेदभाव नहीं होगा। वैदिक सामाजिक समरसता की स्थिति हमें प्राप्त हो सकेगी। व्यक्तिगत सुख शान्ति तथा सामाजिक समरसता की स्थिति हमें प्राप्त हो सकेगी। व्यक्तिगत सुख शान्ति तथा सामाजिक हित के लिए यही एकत्व और अद्वैत का वैदिक दर्शन ही एकमात्र उपाय है। एकत्व अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि का मूल तत्व एक परमात्मा ही है। इसी को आदि शंकराचार्य ने अद्वैत कहा था अर्थात् उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। अतः वेद ने आदेश दिया है 'ओम् कृतो स्मर' अर्थात् हे प्राणी, ओम् का स्मरण करो।

11. परमात्मा का अग्नि स्वरूप

अग्नि स्वरूप तेजस्वी अग्रणी परमात्मा से प्रार्थना है कि नष्ट करने वाले अग्नि को नष्ट करो, अनुचित को नष्ट करने वाले को सिद्ध करो, पूर्ण करो, विजयी करो। अग्नि का शाब्दिक अर्थ अग्रणी है। सम्पूर्ण सृष्टि में अग्रणी तो परमात्मा है। समाज में अग्नि अर्थात् अग्रणी व्यक्ति शासक, प्रशासक, साधन सम्पन्न लोग हैं। उष्णता देने वाली ज्वाला भी अग्नि, अग्रणी है। ऊष्मा, प्रकाश के बिना तो जीवन सम्भव ही नहीं है, अतः दहन तथा ज्वलन से उपन्न ज्वाला, ऊष्मा को भी अग्नि कहते हैं। जो अग्नि अर्थात् अग्रणी तेजस्वी हैं, वे सृजन भी कर सकते हैं तथा विनाश भी। जो उपयोगी तथा लाभदायक है, वही दिशा बदल देने पर हानिकारक तथा विनाशक भी हो सकता है। विनाशकारी अग्नि को नष्ट करना है तथा उपयोगी

अग्नि को बढ़ाना है, सिद्ध करना है, पूर्ण करना है। विनाश करने वाले का विनाश करना है तथा जो विनाशक को नष्ट करता है उसका सहयोग करना है। पृथ्वी को दृढ़ करना है, बढ़ाना है। इसे प्रदूषण से नष्ट नहीं होने देना है। भ्रातव्य शब्द का अर्थ भरण करने योग्य तथा भाई जैसा होता है। भाई के सन्तान को भी भ्रातव्य कहा है। इनका वध करने को कहा गया है। इसका अर्थ है कि लोग अपने भरण-पोषण में ही लगे रहते हैं, भाई के समान परिजनों जैसे, आत्मीय जैसे दिखते हैं, पर ऐसे हैं नहीं। ऐसे कपटबन्धुओं से बचना ही उचित है। वध का भाव हत्या करना नहीं है। ऐसे लोगों से दूर रहना, उपेक्षा करना ही उचित है। सभी वैदिक विद्वान् मानते हैं कि गति अर्थ वाली सभी धातुओं का अर्थ जानना, जाना, पहुँचना, पाना, समझना भी होता है। इस प्रकार अग्नि का अर्थ विद्वान्, गतिशील, प्रबुद्ध, लक्ष्य को पाने वाला भी होता है। इसीलिए वेद में परमात्मा का अग्नि नाम सबसे अधिक आया है।

12. परमात्मा सहनशील है

उशिक् असि कविः, अड्घारिः असि बम्भारिः,
अवस्यूः असि दुवस्वान्, शुन्ध्यूः असि मार्जालीयः।
सम्राट् असि कृशानुः, परिषद्यो असि पवमानो,
नभो असि प्रतक्वा, मृष्टो असि हव्यसूदन,
ऋतधामा असि स्वः ज्योतिः।।

परमात्मा कामना करने योग्य उशिक् है और उपासक उसकी कामना करने वाला उशिक्। उपासक को भी ऐसा बनना है कि लोग

उसकी कामना करें। वह कवि अर्थात् काव्यकर्ता है, क्रान्तदर्शी है। अंघ का अर्थ है पाप, निन्दा, कुटिलता। परमात्मा अंघ को नष्ट करने वाला अंगारि है। वह भरण करने वाला बम्भारि भी है। वह अवस्यू अर्थात् रक्षा करने वाला, दुवस्वान् अर्थात् सेवामय, शुन्ध्यू अर्थात् शोधक, मार्जलीय अर्थात् परिमार्जनकर्ता है। वह सम्यक् प्रकाशरूप सबका सम्राट है। परमात्मा कृश अर्थात् क्षीण तनु दुर्बल को जीवन देने वाला तथा उस दुर्बल के पास जाने वाला कृशानु है। परिषद् के योग्य परमात्मा तो है ही, मुख्य रूप से उपासक को होना चाहिए, यह महत्त्वपूर्ण है। वह पवित्रकर्ता पवमान है। दुष्टों के लिए हिंसक नभ है तथा सभी को हँसाने वाला प्रतक्वा है। इसका एक भाव यह भी है कि वह दुर्बलों को जीवन देने वाला है, तो जो दूसरों पर हँसते हैं, उनके लिए नभ अर्थात् मारने वाला भी है। वह अत्यधिक सहनशील मृष्ट है, हम भी सहनशील हों। वह दानयोग्य को पवित्र करने वाला हव्यसूदन तथा ऋतधाम तथा स्वः प्रकाश है।

13. परमात्मा का साकार रूप

राजन्तम् अध्वराणाम्,
गोपाम् ऋतस्य दीदिवम्।
वर्धमानम् स्वे दमे।। (यजुर्वेद - 3/6/23)

परमात्मा का दिव्य तेज अहिंसक कार्यों में ही प्रकाशित होता है। अतः धर्म के नाम पर हिंसा महापाप है। परमात्मा पृथ्वी की रक्षा करने वाले लोगों को ऋत का प्रकाश देते हैं। ऋत कहते हैं सार्वभौम प्राकृतिक नियमों को। जिन नियमों के आधार पर सृष्टि का संचालन

होता है, वे नियम ही ऋत हैं, जैसे गुरुत्वाकर्षण आदि। जो लोग पृथ्वी की रक्षा करने वाले हैं, इन नियमों का ज्ञान उनके लिए ही है। ऋत के आधार पर ही विज्ञान का विकास होता है। ऋत तथा उसके आधार पर विकसित विज्ञान पृथ्वी के रक्षकों के लिए है। इसका ज्ञान उन्हें नहीं मिलना चाहिए जो इसका दुरुपयोग कर विनाश करना चाहते हैं। परमात्मा तो व्यक्त (प्रकट साकार) सृष्टि के रूप में निरन्तर वृद्धि कर रहा है। वृद्धि हमें भी करनी है, अतः हम परमात्मा से सन्धि कर लेते हैं, उससे जुड़ जाते हैं। दमे क्रिया की धातु दमु उपशमे है। अतः दमु धातु का अर्थ मुख्य उपशमन करना है। इसके अन्य अर्थ शान्त करना, दमन करना, जीतना, स्वाधीन करना तथा सन्धि करना भी है। स्वयम् को शान्त करना है, अपने दोषों का दमन करना है, दुर्गुणों को जीतना तथा मन को दोषों-दुर्गुणों से स्वाधीन मुक्त करना है तथा परमात्मा से तो सन्धि ही करना है, जिससे दिव्य चेतना का लाभ हमें मिल सके।।

14. परमात्मा को मानने के बजाए जानो

ईश्वर की उपासना ही कल्पवृक्ष है, जिसकी छाया मे हमारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण सकते हैं। परमात्मा के सच्चे उपासक की हर मनोकामना पूर्ण हो जाती है। वह पूर्णकाम हो जाता है, उसकी कोई भी कामना अपूर्ण नहीं रह सकती। यह केवल विश्वास का विषय नहीं है। किसी धार्मिक ग्रन्थ का उद्धरण मात्र नहीं है, अपितु यह उतना ही व्यावहारिक सत्य है जितना जल पीने से प्यास बुझाना या भोजन करने से भूख शान्त होना। लेकिन इतनी चमत्कारी उपलब्धि को

प्रत्यक्ष देखने के लिए इस बात को समझना आवश्यक है कि उपासना क्या है उपासना के नाम पर कुछ भी करते रहने से लाभ नहीं मिल सकता है। इस प्रकार कोई प्रत्यक्ष उपलब्धि न दिखाई पड़ने से उपासना को अन्धविश्वास कहकर टालना या उपासना से विमुख हो जाना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती है।

उपासना का शाब्दिक अर्थ है - समीप बैठना, उप - समीप, आसन - बैठना। परमात्मा से निकटता स्थापित करना। परमात्मा के समीप या निकट आसन पाने के लिए परमात्मा की व्यवस्था को मानना होगा, उसके बताये रास्ते पर चलना पड़ेगा। उसके गुणों को भी जीवन में उतारना होगा। यदि हम ऐसा कुछ नहीं कर सकते तो ईश्वर का नाम जपते रहना गुणगाते रहना या किसी भी तरह के कर्मकाण्ड करना एक ढोंग से अधिक और कुछ भी नहीं है। उपासना में सबसे पहले स्थूल सामीप्य की अनुभूति बहुत ही महत्वपूर्ण है। हमारे आसपास सभी ओर परमात्मा तथा केवल परमात्मा ही है। सम्पूर्ण सृष्टि उसी एक परम चेतना का विभिन्न रूप है। वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, अग्नि, पर्वत, तारे तथा मकान पेड़-पौधे, मेज और कागज, पेन, यह सब कुछ उसी एक परमात्मा की ही नानामूकमयी अभिव्यक्ति है। दसो दिशाओं में कण-कण में सर्वत्र परमात्मा की अनुभूति उपासना का प्रथम तथा सबसे स्थूल चरण है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है, कि जिसको इस प्रकार की अनुभूति हो जाये। वास्तव में सच्ची उपासना, वही कर सकता है। अन्यथा वह उपासना का अधिकारी ही नहीं। इतनी अनुभूति हो जाने पर उपासना का क्रम स्वतः चल पड़ता है। उसके लिए न तो किसी शास्त्रीय विधि -विधान या कर्मकाण्ड की आवश्यकता पड़ती है। और न ही किसी

अन्य प्रकार के सहयोग संरक्षण या निर्देशन की।

सच बात तो यह है कि उपासना की नहीं जाती वह तो लक्ष्य है, मंजिल है, पारितोषिक है। उपासना का परमात्मा का सामीप्य प्राप्त करने का अधिकार पाने के लिए कुछ उपाय या प्रयास करना पड़ता है।

वैसे तो परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, यह सच है तथा ऐसा हमारा विश्वास भी है। लेकिन केवल विश्वास से कुछ नहीं होता हम मानते हैं कि परमात्मा है तथा वह सर्वत्र, सर्वकाल में व्याप्त है लेकिन हम केवल मानते हैं, जिनमें नही है, इसीलिए हमें कोई लाभ नहीं है। अतः निवेदन है कि परमात्मा को माने ही नहीं, जाने भी। किसी के बारे में जब तक हम जानते नहीं हैं, तब किसी के कहने से केवल मान लेने भर से ही लाभ नहीं उठा सकते। हमें किसी जानकार व्यक्ति ने बता दिया कि अमुक स्थान पर स्वर्ण की खान है। व्यक्ति विद्वान है, विश्वसनीय अतः हमने मान भी लिया, लेकिन जब तक हमें पता नहीं होगा कि स्वर्ण कैसा होता है। खान में किस रूप में पाया जाता है तथा उसे खान से निकालकर किस प्रकार उपयोग में लाया जा सकता है; तब तक हम उस स्वर्ण खान से कोई भी लाभ नही उठा सकते। परमात्मा के बारे में भी हमारी यही स्थिति है। शास्त्रों में लिखा है, विद्वान महात्माओं ने बताया है। अतः हमने मान लिया है कि परमात्मा नामधारी कुछ है अवश्य और वह सर्वत्र सर्वकाल व्याप्त है लेकिन कभी यह जानने का प्रयास ही नहीं किया है कि परमात्मा क्या है? कैसा है? तथा वह किस रूप में व्याप्त है? इसी कारण पूर्ण विश्वास होते हुए भी परमात्मा के असीम आनन्द स्रोत होने का लाभ हमें नही मिला।

इतना ही नही मध्यकाल में एक समय ऐसा भी आया जब हमें केवल आँख बन्द कर विश्वास करने का उपदेश दिया गया कि ईश्वर केवल विश्वास का विषय है उसके बारे में जिज्ञासा तर्क या खोजबीन का प्रयास महापाप है, सबसे बड़ा अधर्म है। ऐसे लोगो ने सिखाया कि कुछ भी पढ़ने, समझने या विचार करने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर पर केवल विश्वास करो। ईश्वर का नाम जपते रहो। फिर कोई कर्तव्य करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार का प्रचार करने वाले मठाधीश गुरूओं ने, स्वयं को ईश्वर से भी बड़ा बताते हुए, स्वयं को ही पुजवाना प्रारम्भ कर दिया। गुरुडम की एक ऐसी परम्परा चल निकली, जिसने पूरे देश को निरक्षर, विचारहीन, तर्कहीन तथा कर्तव्य विमुख बना दिया। परिणाम हमारे सामने है, आज राष्ट्रीय अस्तित्व का ही संकट उत्पन्न हो गया है ।

आज भी हमारा समाज इस स्थिति से उबर नहीं पाया है। आज भी धर्म तथा परमात्मा को केवल अंधविश्वास का ही विषय माना जाता है। तर्क को नास्तिकता तथा पाप बताया जाता है। धर्म कुछ निकम्मे लोगों की आजीविका का साधन बनकर रह गया है। इसीलिए आज धर्म का विरोध बुद्धिजीवियों द्वारा किया जा रहा है तथा अध्यात्म को कपोल कल्पना तथा दकियानूसी चीज और पिछड़ेपन का प्रतीक माना जाता है।

15. परमात्मा का आश्रय

ईश्वर का स्मरण तथा कर्म पर विश्वास रखना ही हमारा जीवन सूत्र है। यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय अर्थात् ईशोपनिषद् में भी

यही संदेश दिया गया है। सब कुछ ईश्वर से व्याप्त है, कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवन की कामना करें तथा ओम् का स्मरण करते रहें। यही वैदिक जीवन शैली का सार तत्व है। अपनी क्षमता से कुछ हो जाने का अहंकार न पालें, समुचित रूप से यथासम्भव पूर्ण प्रयास करने पर भी परिणाम अनुकूल न मिल रहा हो तो ईश्वर पर विश्वास रखें, परमात्मा के प्रति समर्पण का भाव रखें, उचित सहयोग मिलेगा ही। यदि हमारी कामना ईश्वर की इच्छा के अनुकूल है तो सफलता मिलेगी अन्यथा स्वीकार कर लें कि ईश्वर ने हमसे यह कार्य कराना उचित नहीं समझा।

संसार में नित्य घटित होने वाली घटनाओं, मानवीय प्रयासों तथा परिणामों की विविधता के पीछे ईश्वर की इच्छा ही कारण है, इसे स्वीकार करने में ही हमारा हित है। आवश्यक नहीं है कि हम जिसे शुभ या अशुभ मानते हैं, ईश्वर की दृष्टि में वह वैसा ही हो। सम्भव है कि हम अपने किसी गुण–स्वभाव को अति श्रेष्ठ मानकर ईश्वर से सारे सुख - साधन पाने की आशा करते हों, वह ईश्वर की दृष्टि में उतना महत्वपूर्ण न हो। अनुशासन तथा कार्य कुशलता दोनों ही अच्छे गुण हैं, परन्तु किसी संस्थान का संचालक किस गुण को महत्वपूर्ण मानता है; यह निर्णय करने का अधिकार तो उसे ही है। कोई सेवक यह निर्णय नहीं कर सकता है कि किस गुण को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। इतना विश्वास अवश्य रखना चाहिए कि गुणवान् तथा सदाचारी सेवक को ईश्वर की कृपा मिलती अवश्य है, यह सम्भव है कि किसी अन्य गुण के अभाव में उसे बहुत अधिक सफलता प्राप्त न हो सके।

16. परम सत्य की अनुभूति

परमात्मा के वास्तविक स्वरूप की अनुभूति होने पर साधक उपासना का अधिकारी हो जाता है। उसके बाद यदि वह साधना पथ पर बढ़ता रहता है तो परमात्मा का दिव्य सानिध्य प्राप्त होता है उसी को समाधि अवस्था कहा जाता है इसी स्थिति को परमात्मा का साक्षात्कार कहकर भी अभिव्यक्त किया जाता है यही परमात्मा का दर्शन या उसकी प्राप्ति अर्थात् उसे पा लेना भी है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि परमात्मा को मानो ही नहीं जानो भी। जानने के बाद उसे अनुभव करो तथा उसका ध्यान करो उसे धारण करो। बस उपासना का पारितोषिक मिलते ही सब कुछ आनन्दमय होगा दुख, संताप, शोक, कष्ट स्वतः मिट जायेंगे। साधक पूर्णकाम हो जायेगा।

17. आत्म परिष्कार

स्वराट् असि सपत्नहा,
सत्रराट् असि अभिमातिहा।
जनराट् असि रक्षोहा,
सर्वराट् असि अमित्रहा।।

इस मन्त्र में सुन्दर ढंग से बताया गया है कि किस प्रकार हम आत्मपरिष्कार कर सकते हैं। स्वयं प्रकाशमान होकर हम सपत्नघाती हो सकते हैं। सपत्न का अर्थ शत्रु माना गया है। इसका शाब्दिक अर्थ है (स-पत्-न) पतन सहित। जिसके साथ होने से पतन हो वह शत्रु ही माना जायेगा। स्वयम् को अध्यात्म के प्रकाश से

जोड़कर हम ऐसे निकट रहने वाले शत्रुओं से बच सकते हैं। इस प्रकाश का विस्तार कर हम अभिमान को नष्ट कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि यह प्रकाश जनता में विस्तृत कर सकें तो स्वार्थी रक्षस् अर्थात् सबकुछ अपने लिए रख लेने वालों से भी छुटकारा मिल सकता है। जो सब में प्रकाशित है उसका कोई अमित्र हो ही कैसे सकता है, उसके सभी मित्र ही होंगे। फिर भी समाज में स्वार्थी रक्षस् होते ही हैं जो अकारण सबके शत्रु होते हैं, उनसे बचने का उपाय जनजागरण ही है।

18. द्वेष भाव से दूरी

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे,
अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आ ददे नारी असि इदम् अहम्,
रक्षसाम् ग्रीवा अपि कृन्तामि।।
यवो असि यवय अस्म् द्वेषो यवय अरातीः,
दिवे त्वा अन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा
शुन्धन्ताम् लोकाः पितृषदनाः पितृसदनम् असि।।

देव का जनक (परमात्मा) तुमको व्यापक भुजाओं के लिए, पोषक हाथों के लिए उत्पन्न करता है। वह तुमको भी इन्हीं गुणों से युक्त करे। परमात्मा देवों को उत्पन्न करने वाला है। परमात्मा ने देव शक्तियों, सूर्य आदि दिव्यताओं को उत्पन्न किया है। इस बात का स्मरण कराते हुए कहा गया है कि हमारा जीवन व्यापक भुजाओं तथा पोषक हाथों के लिए है। अर्थात् हमारे कार्यों में व्यापकता होनी

चाहिए। कर्म समाज का पोषण करने वाले होने चाहिए। नारी का अर्थ है ले जाने वाली। रक्ष् धातु का अर्थ है रक्षा करना। समाज के रक्षक तो रक्षणीय हैं। यदि कोई अपने स्वार्थों की रक्षा की चिन्ता करे और स्वार्थ के लिए दूसरों का अहित करे तो वह रक्षक नहीं कहा जा सकता है। ऐसे रक्षस् तो दण्डनीय हैं, उनका गला काटने का भी साहस समाज हित में करें। कुछ पृथक् करना है तो द्वेष भाव को करो, दान न देने की कृपणता तो पृथक् करो। स्वयम् को तथा सभी लोकों को, सभी स्थानों को, पूरे समाज को शुद्ध करो।।

19. अध्यात्म

आजकल योग के नाम पर सर्वाधिक प्रचार आसनों का ही है। योग के आश्रमों व केन्द्रों के नाम वाले संस्थानों से लेकर दूरदर्शन तक योग के नाम पर केवल आसनों का ही प्रचार किया है। यह कहना भी गलत नहीं है कि देश-विदेश में तथाकथित योगियों की दुकानें मुख्यतः योगासनों के बलबूते पर ही चल रहीं हैं और अच्छी आय दे रही हैं। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में अष्टांग योग के तीसरे अंग के रूप में आसन का वर्णन बहुत संक्षिप्त रूप में किया है। केवल तीन सूत्रों में - इन तीन सूत्रों में आसन क्या है, कैसे सिद्ध होता है और इससे क्या लाभ या फल मिलता है, बता दिया गया है। किन्तु वर्तमान योग की पुस्तकों में सर्वाधिक पृष्ठों में किया गया है। उसी ग्रंथ में योग के अन्य अंगों को दस, बीस या चालीस पृष्ठ तक मिल सकते हैं, संभव है अन्य ग्रन्थों में आसनों का और भी विस्तृत वर्णन प्राप्त हो।

योगदर्शन में सूत्र है, स्थिरपूर्वक स्थिरसुखम् आसनम्। 2/46 जिस प्रकार सुखपूर्वक स्थिर होकर बैठा जा सके बैठने का वही तरीका आसन है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए इतना कहना आवश्यक है कि बैठने में मेरुदण्ड (रीढ़) सीधी होनी चाहिए। पतंजलि के समय ऐसा कहने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं की गयी। प्रारम्भिक आसन दिये जा रहे हैं। जो सरलता से सिद्ध हो सकते हैं और ध्यान में सहायक हैं।

पृथ्वी के प्राणियों में केवल मनुष्य को ही विचारशीलता व विवेक का वरदान मिला है। यह वह तत्व है जो उसको अन्य जीवों पशुओं, कीट-पतंगों, जलचरों व पक्षियों आदि से अलग करता है। इसके बिना मनुष्य-पशु में कोई भेद नहीं रह जाता।

इसी विचारशीलता, विवेक व भावानुभूति के कारण ही मनुष्य दिन प्रतिदिन नयी-नयी उपलब्धियाँ प्राप्त कर रहा है और नित्य नयी परेशानियों से भी आमना-सामना होता है। कहना चाहिए कि यही सम्पूर्ण प्रगति का कारक है। सारे दुखों का मूल भी। जिस आग से हवन होता है और भोजन तैयार होता है। उसी से घर भी जल जाता है। विद्युत से हीटर जलता है, कूलर चलता है और वही जानलेवा भी सिद्ध होती है।

यदि विचार शक्ति न होती तो हम, न तो भविष्य के बारे में कुछ सोच पाते, न भूत के विषय में ही आनन्दित या दुखी होते। हम भविष्य के बारे में सोचते हैं, योजना बनाते हैं। क्रमशः प्रगति करते हैं, कभी-कभी अपने सोच में बाधा आने पर दुखी और परेशान भी होते हैं।

यदि हम तटस्थ होकर विचार करेगें, तो ऐसा महसूस होगा

कि बहुधा हमारे दुखों का कारण कोई बड़ी मुसीबत नहीं होती। अधिकतर हम बहुत ही छोटी मुसीबतों से दुखी होते हैं। बहुत से लोग ताश समय काटने के लिए खेलते हैं, और इतना खेलते हैं कि मारपीट तक की नौबत आ जाती है। किसी सम्बन्धी, परिचित के वापस अपने घर जाने मात्र से ही हम दुखी हो जाते हैं। बच्चों की छोटी-छोटी बातों पर हम दुखी होते हैं। जिसका यथार्थ में कोई महत्व नहीं होता, उससे कोई लाभ या हानि होने की सम्भावना नहीं रहती है। इसका कारण यह है कि हमारे लिए इन सब बातों के लिए खाली समय होता है। यदि हमारे जीवन का कोई निश्चत उद्देश्य हो और हम उस उद्देश्य के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहें, तो छोटी-छोटी बातों से परेशान होने के लिए समय ही नहीं होगा।

लक्ष्यहीन जीवन भी कोई जीवन है। जीने के लिए जीवन का कोई अच्छा व स्पष्ट लक्ष्य तो होना चाहिए। अन्यथा जीवन कटी पतंग की तरह निरुद्देश्य, लक्ष्यहीन भटकता रहेगा। यह भटकाव तो जीवन नहीं है। हमें इस भटकाव से बचना चाहिए। जीवन का एक निश्चित लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए। यदि जीवन दिशाहीन होगा तो कटी पतंग की तरह ही हवा के झोंके से कष्ट पाता हुआ झंझावातों व बाधाओं से कष्ट पाता रहेगा। एक पत्थर उठाइये, उसे निश्चित दिशा में निश्चित लक्ष्य की ओर फेंक दीजिए। फिर देखिए, वह पत्थर एक ही दिशा में चलता हुआ सीधे अपने लक्ष्य की ओर से टकरायेगा, इधर उधर भटकेगा नहीं, हवा के झोकों से विचलित नही होगा और तेजी से लक्ष्य पर पहुंचकर ही विश्राम लेगा।

अपने जीवन को कटी पंतग नहीं बनने देना है। स्वयं को पत्थर की तरह मजबूत बनाइए सामने देखिए जीवन की अवधि कम

है और जीवन का रास्ता बहुत लम्बा है। तेजी से तीर की तरह बढ़िये और अपने लक्ष्य को भेदकर ही दम लीजिए। जब तीर की तेजी के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे तो छोटी-छोटी बातों से परेशान होने के लिए हमारे पास समय नहीं होगा। तीर के सामने जो भी आयेगा उसी का भेदन होगा। हर बाधा को पार करता हुआ उसे नष्ट करता हुआ तीर सीधे अपने लक्ष्य से ही टकरायेगा।

हमें समझना होगा कि मानव-जीवन केवल खाने और मर जाने के लिए नहीं। जीवन का अंतिम लक्ष्य भस्म होना नहीं है। भस्म तो इस पंचभौतिक शरीर को ही होना है। इस जीवन के बाद भी जो लोग यशः शरीर से जीवित रहते हैं वे युग-युगान्तर के लिए अमर हो जाते हैं वही सच्चे अर्थों में मानव होते है। मनु का अर्थ है मननशील प्राणी और इस मनु का ही पुत्र है - मानव। यदि हम इतनी-सी बात पर मनन नहीं कर सके तो हमें मनु का वंशज या उत्तराधिकारी अर्थात मानव कहलाने का भी अधिकार नहीं है।

हमें अपना लक्ष्य स्वयं ही निर्धारित करना होगा। हमारा लक्ष्य बताने के लिए कोई और महापुरुष अवतरित नहीं होगा। अपनी परिस्थितियों, योग्यताओं, क्षमताओं तथा साधनों को ध्यान में रखते हुए लक्ष्य का निर्धारण करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य एक नहीं हो सकता। ऐसा हो सकता है कि कुछ ऐसे लोग हों, जिनकी मंजिलें अलग होते हुए भी रास्ते कुछ दूर तक या काफी दूर तक साथ-साथ जाते हों। ऐसे लोग दूरी तक एक साथ चल सकते हैं।

जीवन के प्रभातकाल में जीवन में तो लक्ष्य एक और केवल एक ही होता है - अपनी क्षमताओं का विकास करना। बौद्धिक क्षमताओं का विकास करने के लिए अध्ययन करना होता है। पुस्तकों

को पढ़कर गुरु के चरणों में बैठकर हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। अपने आसपास के वातावरण परिवेश से अनुभव द्वारा भी बहुत कुछ सीखा जाता है। लोक व्यवहार सीखने का तो यही एकमात्र मार्ग है, दूसरा कोई तरीका है नहीं।

20. सम्पूर्ण चिकित्सा का मूल है अध्यात्म

अध्यात्म मूलतः चेतना विज्ञान है। जीव तथा निर्जीव के बीच अन्तर इस चेतना के ही कारण होता है। कहा जा सकता है कि चेतना ही जीवन का कारण है। अतः जीव की समस्याएँ तथा समाधान भी चेतना पर ही आधारित हैं। रोगों का कारण भी चेतना है तथा उसकी चिकित्सा भी चेतना के कारण ही सम्भव हो पाती है। किसी निर्जीव को न तो कोई रोग होता है और न ही किसी चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है।

चिकित्सा विज्ञान की मूलभूत धारणा यही है कि रोग की चिकित्सा तो शरीर की जीवनी शक्ति स्वयम् ही करती है, औषधियाँ केवल उसमें सहायता ही करती हैं।

चेतना शक्ति से चिकित्सा - अध्यात्म चिकित्सा में हम चेतना शक्ति को ही चिकित्सा का माध्यम बनाते हैं। अध्यात्म की मूलभूत मान्यता है कि समस्त ब्रह्माण्ड या सम्पूर्ण सृष्टि का मूल एक चेतन सत्ता है जो सर्वत्र व्याप्त है। उसे परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वर आदि नामों से जाना जाता है। विभिन्न देश-काल में अलग-अलग भाषाओं में उसे अनेक नाम दिये गये हैं, जिनका मूलभूत आशय उस एक परम चेतन से ही है। सर्वव्यापी उस परम चेतना से हम रोगों

की चिकित्सा सहित विभिन्न समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। अध्यात्म सर्वोच्च मनोविज्ञान है तथा भावना एवम् प्रार्थना की शक्ति को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य तथा चिकित्सा का आधार शुद्ध चेतना विज्ञान अध्यात्म है जो भौतिकी, रसायन व जीव विज्ञान जैसे विषयों की ही तरह पूर्णतः प्रामाणिक और सर्वश्रेष्ठ विज्ञान है।

विज्ञान का लक्ष्य - आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक इस बात पर एकमत हैं कि वर्तमान विराट सृष्टि क्रमिक विकास का परिणाम है। अनादि ब्रह्म, चेतन गतिशील द्रव्य से नाना रूपमयी अनन्त सृष्टि का विकास हुआ। सरल एक कोशीय जीवों से जटिल बहुकोशीय जीवों का विकास हुआ जिसकी श्रेष्ठतम कड़ी मानव है। इसी प्रकार असभ्य, जंगली व पशुतुल्य आदि मानव से आधुनिक सभ्य मानव का विकास हुआ। विज्ञान की सभी शाखाओं का एकमात्र लक्ष्य सृष्टि के मूल रहस्य, उस आदि मूल तत्व की खोज करना है, जिससे ब्रह्माण्ड की समस्त ऊर्जाओं तथा द्रव्य का उद्भव और विकास हुआ है। यह निश्चित है कि सम्पूर्ण पदार्थ परमाणुओं से बने हैं और परमाणुओं का निर्माण कुछ मूल कणों से होता है। सभी मूलकण ऊर्जा के ही घनीभूत रूप हैं और ऊर्जा तथा पदार्थ का परस्पर रूपान्तरण सम्भव है। सम्पूर्ण द्रव्य ऊर्जा से ही बना है। भौतिकी का परम लक्ष्य उस मूल ऊर्जा को खोज निकालना है जिससे सभी प्रकार की ऊर्जाओं तथा द्रव्य-पदार्थों का विकास हुआ है।

अध्यात्म का मर्म - अध्यात्म उसी मूल ऊर्जा चेतना तत्व का विज्ञान है। उसे समझने तथा लाभ उठाने के लिए उपासना-साधना हमारा अनिवार्य धर्म या कर्तव्य है। वेद मन्त्र साधना से शारीरिक

स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति, सुखमय जीवन तथा पारिवारिक सामाजिक सहित सभी समस्याओं का समाधान सम्भव है। इस प्रकार स्वास्थ्य के सभी चार आयामों शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य का आधार अध्यात्म ही है। इससे सभी चार आयामों में स्वास्थ्य रक्षा हो सकती है। नियमित उपासना तथा सत्संग का क्रम बना रहे तो बिना विशेष प्रयास के भी वेदमन्त्रों की दिव्य शक्तियों का लाभ-अनुदान मिलता रहेगा।

सन्तुलन तथा समन्वय का महत्व - अध्यात्म तथा भौतिक, सामाजिक जीवन का उचित सन्तुलन तथा समन्वय वेदमन्त्र साधना तथा चिकित्सा का मुख्य तत्व है। भौतिकता तथा अध्यात्म को वेद ने समान महत्व दिया है। उससे जीवन में सांसारिक सफलता अर्थात् शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य भी उसी तरह प्राप्त हो सकता है जैसे आध्यात्मिक दिव्य शक्तियाँ तथा मानसिक शान्ति। इसके लिए व्यावहारिक पाठ्यक्रम के रूप में वेद का अध्ययन होना चाहिए। वेद व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास का मुख्य आधार है। भारतीय संस्कृति मूलतः वैदिक संस्कृति ही है। उसके विभिन्न रूप वैदिक संस्कृति की शाखायें हैं, उसी से उत्पन्न हैं। मानव मात्र की एकता समानता, सामाजिक समरसता, सहयोग तथा सामाजिक न्याय उसके प्रमुख संदेश हैं।

दिव्य शक्तियों का जागरण - वेद मन्त्रों की साधना से दिव्य चेतना शक्ति का विकास होता है, जिसे दिव्य शक्तियों का जागरण भी कहते हैं। नियमित वेदपाठ, स्वाध्याय, चिन्तन, मनन करते हुए मन्त्र को आत्मसात् करना ही मन्त्र साधना है। मन्त्र इतना स्पष्ट तथा आत्मसात् हो जाये जैसे उसका स्पष्ट दर्शन होने लगे तो वह

मार्गदर्शक तथा संरक्षक हो जाता है। इस शक्ति से जीवन में अनेक कार्य सिद्ध होने लगते हैं।

मार्गदर्शक की भूमिका - वेद मन्त्र साधना में किसी चूक से हानि की सम्भावना नहीं है। इसमें नियमितता एवम् मनोयोग का महत्व है तथा सुयोग्य मार्गदर्शक की भी उपयोगी भूमिका है। मार्गदर्शक के प्रति श्रद्धा-सम्मान तथा सेवा-सहयोग की भावना साधक के लिए आवश्यक है। मार्गदर्शक को मन्त्र पाठ तथा अर्थ स्पष्ट करने में सक्षम तो होना ही चाहिए, यह भी आवश्यक है कि वह सच्चे मन से शिष्य-साधक का हित चाहने वाला हो।

उपयोगी मन्त्र शक्ति - मानसिक समस्याओं के साथ ही अनेक मनोदैहिक कष्टों के निवारण में भी मन्त्र शक्ति उपयोगी है। इसका अनुभव हमारे कुछ मित्रों को भी है तथा हमने उसका उल्लेख समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों में किया है उस शक्ति से अप्रत्याशित परिणाम मिल सकते हैं परन्तु अकर्मण्य बनकर मन्त्र प्रयोग से सभी कार्य हो जाने के चमत्कार की आशा नहीं की जानी चाहिए।

मन्त्र शक्ति की सीमाएँ - चिकित्सा सुविधा उपलब्ध न होने पर मन्त्र शक्ति से जीवन रक्षा सम्भव है, चिकित्सा के साथ मन्त्र प्रयोग लाभदायक है, परन्तु जानबूझकर चिकित्सा की उपेक्षा कदापि न करें। मन्त्र शक्ति से अध्ययन में सहायता मिलती है क्योंकि इससे मानसिक क्षमता बढ़ती है, परन्तु मन्त्रशक्ति से बिना अध्ययन किये सारी योग्यता प्राप्त कर लेने की कल्पना नहीं करनी चाहिए। मन्त्र शक्ति के नाम पर हम अकर्मण्यता या अन्धविश्वास को स्वीकार नहीं कर सकते।

जीवन में सफलता के लिए साधन तथा साधना दोनों आवश्यक हैं। संसाधन भी चाहिए, प्रयास-परिश्रम भी आवश्यक है, फिर मन्त्र शक्ति से सफलता की गति अवश्य बढ़ेगी। परन्तु शून्य प्रयास होने पर भी मन्त्र के चमत्कार की आशा में अकर्मण्य बनकर बैठे रहना उचित नहीं है।

व्यावहारिक उत्तम जीवनशैली - वैदिक मन्त्र साधना सभी को सुलभ, व्यावहारिक सबसे उत्तम जीवन शैली भी है। यह प्राचीन मनीषियों की अति उपयोगी खोज है। इसको समझना बहुत सरल है और साधना भी सहज सम्भव है।

इसके लिए साधारण विवेक, धैर्य, दृढ़ संकल्प और नियमित जीवन-चर्या का स्वभाव बनाना ही आवश्यक साधन हैं। विद्यार्थियों को इस दिशा में मोड़ना सरल भी है और सर्वाधिक उपयोगी व लाभप्रद भी। यह जन सामान्य के लिए आवश्यक जीवनचर्या का अंग है।

व्यावसायिकता का प्रभाव - उपासना-साधना की आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। आध्यात्मिक, मानसिक, प्राण शक्ति का प्रयोग करने, सिखाने तथा ऐसी शक्ति प्रदान करने या जाग्रत करने के लिए अनेक पद्धतियाँ विकसित की गयी हैं। ऐसे अनेक प्रयोगों में साधना तथा पवित्रता के स्थान पर धन को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। जो जितना अधिक शुल्क दे सकता है, उसे ऐसी शक्ति का उतना ही उच्च स्तर 'प्रदान' करने के लिए अधिक से अधिक शुल्क प्राप्त करना ही प्रमुख लक्ष्य बन गया है।

अनेक लोग शक्ति 'प्रदान' करने के नाम पर धन लेने के

लिए विज्ञापन और प्रचार के सभी उपाय अपनाते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया में धन का प्रवाह तो हो रहा है, परन्तु साधना का नहीं। इससे जुड़े अधिकांश लोग दिन-रात झूठ बोलने तथा छोटे-छोटे स्वार्थ के लिए दूसरों को धोखा देने का स्वभाव बनाये रहते हैं। उसमें साधना तथा सत्य के प्रति सम्मान की भावना तक नहीं होती है।

सहयोग करना उचित - गुरु को भावना के साथ धन का सहयोग भी देना चाहिए, इसे श्रद्धापूर्वक दिया गया दान भी कहा जा सकता है, परन्तु वह शक्ति 'प्रदान' करने का मूल्य नहीं हो सकता है। इतना स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि अध्यात्म में व्यवसाय नहीं हो सकता, यह तो उदार मन तथा सेवा-भावना से फलीभूत होने वाली विद्या है। धन लेकर शक्ति प्रदान करने का दावा करने वाले तथा गोपनीय मन्त्र का उपदेश देने वाले किसी साधक का हित नहीं कर सकते।

समुचित साधना से ही लाभ - अध्यात्म में समुचित साधना से ही लाभ होगा। अति प्राचीन काल से प्रमाणित वेदमार्ग उत्तम है। वेद सुनिश्चित राजमार्ग है। इस मार्ग से लक्ष्य प्राप्त होना निश्चित है, भटकने का कोई भय नहीं है। आध्यात्मिक शक्ति के लिए स्वाध्याय, सत्य, सेवा, समर्पण की आवश्यकता होती है। उसे धन से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। सत्य, लोकहित तथा साधना अनिवार्य है, उसका कोई विकल्प नहीं है।

सम्पूर्ण स्वास्थ्य का मूल भाव है सभी तरह से सुख तथा आनन्द का अनुभव होना। स्वस्थ शब्द का अर्थ है स्व में स्थित होना अर्थात् अपने मूल स्वरूप में स्थित रहना। सम्पूर्ण सृष्टि का मूल सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा है, अतः हमारा मूल स्वरूप

आनन्दमय है। विभिन्न परिस्थितियों के कारण इस स्थिति में विघ्न पड़ता है और हमारा आनन्दमय स्वरूप बाधित हो जाता है। कभी शारीरिक कष्ट होता है, कभी मानसिक, कभी सामाजिक या कभी किसी अन्य प्रकार का कष्ट होता है जिससे दुःखी हो जाते हैं और स्वयम् को स्वस्थ अनुभव नहीं करते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य के चार आयाम शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य हैं।

वैदिक चिन्तन प्रवाह के अनुसार आध्यात्मिक स्वास्थ्य ही इन सभी का मूल है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान शरीर के अंगों के आधार पर स्वास्थ्य के अनेक विभाग मानता है और उन विभागों के विशेषज्ञ चिकित्सक होते हैं। इसी प्रकार से सामाजिक स्वास्थ्य में भी पारिवारिक, प्रशासनिक, परिवेश, आर्थिक आदि विभाग माने जा सकते हैं। आर्थिक पक्ष तो इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि उसे स्वास्थ्य का पृथक् आयाम मानना ही उचित है। आर्थिक स्वास्थ्य ठीक न हो तो स्वास्थ्य की रक्षा कर पाना सामान्यतः सम्भव नहीं हो पाता है। परन्तु आध्यात्मिक स्वास्थ्य यदि ठीक हो तो अन्य सभी तरह के स्वास्थ्य का संरक्षण करने का कोई न कोई मार्ग निकल ही आता है। आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ है परमात्मा से सम्बन्ध की अनुभूति और उस पर पूर्ण विश्वास होना। आध्यात्मिक शक्ति का अर्थ है परमात्मा की शक्ति से संयुक्त होने का अनुभव होना। आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दिशा में प्रयास भी करते रहें तो जीवन में सम्पूर्ण स्वास्थ्य, सुख, आनन्द की सम्भावना बढ़ती अवश्य रहेगी। जितना ही हम अपने मूल स्वरूप परमात्मा के निकट होंगे, उतना ही स्वस्थ और आनन्दमय रहेंगे।

21. योग और अध्यात्म

अध्यात्म पूर्णरूपेण एक विज्ञान है, चेतना विज्ञान। विश्व ब्रह्माण्ड में दो तरह की सत्ताएँ विद्यमान हैं, जड़ भौतिक पदार्थ और शुद्ध चेतन तत्त्व। दोनों का सार्थक संयोग ही जीवन है। इसे एक प्रकार का त्रैत सिद्धान्त अर्थात् तीन सत्ताओं वाला सिद्धान्त कहा जाता है। किन्तु भौतिक पदार्थ, जीवन और चेतना को स्वतन्त्र, निरपेक्ष व अनादि नहीं माना जाना चाहिए। इन सबका मूल तो अनादि परम चेतना सत्ता ही है। उसे ब्रह्म, परमात्मा, महाभूत, मूल प्रकृति आदि किसी भी नाम से जाना जा सकता है। व्यावहारिक सुविधा के लिए उसे परमेश्वर, ओम्, अल्लाह, खुदा, गॉड, आदि कुछ भी पुकारा जा सकता है। जड़भूत व जीवन भी उसी के विभिन्न रूप हैं।

'जीवन' में जड़ भौतिक पदार्थ या जड़भूत का ही अंश अधिक है। प्रारम्भिक अविकसित व निम्नतर सरल जीवों में तो जड़भूत और भी प्रधान है। मानव जैसे अति विकसित जीव में चेतना का अंश अपेक्षाकृत अधिक है। चिन्तन तथा अनुभूति, चेतना के ही गुण हैं। मनुष्य के विकास में यही गुण सर्वाधिक मूल्यवान हैं। इन्हीं गुणों के कारण मनुष्य के विकास की अनन्त सम्भावनाएँ हैं। सिद्धान्त रूप में मानव के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। मानव को 'जीवन' के अवयव के रूप में जड़भूत तथा चेतन तत्त्व को इच्छानुसार विकसित करने का अवसर या अधिकार भी प्राप्त है।

'योग' वास्तव में जीवन में चेतना का अंश बढ़ाने की प्रक्रिया

या साधन है। यह वैसा ही है जैसे– शरीर पोषक भोजन, व्यायाम जड़भूत तत्त्व को बढ़ाने का साधन है। योग न कोई चमत्कार है और न ही कोई पारलौकिक वरदान। यह मानव मात्र को सुलभ और उपयोगी एक प्रविधि या तकनीक है, जिसे कोई भी सीख कर अपना सकता है और लाभ उठा सकता है।

यहाँ कुछ भ्रमों पर स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। इधर योग को कुछ लोगों ने धर्म से और अन्य लोगों ने व्यायाम से जोड़ने का प्रयास किया है। अतः यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि योग का सम्बन्ध न स्वास्थ्य-व्यायाम से है और न ही धर्म-सम्प्रदाय से। धर्म देश-काल के अनुसार बनाया गया नीतिशास्त्र है और आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है। व्यायाम पूर्णतः अलग विषय है, जिसका सम्बन्ध शारीरिक स्वास्थ्य से है।

धर्म देश-काल और सामाजिक संरचना व आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न होता है। परन्तु अध्यात्म और योग सभी के लिए समान हैं। इस पर देश-काल, सामाजिक संरचना व मान्यताओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष मान्यता के कारण किसी औषधि का उपयोग नहीं करता तो इसका इतना ही प्रभाव होगा कि वह उस औषधि के लाभ से वंचित रहेगा। योग के विषय में भी इतना ही कहा जा सकता है।

22. वैदिक अध्यात्म चिकित्सा केन्द्र

वैदिक अध्यात्म चिकित्सा के प्रति हमारी आस्था अनुभवों – अनुभूतियों के साथ-साथ दृढ़ हुई है, हमारा विश्वास बढ़ा है। अतः हमारा आग्रह है कि सभी वैदिक परिजन नियमित रूप से ओम्

साधना तथा वेदपाठ के साथ ही वैदिक अध्यात्म चिकित्सा सीखें, अभ्यास करें, उपयोग करें, स्वयम् भी लाभ उठायें तथा अन्य लोगों को भी लाभ प्रदान करें। इन व्यावहारिक प्रयोगों से लोगों को लाभ होगा, उनकी समस्यायें दूर होगीं तथा ओम् साधना, वैदिक उपासना के प्रति उनका विश्वास भी बढ़ेगा ही।

वैदिक अध्यात्म चिकित्सा द्वारा हम मनोवैज्ञानिक, मानसिक समस्याओं के साथ ही पारिवारिक सुख-शान्ति, सामाजिक अनुकूलन, वास्तु-दोष निवारण, परोक्ष कारणों से होने वाली समस्याओं का समाधान भी कर सकते हैं। सभी पद्धतियों के चिकित्सकों का अनुभव है कि बहुधा ऐसे शारीरिक कष्टों से पीड़ित रोगी भी आते हैं, जिनके रोग का कारण जानना सम्भव नहीं हो पाता है। विभिन्न जाँचों से भी उन रोगों का कारण जानने मे कोई सहायता नहीं मिल पाती है। ऐसे कष्टों को कुछ लोग ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव मानते हैं तथा कुछ लोग पूर्व जन्मों के कर्मों का फल बताते हैं। कुछ लोग ऐसे कष्टों का कारण तनाव आदि मनोवैज्ञानिक समस्यायें बताते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि तनाव आदि मनोवैज्ञानिक समस्या का भी कई बार कोई कारण स्पष्ट नहीं हो पाता है। ऐसे मामलों में वैदिक अध्यात्म चिकित्सा बहुत उपयोगी तथा प्रभावी होती है। वास्तु-दोष निवारण के लिए बहुधा विशेष तोड़फोड़ किये विना ही समाधान हो सकता है। नकारात्मक ऊर्जा निवारण के लिए मात्र टूट-फूट को ठीक करना तथा सफाई-रंगाई आदि पर्याप्त होता है।

अतः सभी वैदिक परिजनों से अपेक्षा है कि वैदिक अध्यात्म चिकित्सा सीखकर समाज को उसका लाभ प्रदान करें। इसके लिए स्वयम् साधना करें, अभ्यास करें, आत्म-विश्वास के साथ वैदिक

चिकित्सक के रूप में समाज के समक्ष उदाहरण बनें। यथा-सम्भव अपने निवास-स्थान पर ही वैदिक अध्यात्म चिकित्सा केन्द्र की स्थापना करें तथा प्रतिदिन एक घण्टा समय अवश्य प्रदान करें।

23. आध्यात्मिक स्वास्थ्य का महत्व

विश्व स्वास्थ्य संगठन की मान्यता के अनुसार स्वास्थ्य के चार आयाम शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक माने जाते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो वर्तमान समय की व्यवस्था में आर्थिक स्वास्थ्य के बिना कोई स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध नहीं हो सकती है, अतः शारीरिक, मानसिक, सामाजिक स्वास्थ्य का मूल तो आर्थिक स्वास्थ्य ही माना जाना चाहिए। आध्यात्मिक दृष्टि से परमात्मा का अनुग्रह-अनुदान प्राप्त होने पर सभी समस्याओं का कोई न कोई समाधान मिल ही जाता है।

इसका अनुभव समाज में अनेक लोगों को है भी और इस तथ्य को किसी भी तर्क से नकारा नहीं जा सकता है। इतना तो विश्वास करना ही चाहिए कि ईश्वर की कृपा से न्यूनतम आवश्यकता तो पूरी होती ही रहेगी। आर्थिक समस्या के कारण अत्यधिक व्यय-साध्य अत्याधुनिक चिकित्सा सेवाएँ भले ही न मिल सकें, परन्तु इतना भरोसा रखें, ईश्वर की कृपा सभी स्वास्थ्य समस्याओं की सर्वाधिक गुणकारी औषधि है तथा परमात्मा से प्रार्थना ही सबसे प्रभावी चिकित्सा। हम इतना अवश्य कहना चाहते हैं कि सभी चिकित्सा पद्धतियाँ ईश्वरीय व्यवस्था तथा प्रकृति के नियमों के अनुसार ही कार्य करती हैं, अतः उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

यथासम्भव सुयोग्य चिकित्सक के मार्गदर्शन का उपयोग करें तथा कोई अन्य उपाय न होने पर ईश्वर से प्रार्थना करें, अवश्य लाभ होगा। हमें विश्वास है कि इस तथ्य को अपनाकर हम शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से भी स्वस्थ रह सकते हैं। यह भी ध्यान रहे कि ईश्वर की कृपा पाने के लिए हमें भी सत्य, सेवा, समर्पण की भावना का पालन करना चाहिए।

24. स्वाध्याय का अमृत, सत्संग की संजीवनी

वैदिक परिजनों का विश्वास है कि आध्यात्मिक स्वास्थ्य ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य का मूल है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दिशा में हमारा प्रयास स्वाध्याय, सत्संग, सेवा, साधना का क्रम बनाये रखना है। सेवा, साधना का स्वभाव बनाये रखने के लिए भी स्वाध्याय, सत्संग का नियमित क्रम बनाये रखना आवश्यक है। यदि नियमित स्वाध्याय तथा सत्संग करते रहें तो विस्मरण तथा भटकाव की आशंका नहीं रहेगी, अन्यथा सांसारिक कार्यों में व्यस्तता तथा आलस्य के कारण अध्यात्म से विमुख होने का भय बना रहता है। एक बार अध्यात्म से दूर हो जाने पर पुनः स्वाध्याय-सत्संग का अवसर मिलने पर ही आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दिशा में प्रयास कर पाना सम्भव हो पाता है।

स्वाध्याय-सत्संग का क्रम बनाये रखने के लिए ही धार्मिक कृत्य पूजा-पाठ आदि की परम्परा विकसित की गयी है। नियमितता बनाये रखने के लिए ही दैनिक पाठ आदि का क्रम निर्धारित कर उसका पालन करने का नियम बनाया जाता है। इसके लिए व्रत लिया

जाता है कि दैनिक निर्धारित पाठ करने से पूर्व भोजन ग्रहण नहीं करेंगे। विशेष परिस्थितियों में ही इसमें छूट लेने तथा उसका भी प्रायश्चित करने का नियम बनाया जाता है। जीवन में आध्यात्मिकता को दृढ़ता से बनाये रखने के लिए ही ये विधि-विधान बने हैं। इस भावना को समझते हुए हमें इसका पालन करना चाहिए।

हमारा अनुरोध है कि हमारे सभी मित्र परिजन नियमित वेदपाठ का क्रम बनायें तथा साप्ताहिक सत्संग की व्यवस्था अवश्य करें। सत्संग में भी वेदपाठ तथा वेदमन्त्रों पर चर्चा ही महत्वपूर्ण है, किसी प्रकार का जटिल कर्मकाण्ड नहीं। आयोजकों की भावना के अनुसार कुछ कृत्य सम्मिलित किये जा सकते हैं। किसी धार्मिक कृत्य से हमारा विरोध नहीं होना चाहिए। हमारा निवेदन केवल इतना ही है कि वेदपाठ तथा वेदचर्चा ही सत्संग में महत्त्वपूर्ण है, कोई जटिल कर्मकाण्ड अनिवार्य नहीं माना जाना चाहिए।

25. अग्नि का धारण

तप्तायनी मे असि, वित्तायनी में असि,
अवतात् मा नाथितात् अवतात् मा व्यथितात्।।
विदेत् अग्निः नभो नाम अग्ने,
अंगिरः आयुना नाम्ना आ इहि,
यो अस्याम् पृथिव्याम् असि,
यत् ते अनाथृष्टम् नाम यज्ञियम् तेन त्वा दधे।
विदेत् अग्नि नभो नाम अग्ने, अंगिरः आयुना नाम्ना आ इहि,
यो द्वितीयस्याम् पृथिव्याम् असि,

यत् ते अनाधृष्टम् नाम यज्ञियम् तेन त्वा दधे।
विदेत् अग्निः नभो नाम अग्ने, अंगिरः आयुना नाम्ना आ इहि,
यः तृतीयस्याम् पृथिव्याम् असि,
यत् ते अनाधृष्टम् नाम यज्ञियम् तेन त्वा दधे। अनु त्वा देववीतये।।

हमको अपने जीवन में समस्त ऊर्जा, विद्या व धन परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है। उसकी कृपा से ही हमारी रक्षा होती है। नाथित शब्द नाथृ धातु से बना है जिसका अर्थ याचना करना, रोगी होना, श्रीमान् होना, आशीर्वाद देना है। इस मन्त्र में याचना तथा रोगी होने से बचाने की प्रार्थना तो है ही, बहुत धनवान् होने तथा आशीर्वाद देने के प्रपंच से भी बचाने की प्रार्थना की गयी है। उपासक आरोग्य तथा आत्मनिर्भरता चाहता है जिससे वह सेवा कार्य कर सके, परन्तु सम्पन्नता तथा दिखावे के सम्मान का आडम्बर नहीं चाहता है। नभ नाम वाली अग्नि का भाव नभ या अन्तरिक्ष में व्याप्त अग्नि माना गया है। नभ् धातु का अर्थ हिंसा भी होता है। नभ वही स्थान है जहाँ शून्य है, अर्थात् जीवन की हिंसा है। नभ का अर्थ न ही है भा अर्थात् प्रकाश भी किया गया है। अग्नि में सब कुछ नष्ट हो जाता है। परन्तु वही अग्नि का आधार भी है, आयु तथा अंगिरः नाम वाला भी है। हम अग्नि का जैसा उपयोग करें, वह वैसा ही प्रभाव देगा। यही बात अग्नि नाम वाले परमात्मा तथा अग्नि जैसे ऊर्जावान् सभी पदार्थों तथा लोगों के लिए भी है। हम ऐसे अग्नि तत्व को देवों की तृप्ति के लिए धारण करते हैं।

26. जीवन में देवत्व की प्राप्ति

परमात्मा और वेदवाणी की उपासना करने पर सिद्ध साधकों और प्रकाण्ड विद्वानों की तरह नये उपासकों को भी इसी संसार में तथा इसी जीवन में देवत्व प्राप्त हो जाता है, तेजस्वी, अग्नि तथा सूर्य के पास जाने पर सभी को प्रकाश तथा गरमी प्राप्त होती है।

परमात्मा तथा उसकी वेद वाणी अग्नि के समान तेजस्वी है। वे अपने उपासकों को इसी जीवन में देवों को प्राप्त करा देते हैं। देव का अर्थ है दिवा। वेद ज्ञान से पूर्ण विद्वान् तथा देदीप्यमान प्रकृति दिव्य शक्तियाँ हैं। उनकी प्राप्ति इसी जीवन में और इसी संसार में होती है। इसके लिए मरने के बाद किसी कल्पित स्वर्ग में जाने या पुनर्जन्म लेने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है।

ऋग्वेद के दूसरे मंत्र की व्याख्या में कहा गया है कि वैदिक साधना फल प्रत्यक्ष मिलता है। वेद हमको काल्पनिक-स्वर्ग-नरक या पुनर्जन्म के जाल में नहीं फंसाते हैं। हमारे कर्मों पर विचार मरने के बाद नहीं होगा, बल्कि इसी जीवन में हमें कर्मों का प्रत्यक्ष फल मिलेगा। इस मंत्र में बताया गया है कि पहले से विद्वान हों या वेद के नये विद्यार्थी हों, सभी को उससे अपनी क्षमता के अनुसार लाभ अवश्य होता है। इसमें एक सन्देश यह भी है कि विद्वानों से वेद का ज्ञान प्राप्त करने पर सरलता से समझ में आ सकता है। नये विद्यार्थियों को अपने से अधिक जानने वाले विद्वानों की सहायता से वेद का अध्ययन करना चाहिए। यही गुरु का महत्त्व है। गुरु स्वयं परमात्मा या वेद के समकक्ष नहीं है, उसे प्राप्त करने तथा जानने-समझने का साधन है। गुरु के महत्त्व को नकारा नहीं जा

सकता है, परन्तु उसे साध्य मानकर उसी पर रुक नहीं जाना चाहिए।

27. ईश्वर का शुद्ध स्वरूप जानना आवश्यक

ईश्वर को अन्धविश्वास की तरह मान लेना पर्याप्त नहीं है। उसके वास्तविक स्वरूप को जानना तथा धारण करना आवश्यक है, तभी विवेक जाग्रत होता है। गायत्री मंत्र में ईश्वर को स्त्री या पुरुष नहीं, अपितु उभयलिंग माना गया है और उसके लिए तत् शब्द का प्रयोग हुआ है। उसे स्त्री या पुरुष मानते तो सः या सा का प्रयोग किया जाता है।

प्रसिद्ध गायत्री मंत्र में परमात्मा को सबको उत्पन्न करने वाला बताया गया है। इससे स्पष्ट है कि सभी जीव तथा प्रकृति परमात्मा से ही उत्पन्न हैं। परमात्मा के अतिरिक्त स्वतन्त्र अस्तित्व अन्य किसी का नहीं है। वही वरण करने योग्य और श्रेष्ठ है। उसके शुद्ध स्वरूप को जानना, अनुभव करना और धारण करना चाहिए। ईश्वर के रूप में कोई कल्पना कर लेने से वह कोई भला नहीं कर सकता है। किसी को भी प्रधानमंत्री मानकर उसका नाम जपते रहें, तो वह हमारा हित नहीं कर सकेगा। यदि हम वास्तविक प्रधानमंत्री की जानकारी करके उससे सम्पर्क बना लें तो हमारा लाभ हो सकता है। इसी तरह परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को जानना और धारण करना आवश्यक है। यही गायत्री मंत्र का मुख्य संदेश है। ऐसा करने से परमात्मा की चेतना शक्ति हमारी बुद्धि को प्रेरणा देती है और हम अपने लिए उचित मार्ग चुन पाते हैं।

केवल गायत्री मंत्र की साधना करके श्रीराम शर्मा आचार्य

भगवान् बन गये, लेकिन आर्य समाज और गायत्री परिवार के लाखों लोग प्रतिदिन गायत्री मंत्र का जप करके भी कोई विशेष उपलब्धि नहीं प्राप्त कर सके। इसका कारण यही है कि मंत्र के मूलभाव को समझे बिना केवल जाप करते रहने से कोई लाभ नहीं मिल पाता है। इसके लिए आवश्यक है कि वेद पाठ तथा वेद का स्वाध्याय किया जाये, जिससे वेद विज्ञान तथा मन्त्र विज्ञान स्पष्ट हो सके। गायत्री मंत्र भी वेद का एक मंत्र ही है। वेद से अलग करके केवल जप करने से लाभ नहीं उठाया जा सकता है। वेद का स्वाध्याय करने के साथ गायत्री मंत्र का अर्थ चिन्तन करना चाहिए। उसके ऋषि, देवता, छन्द को समझकर उसको ध्यान में रखते हुए गायत्री साधना करनी चाहिए। ऐसा करने पर लाभ अवश्य होगा।

28. ईश्वर की कृपा

ईश्वर की कृपा से से सबकुछ सम्भव है। हम सबको ईश्वर की कृपा, दयालुता तथा न्याय पर विश्वास रखना चाहिए। अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य से यथासम्भव प्रयास कर लेने पर भी जो नहीं हो पाता है, वह ईश्वर की कृपा से सम्भव हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर की कृपा के भरोसे बैठे रहा जाये। कर्म करना हमारा अधिकार है तथा कर्तव्य भी। कर्तव्य का पालन करते हुए, अपनी क्षमता के अनुसार कर्म करते हुए ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए। हमारी सामर्थ्य–क्षमता की सीमा में जो कार्य सम्भव नहीं हो सकेंगे, उसमें ईश्वर की सहायता प्राप्त होगी, यह विश्वास रखना चाहिए।

यदि हम ईश्वर का कार्य कर रहे हैं, अपनी ओर से पूर्ण प्रयास

कर रहे हैं, तो उस कार्य को पूर्ण करने का दायित्व ईश्वर का है, उस कार्य को पूर्ण होना ही है। ईश्वर ने हमारे लिए जितना कर्तव्य निश्चित किया है, उसके लिए अवसर और संसाधन भी जुटेंगे ही। अतः हमारे पास जो भी संसाधन हैं, जितना अवसर मिलता है, उसका उपयोग करते हुए प्रयास करते रहें। यदि ईश्वर को हमसे अधिक कार्य कराना होगा तो उसके लिए व्यवस्था हो जायेगी, अन्यथा स्वीकार कर लें कि शेष कार्य के लिए ईश्वर ने किसी और का चयन किया है। यह ईश्वर की इच्छा है, उसका सम्मान करना चाहिए। कार्य की सफलता तथा पूर्णता की चिन्ता हमें नहीं करनी है, वह तो ईश्वर का कार्य है। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि हम अपने सभी कर्मों का दायित्व ईश्वर पर डाल दें और मान लें कि हम तो मात्र उसकी कठपुतली हैं। कर्म पर हमारा अधिकार है, अतः उसका दायित्व भी हम पर है। अच्छे कार्य में ईश्वर का सहयोग अवश्य मिलता है तथा हमारे गुण-कर्म-स्वभाव-प्रयास आदि के अनुसार हमें सफलता, श्रेय तथा फल की प्राप्ति होती है। ईश्वर की कृपा, दयालुता तथा न्याय पर विश्वास रखें।

29. प्रकृति का अहिंसक स्वरूप

मनः ते आ प्यायताम्, वाक् ते आ प्यायताम्,
प्राणः ते आप्यायताम्, चक्षुः ते आप्यायताम्, श्रोत्रम् ते आप्यायताम्।
यत् मे क्रूरम् यत् आस्थितम्, तत् ते आप्यायताम् निस्त्यायताम्,
तत् ते शुध्यतु शम् अहोभ्यः।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मा एनम् हिंसीः।।

हमारे मन, प्राण, दृष्टि, श्रवण आदि की क्षमता बढ़े, हमारे कर्म महत्त्वपूर्ण हों, शुद्ध हों, जिससे वे चर्चित हों। प्रकृति हमारी रक्षा करे, हिंसा न करे। क्रूर शब्द विचारणीय है। प्राचीन धातुपाठों में कृ धातु ही मिलती है, जिससे इस शब्द की व्युत्पत्ति मान सकते हैं। इसका अर्थ करना है। दीर्घ ऋकार वाले कृ धातु का अर्थ विकीर्ण करना होता है। इससे भी आधुनिक क्रूरता-कठोरता का अर्थ देने वाला भाव लेना कठिन ही प्रतीत होता है। अतः वेद में क्रूर का अर्थ कृत्य या कर्म ही प्रतीत होता है। इस प्रकार यत् ते क्रूरम् यत् आस्थितम् तत् ते आप्यायताम् निस्त्यायताम् का अर्थ तुम्हारे कर्म को, जो स्थिर है, वह तुम्हारा बढ़े, शब्द करे अर्थात् प्रभावी हो, चर्चित हो, फैले होगा। इसी मन्त्र में हिंसा न करने की बात कही गयी है, अतः क्रूरता-कठोरता अर्थात् एक प्रकार से हिंसा को स्थिरता देने की बात संगत नहीं है। क्रू, क्रूर = निर्दय होना, निर्दयता करना धातु का उल्लेख प्राचीन धातुकोशों में नहीं मिलता है, यद्यपि आधुनिक प्रयोगों में क्रूर तथा क्रूरता शब्द का प्रयोग निर्दयता, कठोरता के अर्थ में बहुलता से होता है। यदि इसका अर्थ क्रूरता-कठोरता करना हो तो क्रूरता-कठोरता अर्थात् हिंसा को स्थिरता देने का भावार्थ उसे एक स्थान पर स्थिर कर देने अर्थात् रोक देने, सीमित कर देने के रूप में ले सकते हैं। स्था धातु का अर्थ स्थित होना, ठहरना के साथ ही मार्ग प्रतीक्षा करना, विनती करना, गिड़गिड़ाना, अपना अभिप्राय दूसरे को समझाना भी होता है। अतः यत् ते क्रूरम् यत् आस्थितम् का अर्थ तुम्हारे क्रूर को विनती करने, गिड़गिड़ाने दे, अर्थात् उसे दयनीय स्थिति में रखें, प्रबल न होने दें, के रूप में कर सकते हैं। यह भावना आप्यायताम् - बढ़े, निस्त्यायताम् - शब्द करे अर्थात् प्रभावी हो,

चर्चित हो, फैले, यह कामना की गयी है।

30. अहिंसा का लाभ

अहिंसा का सीधा अर्थ है हिंसा न करना, किसी को पीड़ा न पहुँचाना। एक बात यह भी स्पष्ट है कि अहिंसा नकारात्मक शब्द है अर्थात हिंसा में 'अ' जोड़ कर बना है। कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वाभाविक प्रकृति तो हिंसा ही थी और है। हिंसा से होते विनाश का अनुभव कर मनुष्यों ने कहा कि हिंसा नहीं करनी चाहिए और इस प्रकार अहिंसा का मार्ग अस्तित्व में आया।

हिंसा की प्रकृति स्वयं उस व्यक्ति के लिए सबसे अधिक घातक है जो हिंसा करता है। ऐसा व्यक्ति स्वयम् ही उद्विग्न व तनावग्रस्त रहता है। उसका मस्तिष्क अस्थिर होता है तथा वह स्वयम् बहुत भयग्रस्त रहता है। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि हिंसा का भय सबसे अधिक उस व्यक्ति को ही होता है जो स्वयम् हिंसक प्रकृति का होता है। अन्य लोगों पर तो आपत्ति बाद में आती है।

डाकुओं व लुटेरों का बहुत आतंक समाज में होता है। लेकिन समाज का सरल स्वभाव व्यक्ति उतना डाकुओं से आतंकित नहीं रहता जितना आतंक डाकुओं को रात-दिन घेरे रहता है। अतः मानव संस्कृति के प्रथम प्रभात में ही मनुष्यों ने अहिंसा के मार्ग की खोज कर मानव को हिंसा कि विभीषिका से बचाने का प्रयास किया था।

यह अहिंसा का सामाजिक पक्ष है। आध्यात्मिक अहिंसा का स्थान बहुत उच्च है। ऐसा वर्णन मिलता है कि प्राचीन ऋषि घोर जंगल में आश्रम बनाकर रहते थे। शेर, चीते आदि अनेक हिंसक पशु

स्वच्छन्द विचरण करते थे। लेकिन आश्रम की सीमा में वे भी अपना हिंसक स्वभाव भूल जाते थे। शेर और बकरी एक साथ बैठे रहते थे। ऐसा तपस्वी ऋषियों की उच्चस्तरीय अहिंसा के प्रभाव से ही संभव, होता था।

31. अहिंसक सिद्धि

हो सकता है कि आज आप इस बात पर सहज विश्वास न कर सकें। लेकिन यह सत्य है कि जो व्यक्ति दीर्घकाल तक मन, वाणी व कर्म से पूर्ण रूपेण अहिंसक होता है, उसके पास किसी भी प्राणी में हिंसा का भाव उत्पन्न हो ही नहीं सकता। इसी शक्ति के कारण उन्हें न तो हिंसक पशुओं का भय रहता है और न ही डाकू - लुटेरों का।

हम जानते है कि अहिंसक गौतम बुद्ध के सामने अंगुलिमाल जैसा क्रूर भी सारी हिंसक वृति भूल गया था। अभी कल की ही तो बात है जब महात्मा गांधी हिंसा की लपटों के बीच शांत भाव से चले जाते थे और एक दूसरे के खून के प्यासे साम्प्रदायिक दुर्भावना से अन्धे हिन्दू व मुसलमान हथियार फेंक कर नतमस्तक हो जाते थे। सन्त विनोबा भावे के सामने सैकड़ों डाकुओं ने बंदूकें फेंक दी और सीधे सरल किसान बन गये। इसे आप सिद्धि भी कह सकते है। अहिंसा का सिद्ध हो जाना भी कहा जा सकता है। महात्मा गांधी पर नाथूराम गोड्से ने गोली चला दी, उसकी हिंसक वृति लुप्त नहीं हुई। एक अहिंसा का प्रचारक हिंसा का शिकार हो गया। इसका कारण यह था कि महात्मा गांधी की अहिंसा उच्चस्तरीय आध्यात्मिक अहिंसा

नहीं थी। वह सामाजिक व राजनैतिक अहिंसा ही थी। इनके अनेक विचार व कई निर्णय या कार्य ऐसे भी थे जिससे अहिंसा की पूर्णता खंडित होती थी वह राजनैतिक व्यक्ति थे और इतना तो बिल्कुल स्पष्ट है कि राजनीति में ऋषियों के स्तर की उच्च चरित्र का दोष नहीं केवल बहुमुखी जीवन का अपरिहार्य परिणाम मानना चाहिए। उन्होंने हिंसा को जिस सीमा तक अपनाया, उस सीमा तक परिणाम भी सामने आया तथा अहिंसा व्यावहारिक रूप में प्रतिष्ठित हुई।

इस बात को वशिष्ठ के उदाहरण से समझ सकते है। उन दिनों विश्वामित्र युवा राजकुमार थे। महर्षि वशिष्ठ से रूष्ट होकर उन्होंने सशस्त्र सेना के साथ आक्रमण किया। एक तरफ वशिष्ठ की अहिंसा थी और दूसरी ओर राजकुमार विश्वामित्र की सेना। अहिंसा विजयी हुई। सेना के शस्त्र व्यर्थ हो गये। यह अहिंसा की पूर्ण अखंड प्रतिष्ठा का परिणाम था।

यदि इतनी उच्च अहिंसा की साधना व्यावहारिक न लगे तो भी एक सीमा तक तो हम अहिंसा को अपना सकते है। कम से कम अनावश्यक रूप से किसी को कष्ट न दें। जितना संभव हो किसी का बुरा न सोचें। अपना हित सोचना अच्छी बात है। लेकिन किसी का अहित करके नहीं। हम प्रगति करें। यह महत्वाकांक्षा भी सराहनीय है। लेकिन किसी की प्रगति से ईर्ष्या करना हिंसा है।

भारतीय संस्कृति स्वीकार करती है कि राजनीति में अहिंसा संभव नहीं। देश के आंतरिक मामलो में यथासंभव अहिंसा का सिद्धान्त होना चाहिए। लेकिन सीमा पर शत्रु का सामना तभी किया जा सकता है। जब हथियार पैने हों और सैनिक वीर योद्धा हों। इसीलिए हमारी संस्कृति में ब्राहाणों, मनुष्यों व विचारकों के लिए तो

मांस खाना वर्जित है लेकिन क्षत्रियों या सैनिकों पर ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। जो सैनिक बर्फ के जमाव बिन्दु से भी 50 अंश कम तापमान वाले सियाचिन क्षेत्र में शत्रु से लोहा लेता हो उसके लिए मांस तो क्या मदिरा भी अनिवार्य है, उसे कभी अधर्म नहीं कहा जा सकता।

भारतीय संस्कृति की इसी व्यावहारिकता के कारण विद्वानों, मनुष्यों व तपस्वियों ने सांस्कृतिक दिग्विजय की तथा भारत को 'जगद्गुरू' का पद दिलाया। इसके साथ ही भीषण शस्त्रों से सुसज्जित भारतीय क्षत्रियों ने चक्रवर्ती साम्राज्य भी स्थापित किया और आज? न हमारे पास शस्त्र बल है और न तपोबल। परिणाम - स्वरूप हमारे ऊपर आसुरी विदेशी संस्कृति हावी होती जा रही है और भारतवर्ष के विशाल भू-भाग पर विदेशी अधिकार जमाये बैठे हैं। और हम आवाज भी नहीं उठा पा रहे हैं। इस कायरता तथा पलायन की प्रवृत्ति को अहिंसा नहीं कहा जा सकता। यह महान 'अहिंसा' धर्म का सरासर अपमान हैं।

32. सारा खेल मन का है

मन बड़ा शक्तिशाली है। संसार में सारा खेल मन का ही है। हमारे व्यक्तित्व का निर्माण मन ही करता है। मन में जैसे विचार आते हैं, व्यक्ति वैसे ही कर्म करने लगता है। मन जिस प्रकार से विचार करता है, धीरे-धीरे उसी प्रकार का स्वभाव व्यक्ति का बन जाता है। फिर व्यक्ति के जीवन की वही दिशा निर्धारित हो जाती है। कोई व्यक्ति एक बार जिस प्रकार से विचार करना प्रारम्भ करता है।

धीरे-धीरे वह उन्ही विचारों का मूर्तिमान रूप बन कर सामने आता है।

एक मंत्र है- चित्तम् मनः। यह छोटा-सा मंत्र हमें बड़ा संदेश देता है। वास्तव में मनुष्य लगातार जो कुछ सोचता रहता है, धीरे-धीरे वैसा ही चरितार्थ होने लगता है इस सन्दर्भ में ही एक प्रसंग आता है। एक व्यक्ति कल्पवृक्ष के नीचे बैठा था। काफी दूर से यात्रा करते-करते वह थक गया था। उसने सोचा कि यदि यहाँ अच्छी-सी सेज होती तो आराम से सोया जा सकता था। कि सेज वहाँ प्रकट हो गयी। वह यात्री सेज पर सो गया। जब वह सो कर उठा तो उसे भूख लगी। उसने सोचा काश! अच्छा-सा भोजन मिल जाता। उसका सोचना था कि सुन्दर पकवानों से सजी थाली उसके सामने आ गयी। फिर उसने सोचा कि यदि कोई सुन्दर रमणी पैर दबाती तो कितना आनन्द आता। इतने में एक सुन्दर रमणी प्रकट होकर उसके पैर दबाने लगी।

अब तक तो ठीक था लेकिन अब उसने चिन्तन की दिशा बदली। उसने सोचा कि यदि मेरी पत्नी यह सब देख ले तो वह बहुत झगड़ा करेगी, इतना सोचते ही उसकी पत्नी आ खड़ी हुई और उससे झगड़ने लगी। उसने सोचा कि पत्नी ने उसकी पिटाई शुरू कर दी।

वास्तव में यह सारा संसार ही कल्पवृक्ष है। हम सभी लोग यात्री की तरह है। एक छात्र वर्ष भर डरा रहता है कि कहीं मैं फेल न हो जाऊँ, तो वह छात्र परीक्षा में निश्चित ही असफल हो जाता है। चित्तम् मंत्र एक छात्र सोचता है कि मुझे तो परीक्षा में प्रथम आना है। जो छात्र सत्र के प्रारम्भ से ही यह सोचता रहता है तो वह अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण अवश्य होता है। छात्र बन्धु इस बात को आजमाकर देख लें अभी से सफलता का मंत्र दोहराना प्रारम्भ करें, असफलता

उसके पास फटक नहीं सकती। यह मेरा पूर्ण विश्वास है। अधिकांश लोग नकारात्मक चिन्तन के शिकार होते हैं। ऐसे लोग बराबर अपनी कमियों का रोना रोते रहते हैं कि मेरे पास यह नहीं है, वह नहीं है। साधनों के अभाव में मैं प्रगति कैसे कर सकता हूँ, ये लोग वास्तव में प्रगति नहीं कर पाते। बात वहीं है चित्तम मंत्रः।

मनुष्य की सफलताओं का सबसे प्रमुख कारण है नकारात्मक चिन्तन। निराशापूर्ण एवं नकारात्मक चिन्तन ही हमको आगे नहीं बढ़ने देता है। प्रगति के मार्ग में यही सबसे बड़ी बाधा है।

मैं अभावों और साधनहीनता की कठोर एवं ठोस वास्तविकताओं को नकारना नहीं चाहता। यदि भोजन न हो तो केवल सोचने से पेट नहीं भर सकता है। लेकिन यह सामाजिक व तत्कालीन बात हुई। आशावादी व सकारात्मक चिन्तन से कुछ दिनों बाद उसके पास रोटी भी होगी और दिखाई पड़ने लायक ठोस प्रगति भी। यह एक तथ्य है, वास्तविकता है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। निराशाजनक चिन्तन से मन में यह बात बैठ जाती है कि अब तो यही नियति है अब तो इसी गयी-गुजरी स्थिति में ही जीवन बिताना मजबूरी है तो फिर प्रगति के कोई उपाय नजर ही नहीं आते और आगे बढ़ने का प्रयास नहीं बन पड़ता। ऐसी अवस्था में जहाँ के तहाँ पड़े रहना ही वास्तव में नियति बन जाती है। सारा उत्साह मारा जाता है और प्रगति के सारे मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। आशावादी सकारात्मक चिन्तन से जीवन में उत्साह, साहस और कर्मशीलता का संचार होता है। जब व्यक्ति प्रयत्नशील होता है तो प्रगति का कोई मार्ग निकल ही आता है।

जीवन में सफलता का एक ही मूलमंत्र है। सकारात्मक

चिन्तन एक ही मंत्र याद रखिये–चित्तम् मंत्रः। सकारात्मक चिन्तन का सिद्धान्त कोरा आदर्शवाद नहीं है, इसको व्यवहार में अपना कर देखिये और परिणाम परखिए। इस सिद्धान्त ने अनेक लोगों को नव जीवन दिया है। रोटी की चिन्ता से ग्रस्त जाने कितने लोग इस सिद्धान्त को अपना कर आज सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जाने कितने लोगों के कलहपूर्ण पारिवारिक जीवन को इस सिद्धान्त ने प्रेमपूर्ण बना दिया है। जाने कितने लोगों ने अपना खोया स्वास्थ्य फिर से प्राप्त किया है। ऐसे अनेक लोगों ने सिद्ध कर दिया है कि मन ही कल्पतरू है, मन ही कामधेनु है और मन ही भाग्य विधाता है।

जब व्यक्ति सोचता है कि मेरे परिवार के लोग मेरे विपरीत हैं, झगडालू हैं, तो वह जब भी उनके सामने आता है तो उसके अचेतन मन में बैठी हुई वह बात उसके व्यवहार को उसी प्रकार का बना देती है। उसकी बात तथा क्रिया कलाप उसी परिप्रेक्ष्य में होते हैं परिणाम स्वरूप कलह और बढ़ता है जब वह सोचता है कि लोग अपने है ये हमें अवश्य चाहते है तो उसके अपने व्यवहार से प्रेम झलकता है और सामने वाले व्यक्ति के मन में भी स्वतः स्नेह भाव का संचार होने लगता है।

कभी-कभी प्रयत्न करने पर जब किसी का स्वास्थ्य नहीं बन पाता है तो वह समझने लगता है कि उसे कोई गम्भीर बीमारी है और उसका इलाज नहीं हो सकता। अब तो स्वास्थ्य कभी भी ठीक नहीं होगा। यह बात अचेतन मन में बैठ जाने पर कोई भी उपचार उसका भला नहीं कर सकता ।

यदि ऐसे व्यक्ति सकारात्मक चिन्तन की ओर सोचें कि वे

तो अनन्त शक्ति स्रोत परमात्मा का अंश हैं। लगातार आशा, चिन्तन करते रहने से निश्चित रूप से (मेरा स्वयं का अनुभव है) जब कोई चिकित्सा या कोई भी उपचार लाभ न करे, तो इस मंत्र को आजमा कर देखिये। चित्तम् मंत्र।

33. दर्शन ही नहीं, आचरण भी श्रेष्ठ हो

ऊँचा दर्शन और नीच आचरण आज हिन्दुओं की पहचान बन गयी है और वही पतन का कारण भी। यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय के मन्त्र 'ईशावास्यम् इदम् सर्वम्' के अनुसार सभी जड़ चेतन में ईश्वर का अनुभव करते हैं। नदी, पर्वत, वृक्षों से लेकर गाय, बन्दर और विषैले सर्प तक की पूजा करते हैं। लेकिन अपने धर्म-भाई, दलितों-शूद्रों का छू जाना भी सहन नहीं कर सकते हैं। यह स्थिति आज भी महानगरों के शिक्षित लोगों में भी बनी हुई है। इसमें सुधार किये बिना हिन्दुओं का उत्थान सम्भव नहीं है।

सभी जातियों के बीच सहज भाव से रोटी-बेटी का सम्बन्ध होना चाहिए। मनुस्मृति के अनुसार कन्या का विवाह अपने से उच्च वर्ण में करना श्रेष्ठ माना गया है। इसके विपरीत प्रतिलोम विवाह भी मान्य है। केवल समान गोत्र या वंश में विवाह करने को मना किया गया है। अब गोत्र का स्थान जाति ने ले लिया है। अतः अपनी जाति में विवाह को अनुचित माना जाना चाहिए। महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी तथा डॉ. लोहिया का भी यही सपना था। वेद तो मनुष्य मात्र को समान मानते हैं।

इस्लामी भाईचारा तथा ईसाई सेवाभाव वेद के अधिक

अनुकूल हैं। इस श्रेष्ठ आचरण के कारण ही भारत में अल्पसंख्यक होते हुए भी वे प्रभाव तथा महत्व अधिक रखते हैं। वे अपने मूल ग्रन्थ कुरान तथा बाइबिल को पढ़ते हैं तथा मानते भी हैं। हिन्दुओं को अपने मूल ग्रन्थ वेद का ज्ञान न होने से ही उनका महत्व कम हुआ है। दयानन्द, विवेकानन्द, अरविन्द, श्रीराम शर्मा के वेद प्रचार करने से ही पुनः भारत को महत्व मिलना प्रारम्भ हुआ। यदि लोग वेद को पढ़ें तथा उसके अनुसार आचरण करते हुए सामाजिक भेदभाव समाप्त कर दें तो विश्व में हिन्दुत्व ही सर्वोच्च होगा। इसके लिए घर-घर में वेद स्थापना तथा वेद के अनुसार आचरण भी आवश्यक है। सरकार को भी वैदिक सामाजिक एकता और अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन देने के लिए रोजगार तथा अन्य सुविधाएँ देनी चाहिए। इससे क्रान्तिकारी कदम उठाने वाले लोगों को सामाजिक विरोध का सामना करने में सहायता मिलेगी।

34. समाज का हित सोचें

यजुर्वेद के तीसवें अध्याय के तीसरे मंत्र 'विश्वानि देव सवितुः' में कहा गया है कि परमात्मा सबको उत्पन्न करने वाला है। वही देवों का महादेव है। उससे हम अपनी बुराइयों को दूर करने तथा सद्गुणों का विकास करने की प्रार्थना करते हैं। इस मन्त्र में यह भी कहा गया है कि जो आचार-विचार दुःख देने वाले हैं, उनको दूर करना है और जो सबके लिए हितकारी हैं, उनको अपनाना है। ऐसा देवपुरुषों अर्थात् विद्वानों के मार्गदर्शन से ही सम्भव है। इस मन्त्र में देव का अर्थ विद्वान् भी है तथा परमात्मा भी। देव का अर्थ है दिव्य

ज्ञान के प्रकाश से देदीप्यमान, प्रकाशित। ऐसे व्यक्ति को समाज में विद्वान् या देव कहते हैं। ईश्वर तो परम विद्वान्, परम देव है ही। इसमें श्लेष अलंकार है। इसका अर्थ है कि परमात्मा से प्रार्थना करें तथा विद्वानों का मार्गदर्शन प्राप्त करें तभी बुराइयों से बचना तथा सद्गुणों और सदाचार को धारण करना सम्भव हो सकेगा। महापुरुषों का जीवन इसी प्रकार का होता है। इस मन्त्र को जीवन में चरितार्थ करने वाले ही महान् बनते हैं और समाज को प्रकाश देते हैं। हमें महापुरुषों का स्मरण और सम्मान करने के साथ ही स्वयं भी इन गुणों को अपनाकर उनके समान बनने का प्रयास करना चाहिए। अतः बुराइयों को छोड़ना और अच्छाइयों को ग्रहण करना ही परमात्मा को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। अपने तथा समाज के लिए अहितकर कार्यों को ही बुराई समझना चाहिए। समाज के लिए कल्याणकारी आचार-विचार को अपनाना ही वैदिक संस्कृति है।

35. सेवा धर्म

सामूहिकता तथा परस्पर सहयोग प्राणियों का स्वाभाविक गुण है। कोई भी प्राणी एकाकी जीवन नहीं चाहता है। सहयोग करना भी प्राणवान् लोगों का स्वभाव होता ही है। सामूहिक सहयोग से ही मानव इतिहास के प्रमुख उल्लेखनीय कार्य सम्पन्न हो सके हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि कौन किसे और किस तरह सहयोग करता है। कुछ लोग सहज सेवा भाव से सहयोग करते हैं, कुछ लोग विचारपूर्वक सहयोग करते हैं। दोनों ही आदरणीय हैं। विचारपूर्वक अच्छे कार्य में सहयोग देना सर्वश्रेष्ठ है। इसमें भी भावना प्रधान है।

मनोविज्ञान तथा दर्शनशास्त्र की शिक्षा है कि नैतिक निर्णय में हेतु अर्थात् उद्देश्य या भावना को महत्व दिया जाता है। महत्वपूर्ण यह है कि सहयोग किस उद्देश्य से तथा किस भावना से दिया गया है। लोग आतंकवादियों को सहयोग देते हैं नरसंहार के लिए। इसके पीछे उनकी भावना किसी विशेष विचारधारा को बल देने की हो सकती है जिसे वे अच्छा समझते हैं। परन्तु इस तरह से अच्छी विचारधारा भी निन्दनीय बन जाती है। अच्छी बात के प्रचार का तरीका भी मानवीय गुणों से युक्त सद्भावपूर्ण ही होना चाहिए। हम दैनिक जीवन में भी यह भूल कर जाते हैं। हम आक्रामक तर्कों के सहारे चुनौतीपूर्ण तरीके से अपनी बात मनवाना चाहते हैं तो यह भी वैचारिक आतंकवाद ही है। इसका परिणाम भी हम देख सकते हैं। इस तरीके से कोई भी प्रभावित नहीं होता है और अच्छी बात भी स्वीकार नहीं करता है। कुछ लोग स्वार्थ पूरा करने के लिए सहयोग करते हैं। स्वार्थ सहयोग देने वाले का भी हो सकता है और पाने वाले का भी। किसी को ऐसे कार्य में सहयोग देना जिससे उसका लाभ हो परन्तु उससे अन्य लोगों को हानि हो, उनको ठगा जाये तो ऐसे सहयोग पर पुनर्विचार की आवश्यकता होती है। अपने अहं की तुष्टि के लिए तथा सहयोग पाने वाले को अपने से हीन बताकर उसे तुच्छ जताने के लिए भी सहयोग दिया जाता है। यदि उस सहयोग का सदुपयोग हो जाये तो यह भी स्वीकार्य है। मानवरत्न तो अच्छे कार्य को सफल बनाने के लिए उदार भावना से सहयोग करते हैं जिससे सभी का हित होता है।

36. सज्जनता का धर्म

सज्जन हैं, सत्संगी हैं, धार्मिक हैं, धर्माचार्य हैं, वैदिक विद्वान् मनीषी हैं, हवन-सत्संग जैसे धार्मिक कर्मकाण्डों में आदरणीय प्रमुख हैं। वे साधन-सम्पन्न तथा प्रभावशाली भी हैं। स्वाभाविक रूप से ऐसे सत्पुरुषों से अपेक्षा की जाती है कि उनकी साधन-क्षमता तथा प्रभाव का लाभ उन लोगों को मिलेगा जो धर्म-संस्कृति के क्षेत्र में तन-मन -धन से समर्पित हैं, साधनहीनता में भी धर्म-साधना में रत हैं। यदि वे वास्तव में सज्जन हैं, वेद तथा वैदिक संस्कृति के प्रेमी हैं तो उनसे यह अपेक्षा उचित ही है। परन्तु इसके विपरीत आचरण हो तो आश्चर्य के साथ दुःख भी होना स्वाभाविक है।

कभी - कभी समाज में ऐसे व्यक्ति भी मिलते हैं जो वेद तथा वैदिक सत्संग को जीवन में सर्वाधिक महत्व देने पर बल देते हैं परन्तु उनका विरोध एकमात्र ऐसे व्यक्ति से है जो साधन-हीनता में भी अपनी सम्पूर्ण क्षमता के साथ वेद तथा वैदिक संस्कृति की साधना में रत है, उसी क्षेत्र में शोध तथा प्रचार-प्रसार में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर चुका है। धन तथा प्रभाव के बल से उसके जीवन में कठिनाइयाँ उत्पन्न करने का फल क्या होगा, यही कि जो कार्य वह करने का प्रयास कर रहा है, उसमें बाधा आयेगी और समाज को जो लाभ उससे मिल सकता है, नहीं मिल सकेगा। हमें ईश्वर की दयालुता तथा न्याय पर भरोसा रखना चाहिए। अच्छे कार्य में विघ्न-बाधायें तो आती ही हैं, इसे स्वीकार्य करना ही पड़ता है। इसीलिए तो विघ्नहर्ता की उपासना सर्वत्र हो रही है। हमें विश्वास रखना चाहिए कि अन्ततः शुभ ही होगा।

37. न कर्म लिप्यते नरे

हम कर्म करते हुए शत वर्षों तक सक्रिय जीवन जियें, यह वेद का निर्देश है। वानप्रस्थ-संन्यास की परम्परा हमें दायित्व-भार से अथवा कहें कि अधिकार भावना से मुक्त होने का मार्ग भी दिखाती है। इसमें विरोधाभास नहीं अनुभव होना चाहिए। एक आयु के पश्चात् हमें दायित्व-भार युवा कन्धों पर डालकर कर्म से निर्लिप्त हो जाना चाहिए। जितना हम कर सकते थे, जितना ईश्वर ने हमसे कार्य कराना चाहा था, उतना जैसा भी बन पड़ा, हमने कर दिया। शेष कार्य युवाओं को पूर्ण करना है। यही तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा का सन्देश है, यही निष्काम कर्मयोग है, यही कर्म में लिप्त न होने की भावना है। कर्म तो करना है, परन्तु उसके फल की चिन्ता का भार नहीं ढोना है। कार्य का उचित फल तो होगा ही, उसमें परिवर्तन कर पाना किसी के वश की बात नहीं है। जो लक्ष्य हम नहीं पा सके, उसको लेकर भी हमें चिन्ता नहीं करनी है। स्वीकार करें कि ईश्वर ने हमसे इतना ही कार्य कराना चाहा था, अतः हम इतना ही कर सके।

इसी भावना के साथ अब हम अपने को मुक्त कर रहे हैं। चारो वेदों का सरल पाठ तैयार हो गया है, यजुर्वेद के प्रथम पाँच तथा अन्तिम सात अध्यायों का धातुज पदार्थ भाष्य प्रकाशित हो गया है। इन बारह अध्यायों को यजुर्वेदीय कर्मयोग द्वादशी के रूप में स्वीकार करना है। सरल संस्कृत व्याकरण तथा धात्वादि कोश भी प्रकाशित हो गये हैं। इनकी सहायता से सम्पूर्ण वेद का अर्थ भाष्य करना सरलता से सम्भव हो गया है। हमारे युवा सहयोगी श्री गौरव जी

चारो वेदों का धातुज शब्दकोश तैयार करने में सक्षम हैं। अवसर मिले तो वे वेदभाष्य के साथ ही पाणिनीय अष्टाध्यायी का भी युग की आवश्यकता के अनुरूप सम्पादन कर सकते हैं। वैदिक महापुराण का सम्पादन करना भी उनके लिए कठिन नहीं है। आवश्यक संसाधन जुटाने का दायित्व समाज के साधन-सम्पन्न सज्जनों का है। डॉ. उमेश पालीवाल जी तथा डॉ. कृष्ण दत्त जी का संरक्षण उन्हें प्राप्त है। अब भविष्य में लेखन-सम्पादन का दायित्व श्री गौरव जी ही संभालेंगे। परम पिता परमात्मा उन्हें सफलता प्रदान करे।

38. साधना से सिद्ध होती है सरस्वती

वेदवाणी सरस्वती हमें पवित्र करने वाली है। वह समुचित संसाधनों तथा परिश्रम से गतिशील अर्थात् विवेकशीलता में हैं। वह यज्ञ अर्थात् देवपूजा, संगतिकरण तथा दान से पूर्णता को प्राप्त होती है।

ऋग्वेद के मंत्र की व्याख्या में कहा गया है कि सरस्वती की साधना पवित्र करने वाली तथा अग्नि के समान तेजस्वी बनाने वाली है। वेद को ही सरस्वती कहा गया है। ज्ञान की साधना के लिए उचित साधन भी चाहिए तथा लगनशील परिश्रम भी। गतिशीलता भी विद्या का प्रमुख गुण है। उसका प्रसार करते रहने से ही वृद्धि होती है। वह यज्ञ की कामना करती है। यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं देवपूजा, संगतिकरण तथा दान। महर्षि दयानन्द तथा शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार विद्वानों को देव कहते हैं। विद्वानों का सम्मान और सेवा-सहायता ही देवपूजा है। उनके लिए आय का एक अंश दान

करना चाहिए। तभी समाज में सरस्वती का निवास जन-जन में बना रहेगा। वही बुद्धि का विकास करने वाली है। आलस्य, कंजूसी तथा विवेकहीन अंधविश्वास के रहते सरस्वती का निवास सम्भव नहीं है। समुचित साधना करने पर सरस्वती अवश्य फलदायी होती है।

39. वैदिक मन्त्र साधना

मन्त्र शक्ति के प्रति समाज में आस्था, विश्वास तथा जिज्ञासा तो प्रबल है, परन्तु तथ्यात्मक जानकारी का अभाव भी उतना ही अधिक है। इसे रहस्यमय साधना माना जाता है तथा सिद्धि हो जाने पर चमत्कारिक प्रभाव की अपेक्षा होती है। सिद्धान्ततः यह सबकुछ स्वाभाविक और सम्भव है। व्यावहारिक उपलब्धि तथा सीमाओं को समझना भी आवश्यक है, तभी इसका वास्तविक लाभ उठाया जा सकता है।

वैदिक परम्परा में वेद की ऋचाओं-रचनाओं को मन्त्र कहते हैं। रामायण, गीता, पुराण आदि को काव्य कहते हैं, मात्र वेद की रचनाओं को ही मन्त्र कहते हैं। इसीलिए वेद को मन्त्र संहिता भी कहते हैं। अतः वैदिक मन्त्र साधना वेद का स्वाध्याय किये विना सम्भव नहीं है। यह भी जानना आवश्यक है कि मन्त्र का अर्थ मनन या विचार करना होता है। मन्त्र साधना भी विचारपूर्वक ही की जा सकती है। मन्त्र के अर्थ पर तो विचार करना ही है, उसके अनुसार प्रयास किया जाना चाहिए। यह भी महत्वपूर्ण है कि भाव-विचार कैसे हैं। दुर्भावनावश किसी का अहित करने के लिए वैदिक मन्त्र प्रयोग सम्भव नहीं है। वैदिक उपासना में सद्भावना होना आवश्यक है।

केवल मन्त्र साधना में ही नहीं, साधक-उपासक के जीवन में भी सद्भावना होना महत्वपूर्ण है। आदर्श स्थिति में तो जीवमात्र के लिए, व्यावहारिक रूप से मानवमात्र के लिए तथा अनिवार्य रूप से वैदिक उपासकों-साधकों के लिए सद्भावना तथा सहयोग की भावना प्रबल होनी ही चाहिए। इसके विना वैदिक मन्त्र साधना का कोई अर्थ नहीं है। स्वार्थ के लिए साधना का कोई अर्थ नहीं है। साधना–उपासना का प्रथम चरण सहयोग है। वैसे मन्त्र के नाम पर समाज में बहुत कुछ प्रचलित है, हमें उस विषय में कुछ नहीं कहना है।

40. ध्यान में सफलता के पाँच नियम

किसी भी कला-कौशल अथवा तकनीकी में दक्षता प्राप्त करने के लिए कुछ विशेष नियमों व दिनचर्या का पालन करना पड़ता है। खिलाड़ी प्रातःकाल उठकर नियमित व्यायाम और अभ्यास करता है। खान-पान में भी संयम रखता है। इसी प्रकार योग नियमों का पालन करना अनिवार्य है। महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन में वर्णित अष्टांग योग में यह द्वितीय चरण अथवा सोपान माना गया है। इनका पालन करके ध्यान लगाना सम्भव हो सकता है।

प्रथम नियम है शौच। इसका अर्थ है शुद्धता-पवित्रता। यह दो प्रकार का है - शारीरिक और आत्मिक अथवा मानसिक। सामान्य शारीरिक शुद्धता स्नान से होती है। यह भी बाहरी शुद्धता ही है। योग में शारीरिक शुद्धता से तात्पर्य विकारों से मुक्त होना है। शरीर में विकार एकत्र होने से शरीर रोगी हो जाता है और आसक्त भी। रोगी और आसक्त शरीर से योग की साधना सम्भव ही नहीं होती। इन

विकारों को प्राकृतिक जीवन जीने व विभिन्न आसनों का अभ्यास तथा नेति, नौलि, धौति, कुंजर, शंख, प्रक्षालन आदि यौगिक क्रियाओं की सहायता से दूर किया जा सकता है।

इसके बाद मानसिक दृष्टि से साधक को निर्लिप्त और निर्विकार होना चाहिए। स्वस्थ मन की पहचान है -

सुख वा यदि दुःख वा चेत् प्रियं वा यदि वा प्रियम।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत् हृदयेनापराजितः।।

जीवन में सुख रहे या दुःख, प्रिय वस्तु मिले या अप्रिय, जो कुछ भी मिल जाये, उसका ही प्रेम से उपयोग किया जाये, हृदय से अपराजित रहें, परिस्थितियों के उतार चढ़ाव से हार न माने।

आत्मिक दृष्टि से सात्विक रहें व शुद्ध अनन्त चेतना की ओर ध्यान लगायें तभी आत्मिक शुद्धता प्राप्त हो सकती है। वैसे शुद्धता लगातार अभ्यास करने से ही आती है, अचानक संकल्प करने से एक दिन में नहीं।

दूसरा नियम है - सन्तोष। सन्तोष का अर्थ है अपने श्रम की कमाई में ही अपने जीवन की सामान्य आवश्यताएँ न्यूनतम स्तर पर पूरी करना और बहुत अधिक की लालसा न करना, जिससे मानसिक शांति भंग हो और आप ऊँचे सपने को पूरा करने के लिए अशान्त रहें।

लेकिन न्यूनतम आवश्यकताएँ तो पूरी होनी ही चाहिए, अन्यथा भूखे भजन न होय गोपाला.....। दो समय के भोजन की चाह करना असंतोष नहीं कहा जा सकता। योग साधक को चाहिए कि वह अपने जीवन के लिए अनिवार्यतः आवश्यक न्यूनतम आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए आजीविका की व्यवस्था कर ले

तथा उसके बाद अधिक की लालसा छोड़कर सन्तोष व्रत धारण करे और साधना के पथ पर आगे बढ़े।

तीसरा नियम है - तप। तप का अर्थ हैं कष्ट सहना, परिश्रम करना। साधक को अपनी साधना के मार्ग में आने वाले बाधा स्वरूप कष्टों को सहन करने के लिए तैयार रहना चाहिए। साधना का पथ कंटकापूर्ण कहा जाता है। साधक को बाधाओं का सामना करने के लिए धैर्यपूर्वक कष्ट सहन के लिए तैयार रहना चाहिए।

चतुर्थ नियम है - स्वाध्याय। स्वाध्याय का अर्थ है स्वयं का अध्ययन करना और अच्छे आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन करना। इसके लिए सामवेद का गान अथवा अध्ययन सर्वश्रेष्ठ माना गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है वेदानाम् सामवेदो अस्मि। यदि वर्तमान स्थितियों में सामगान सम्भव न हो तो संक्षेप में गायत्री मंत्र अथवा एकाक्षर मंत्र प्रणव ओउम् का नियमित जाप भी स्वाध्याय की पूर्ति कर सकता है। योगदर्शन ने भी कहा है- तस्य वाचकः प्रणव।

फिर भी निरन्तर सत्साहित्य का स्वाध्याय करते रहना योग साधना में सहायक ही है। योग सम्बन्धी प्रामाणिक आर्य साहित्य जैसे वेद, योगदर्शन, भगवद्गीता, उपनिषद् आदि को साधना काल में कभी-कभी पढ़ते तो रहना ही चाहिए।

पाँचवां और अन्तिम नियम है ईश्वर-प्राणिधान अर्थात् परमात्मा के प्रति समर्पण और भक्ति। इसकी व्याख्या यजुर्वेद के इस मंन्त्र में बहुत अच्छी तरह की गयी है -

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधाः कस्य-स्विद्धनम्।यजुः 40/1

इस संसार में जो कुछ भी है, उसी ईश्वर से व्याप्त है सब कुछ उसी का रूप है। अतः उन पदार्थों का भोग त्यागपूर्वक करो और किसी अन्य के धन से लोभ या लालच मत करो। यह भावना पूरी तरह आत्मसात किये बिना योग के प्रति समर्पण भाव से उस अनन्त चेतना से सम्बन्ध जोड़ा नहीं जा सकता है जो योग का मूल लक्ष्य है।

साधक जो भी कर्म करे, उसे परमात्मा को उसके फल सहित अर्पित कर दे। स्वयं को कर्मों का कर्ता नहीं, केवल उसका निमित्त या साधन ही समझे। जैसे हमारे पैर चलते हैं लेकिन पैर कर्ता नहीं है, कर्ता तो मस्तिष्क है। पूरी तरह परमात्मा के प्रति समर्पण भाव से ही उस अनन्त चेतना से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है।

इसी प्रकार राजा शीरध्वज जनक भी योगी हैं वे भी सारे राजनीतिक दाव-पेचों के बीच अशान्त नहीं होते और गृहस्थी तथा राजकार्य दोनों को सफलतापूर्वक संचालित करते हैं। विश्व में ऐसे असंख्य योगी हो चुके हैं।

महर्षि पतंजलि ने अपने अमर ग्रंथ योगदर्शन में अष्टांग योग का वर्णन किया है। उन्होंने योग के आठ उपांग - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि बताये हैं। ये अभ्यास चरण या कक्षायें हैं। इनमें से हम जितनी कक्षायें उत्तीर्ण कर लेंगे उतना ही अधिक लाभ हमें मिलेगा। यदि हम पूर्ण अष्टांग योगी न भी बन सके तो जितना सम्भव हो, उतनी कक्षायें हमें उत्तीर्ण करनी ही चाहिये। समाधि के स्तर तक पहुँचना तो सभी के लिए सहज नही कहा जा सकता लेकिन ध्यान का स्तर पा लेना

नियमित अभ्यास करने पर बहुत कठिन भी नहीं है योग का रहस्य सरलता से इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि यदि कोई ट्रांजिस्टर बैटरी से चलता है तो बैटरी बार-बार चार्ज करानी पडती है या बदलनी पड़ती है; लेकिन ट्रांजिस्टर मुख्य विद्युत धारा लाइन से जोड़ सकते हैं।

41. साधना-उपासना के आठ सोपान

आज विश्व में अनेक ऐसे स्वयंभू योगी है जो समाधि लगाने का ही नहीं अपितु समाधि सिखाने व समाधि सिद्ध कर अनेक चमत्कारों के स्वामी होने का भी दावा करते हैं। कुछ लोग हवा में वस्तुओं की सृष्टि कर सृष्टा होने का दावा करते हैं। मौका पड़ने पर व्यवसायिक जादूगरों से मात खा जाते हैं। कुछ लोग उड़ने का दावा करते है और उड़ना सिखाने का भी लेकिन अन्त में पोल खुलती है तो कभी-कभी जेल-योग भी करना पड़ता है, लेकिन यदि उनके जीवन में झांककर देखा जाये तो पता चलता है कि उन्होंने योग का एक भी सोपान नहीं पढ़ा है और योग के लिए आवश्यक आधार भूमि ही नही तैयार की है। वास्तव में योग के आठ सोपानों से गुजरे बिना कोई समाधि लगा ही नहीं सकता और उसके बिना परम् सत्य का साक्षात्कार सम्भव ही नहीं है ।

योग का सर्वाधिक प्रमाणित ग्रन्थ है महर्षि पंतजलि का योग दर्शन, जिसमें अष्टांग योग का विवेचन किया गया है। इसमें वर्णित आठ अंग है - 1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम 5. प्रत्याहार 6. धारणा 7. ध्यान 8. समाधि। वस्तुतः ये आठ अंग 8

चरण अथवा सोपान है। जिन पर चढ़ते हुए योग की अन्तिम अवस्था समाधि तक पहुंचा जा सकता है। इनमें प्रथम अंग अथवा सोपान यम योग की आधार भूमि या नींव है। जिस प्रकार नींव के बिना कोई भवन नहीं बन सकता है, उसी प्रकार यम को स्वभाव में ढाले बिना योगी नहीं बना जा सकता। इस यम के भी पांच अंग होते हैं। 1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्त्येय 4. ब्रह्मचर्य 5. अपरिग्रह। ये पांच यम वास्तव में सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन में अपनाये जाने वाले सदाचार की आचार-संहिता है। किसी को कष्ट न देना, मन वाणी व कर्म से सत्य का आचरण करना, चोरी न करना, परमात्मा की ओर ध्यान लगाना व आवश्यकता से अधिक वस्तुएँ संग्रहीत न करना जीवन में अशान्ति व चिंताओं से बचे रहने का आवश्यक साधन है। पहला यम है - अहिंसा। यह नकारात्मक गुण अर्थात कुछ अपनाना नहीं, कुछ छोड़ना है। हिंसा और उसे मन, वचन और कर्म से सर्वथा छोड़ देना है। हिंसा का सामान्य अर्थ है चोट पहुंचाने की भावना। किसी को कष्ट या दुख देना। कर्म से किसी को कष्ट देना तो है नही। ऐसी बात भी नहीं बोलनी है, जिससे सुनने वाले या किसी अन्य को कष्ट हो। यहाँ तक की मन में भी किसी को दुख देने की बात न सोचना। क्योंकि यदि मन में ही विचार न आये तो उस विषय में कोई कार्य हो ही नहीं सकेगा। यदि मन में हिंसा की भावना रहेगी तो कभी न कभी जाने-अनजाने कोई बात या कार्य हो ही जायेगा जो अन्ततः शान्ति को नष्ट करने वाला और योग के मार्ग में बाधक सिद्ध होगा।

सत्य को सभी धर्मों का मूल कहा गया है, धर्म न दूसर सत्य समाना। यमों के क्रम में सत्य दूसरा यम है। सत्य का अर्थ है जो

सत् के योग्य हो अनुकूल हो। जिसका अस्तित्व नहीं है वह असत्य है। जो कुछ जैसा है उसे वैसा ही मानना, कहना और अपनाना, आचरण करना यही सत्य है। किन्तु सत्य का अर्थ यह नहीं कि जो कुछ जैसा हो, उसे वैसा का वैसा कह देना, चाहे परिणाम कुछ भी क्यों न हो। कहते हैं वो जिसका अमल अच्छा है, सत्य वचन अथवा कर्म वही है जिसका परिणाम सत्य हो। यदि शब्दशः सत्य कह देने से परिणाम असत् आने वाला हो, तो वहां मिथ्या भाषण झूठ बोलना ही सत्य पालन है। यदि कोई डाकू किसी सन्त को मारने के लिए तलाश रहा हो, तो सन्त का पता बताकर उसकी हत्या करा देना असत्य है। सत्य है उस डाकू से झूठ बोलकर सन्त के प्राणों की रक्षा करना। तीसरा मत है अस्तेय अर्थात चोरी न करना। चोरी करने से तात्पर्य है किसी अन्य के स्वामित्व की किसी वस्तु को बिना उसकी अनुमति लिए अपने उपयोग में न लाना। यदि किसी व्यक्ति ने पहले से चोरी करके किसी वस्तु पर अधिकार कर लिया तो उसे मुक्त कराना, चोरी नहीं कही जा सकती। तत्कालीन रूप से किसी अन्य के अधिकार से ही वह वस्तु बलात् छीनी गयी। अपने परिश्रम से अर्जित व अपने वैध नैतिक अधिकार की वस्तु या उपयोग करने में एक प्रकार का आत्मिक सन्तोष मिलता है और किसी प्रकार की चिन्ता या भय भी नहीं रहता। चोरी करने वाला व्यक्ति अपने अन्दर ही अपराध भावना से ग्रस्त रहता है उसे अन्य किसी के द्वारा दण्ड मिले या न मिले। यही अपराध बोध योग की प्रगति में बाधक है।

यम का चतुर्थ अंग है ब्रह्मचर्य। इसको साधारणतः लोग काम वासना को रोकना समझते है जो भ्रान्ति है। काम सेक्स के अतिरेक को रोकना ब्रह्मचर्य में सहायक है, किन्तु केवल यही

ब्रह्मचर्य नहीं है, ब्रह्मचर्य का अर्थ है - ब्रह्म या परमात्मा की ओर चलना, उसके निकट पहुंचने का प्रयास करना। उसके मार्ग में बाधक काम-वासनाओं व सांसारिक जंजाल से यथा-सम्भव मुक्त रहते हुए सात्विक भाव धारण करना। जीवन के लिए आवश्यक जो सांसारिक कर्तव्य हैं उनका पालन तो करना ही होगा। अनिवार्य कर्तव्यों से विमुख होकर योग में सफलता नहीं मिल सकती। अपने परिवार व समाज के प्रति कर्तव्यों का पालन करते हुए ही योग सफल हो सकता है यदि पत्नी या पति की आवश्यकता पूरी न कर सके और बच्चों की शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध करने में उपेक्षा बरती तो योग के विषय में सोचना भी पाप है। उनका असन्तोष आपके मन में भी अशान्ति उत्पन्न करेगा और योग एक तरफ रखा रह जायेगा।

यम का अन्तिम अंग है अपरिग्रह। ग्रह धातु का अर्थ है ग्रहण करना, परि उपसर्ग के साथ उसका अर्थ हुआ विशेष रूप से अधिकृत एकत्र कर लेना। इस प्रकार अपरिग्रह का भाव हुआ वस्तुओं व धन का अनावश्यक संग्रह न करना। एक गृहस्थ के लिए भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा के साधन जुटाना उसकी अनिवार्य आवश्यकता है। उनकी व्यवस्था करना अपरिग्रह नहीं कहा जा सकता। सामान्य मनोरंजन के साधन जैसे - बच्चों के खिलौने का निषेध तो अपरिग्रह कर ही नहीं सकता है। जो आजकल जमाखोरी कहलाता है। जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर मन अशान्त रहेगा और योग के लिए आवश्यक चित्त वृत्ति निरोध हो ही नहीं सकेगा। अपरिग्रह सम्पत्ति, वस्तु व धन को एकत्र करने का निषेध करता है। जिसकी सुरक्षा के लिए हमें चिन्तित होना पड़ता है। बस यही चिन्ता योग में बाधक है। योग साधना के लिए निश्चिंत

होना अनिवार्यतः आवश्यक है। यह चिन्ताहीनता जैसे भी प्राप्त हो, पर होनी चाहिए।

जो व्यक्ति दो समय की रोटी की चिन्ता से ग्रस्त है अथवा रोग के कारण पीड़ित है, वह योगी हो ही नहीं सकता। यदि कोई संत दावा करता है तो वह ढोंग करता है। हजारों वर्षों में यदि कोई युग पुरुष ऐसा होता भी है तो वह अपवाद है और अपवाद नियम नहीं हुआ करता। सामान्य लोगों को सामान्य नियम से चलना चाहिए। एकाध अपवादों को अपना आदर्श या उदाहरण नहीं बनाना चाहिए वैसे योग नाम पर बाजीगरी या जादूगरी दिखाना आसान है, लेकिन सच्चे योग की बात करना जो जन-साधारण के दैनिक जीवन में उपयोगी है बहुत कठिन क्योंकि सच्चे योग के सहारे अपनी दुकान नहीं चलायी जा सकती।

42. साधना से ही सफलता सम्भव

साधना करने से आध्यात्मिक सम्पदा तथा प्रज्ञा विवेक प्राप्त होता है। इससे दिन-प्रतिदिन पोषण तथा वीरोचित यश की वृद्धि होती जाती है। ऋग्वेद के तीसरे मंत्र मे इसी बात को बताया गया है। इस मन्त्र में अग्नि का अर्थ तेजस्वी अग्रगामी मार्गदर्शक है। इस अर्थ में अग्नि परमात्मा का नाम है तथा उसकी वेद वाणी का भी। आधिभौतिक अर्थ में इसका अर्थ विद्युत आदि ऊर्जा भी है। इस मंत्र का अर्थ परमात्मा की उपासना, वेद का स्वाध्याय तथा विद्युत आदि भौतिक ऊर्जा का ज्ञान प्राप्त कर उसका उपयोग करने की प्रेरणा है। इससे जीवन की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं तथा यश प्रतिष्ठा भी

मिलती है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के दूसरे मन्त्र का भाष्य करते समय अग्नि शब्द से आग जलाने तथा उसमें कुछ पदार्थों को जला कर देवताओं को पहुँचाने की भावना रखने वालों की निन्दा की है और वेद मन्त्रों का इस तरह संकुचित अर्थ करने को अनुचित कहा है। **दयानन्द ने ऐसा अर्थ करने के लिए सायण तथा मैक्समूलर आदि यूरोपीय विद्वानों की आलोचना की है। सायण का अनुसरण करने वाले श्रीराम शर्मा आचार्य ने भी कर्मकाण्ड में सीमित रहने को उनके भाष्य की कमी ही माना है। गायत्री परिवार ने इस बात के लिए दयानन्द की आलोचना की है कि महर्षि के यजुर्वेद के भाष्य में भी कर्मकाण्ड को स्थान ही नहीं दिया गया है। दयानन्द के अनुसार वेद में कर्मकाण्ड है ही नहीं।** यद्यपि दयानन्द ने कुछ कर्मकाण्डों की सामाजिक उपयोगिता स्वीकार की है परन्तु उनको वेद में दिखाने का प्रयास नहीं किया है। सत्य के पथिक दयानन्द से यही अपेक्षा की जाती है। वेद का स्वाध्याय करने से ही समाज का हित हो सकता है, अग्निहोत्र आदि कर्मकाण्ड की लीक पीटने से नहीं।

43. सत्संग

सत्य सदैव सर्वत्र एकरूप होता है, लेकिन आज हर गुरू का धर्म अलग–अलग है तथा एक-दूसरे के मत को अधर्म बताता है इस कारण से बुद्धिजीवी वर्ग सभी को गलत समझता है। आज सम्प्रदायों की भीड़ में धर्म का असली रूप खो गया है। अध्यात्म अदृश्य हो गया। धर्म और सम्प्रदाय में कोई भेद नहीं रह गया है। देवता, ईश्वर, परमात्मा में कोई भेद नहीं माना जाता है। सब एक में ही गड्ड-मड्ड

हो गया है और तो और अध्यात्मिक कहे जाने वाले ग्रन्थों का भी अध्ययन करने की आवश्यकता ये गुरूडम चलाने वाले मठाधीश नहीं महसूस करते हैं। अपने आपको वैदिक परम्परा का उत्तराधिकारी मानने वाले हिन्दुओं ने वेद देखा तक नही हैं, मुसलमान पवित्र कुरआन को पढ़ने व समझने की जहमत नही उठाना चाहता है। ईसाई लोग बाइबिल को केवल गिरजाघर की शोभा समझते हैं, महात्मा ईसामसीह के उपदेशों को अपनाना तो बहुत बड़ी बात है।

इसलिए हम सब के ईश्वर अलग-अलग हैं, सभी उपदेश देते है कि ईश्वर एक है लेकिन व्यवहार में हर सम्प्रदाय का ईश्वर अलग है। यदि सत्य की खोज की जाये तो परमात्मा वास्तविक स्वरूप में एक ही है। वह केवल विश्वासमात्र नहीं है अपितु उतना ही यथार्थ है, जितना सूर्य और उस परमात्मा के सच्चे स्वरूप को जान लेने पर उपासना का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। सर्वत्र परमात्मा की अनुभूति करना सहज हो जाता है तथा उस दिव्य आनन्द स्रोत से अपना सम्बन्ध जुड़ जाता है उसके बाद जीवन में विवाद नहीं होता, दुख नही होता, क्लेश नही होता। फिर शेष रह जाता है केवल अखण्ड आनन्द ।

परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए अध्ययन करना होगा। मनन व चिन्तन करना होगा। अच्छा हो कि नियमित रूप से शान्त चित्त होकर एकाग्र मन से प्रतिदिन परमात्मा का चिन्तन किया जाये, उसका ध्यान किया जाये। परमात्मा का ध्यान करने के लिए मन के कलुष को मिटाना होगा। कुविचारों को दूर करना होगा जीवन को सरल व निर्मल बनाना पड़ेगा। कुटिल मन से परमात्मा का ध्यान नहीं किया जा सकता। निर्मल स्वरूप को

कलुषित हृदय में नहीं बसाया जा सकता। नियमित संत्सग से मन निर्मल हो सकता है ।

सत्संग सत्साहित्य का भी हो सकता है तथा सत्पुरूषों का भी। यदि 24 घंण्टे में हम आधा घण्टा सत्संग तथा आधा घण्टा चिन्तन, मनन और ध्यान के लिये दे सकें तो कुछ दिनों में मन स्वतः निर्मल होने लगेगा। इस कार्य में जितना अधिक समय दिया जायेगा लाभ उतना ही शीघ्र मिलेगा। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बेमन से पुस्तक को पढ़ते जाना या सत्पुरूष के पास बैठे रहना अथवा उपदेश सुनते रहना सत्संग नहीं है। सत्संग तो तभी पूरा होगा जब सत् को ग्रहण करके उसे अपने संग लाया जा सके। यदि हम सत् को वहीं पर छोड़ आये तो फिर उसे सत्संग नही कहा जा सकता है। सत्संग के साथ ही जब हम चिन्तन, मनन करेंगे तभी सत्संग का तत्व हृदयंगम होगा तथा उस सत्य की वास्तविक अनुभूति होगी जिसे हमने सत्संग से केवल जानकारी के रूप में प्राप्त किया है।

44. विभिन्न आसन

सुखासन

इसे पल्थी लगाना भी कहते है। सामान्यतः लोग भोजन सत्संग आदि में इसी आसन में बैठते हैं। आसन के विषय में विधान है कि भूमि पर कुछ बिछाकर ही बैठना चाहिए। आसनी मुलायम होनी चाहिए जिससे अधिक देर तक बैठा जा सके। सुखासन लगाने के लिए अपनी आसनी पर दोनों पैर सामने फैलाकर बैठ जाये। अब दाहिना पैर मोड़कर बायीं जांघ के नीचे रखें। फिर बायें पैर को

दाहिनी जांघ के नीचे रख लें लेकिन उनमें खिंचाव न पड़े। हाथों को दोनों घुटनों पर 'ज्ञानमुद्रा' में अथवा गोद में 'ब्रह्मांजलि' बनाकर रख लें।

इसका सबसे बड़ा लाभ यही है कि सुखासाध्य होने के कारण इच्छानुसार बहुत देर तक बैठा जा सकता है और ओम् जप गायत्री जप तथा ध्यान साधना की जा सकती है।

पद्मासन

आसनी पर पैरों को सामने फैलाकर सीधे बैठ जायें अब दाहिना पैर उठाकर बायीं जांघ पर रखे। दोनों घुटनों को भूमि से स्पर्श करते हुए, पैरों के तलुए आकाश की ओर रहे और एड़ियाँ पेहू को स्पर्श करें। अब हाथों को दोनो घुटनों पर ज्ञानमुद्रा में या गोद में ब्रह्मांजलि बनाकर रख लें। मेरूदण्ड सीधा रहे। दृष्टि को भ्रूमध्या, नासिकाग्र या किसी बाहरी बिन्दु पर स्थिर करें। इसे ही त्राटक कहते हैं। ध्यान के लिए पद्मासन सर्वश्रेष्ठ है।

इस आसन में बैठने से रीढ़ का टेढ़ापन दूर हो जाता है। और हृदय, फेफड़े, आमाशय, यकृत, प्लीहा, गुर्दे, आतें आदि सुचारु रूप से कार्य करने लगते हैं। इससे ध्यान में भी सरलता हो जाती है।

सिद्धासन

अपनी आसनी पर पैरों को आगे फैलाकर बैठ जायें। अब गुदा और शिश्न के मध्य स्थान में बायें पैर की एड़ी को रखें और दाहिने पाँव को मूत्रेन्द्रिय के ऊपर इस प्रकार रखें कि अण्डकोष में कष्ट न हो। दोनो पैरों के पंजों को जांघ व पिंडली के बीच में रखें। दोनों हाथों को ज्ञानमुद्रा में रखकर किसी बिन्दु पर त्राटक करें।

इस आसन पर बैठकर ध्यान करने वाला साधक काम पर विजय प्राप्त कर लेता है। स्वप्न दोष में भी लाभप्रद है। साधारण लोगों को इस आसन में 20 मिनट से अधिक नहीं बैठना चाहिए। पद्मासन के बाद इसी का महत्व है। ज्ञानमुद्रा, सुखासन, पद्मासन या सिद्धासन में बैठें। हथेली का मुख आकाश की ओर रखते हुए उसे घुटनों पर रख लें। अब तर्जनी (अंगूठे के बगल वाली अंगुली) को मोड़कर अंगूठे की जड़ से लगायें शेष तीनों अंगुलियाँ सीधी रहें। यही ज्ञानमुद्रा की स्थिति है।

ब्रह्मांजलि

सुखासन, पद्मासन, या सिद्धासन में बैठकर हथेली का मुख आकाश की ओर रखते हुए उसे गोद में रखें। अब बायीं हथेली को भी इसी प्रकार दायीं हथेली के ऊपर रख लें। यही ब्रह्मांजलि है।

शेष जो सैकड़ों आसन बताये जाते हैं। वे एक प्रकार के व्यायाम हैं। वे शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी हैं। ध्यान धारणा, समाधि के लिए उनकी प्रत्यक्ष उपयोगिता नहीं है। शरीर के स्वस्थ होने पर ही योगसाधना संभव है। अतः इस दृष्टि से उनका परोक्ष रूप से लाभ है। कपालभाति, कुंजल, शंख, प्रक्षालन आदि निधियों से शरीर का पहले शोधन कर लेना चाहिए। उसके बाद स्वामी सत्यानंद द्वारा अन्वेषित अंग व्यायाम द्वारा शरीर को लचीला बनाना चाहिए। फिर स्वामी देवमूर्ति द्वारा अन्वेषित मेरूदण्ड के द्वादश व्यायामों द्वारा मेरूदण्ड के विकार दूर कर उसे भी लचीला बनाना आवश्यक है। इसके पश्चात ही व्यायामात्मक आसन करना चाहिए। अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि हो जाने की आशंका

अधिक रहती है। अतः पुस्तकों में पढ़कर या दूरदर्शन पर देखकर व्यायामात्मक आसनों का अभ्यास न करें। यही हितकर है।

आसन सिद्ध तभी माना जाता है, जब व्यक्ति उस आसन में कम से कम प्रहर (तीन घंटे) तक स्थिर रह सके। जिस व्यक्ति को इस प्रकार आसन सिद्ध हो उसे ही आसनों की शिक्षा देनी चाहिए। साथ ही जिसे आसन सिद्ध हो जाते हैं, उस पर शीत व उष्णता आदि द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं पड़ता है। यही आसन सिद्ध होने का वास्तविक लाभ है जिससे साधक को प्रत्येक परिस्थिति व ऋतु में नियमित रूप से योग साधना या ध्यान करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

45. उपासना-सत्संग का पवित्र अवसर

शारदीय नवरात्र का पर्व साधना, उपासना, सत्संग का स्वर्णिम अवसर है। अपने सभी सहयोगी मित्रों-परिजनों से हमारा विनम्र अनुरोध है कि इस अवसर पर यथासम्भव साधना-उपासना अवश्य सम्पन्न करें। नवरात्र पर्व पर उपासना का विशेष महत्व माना जाता है, इसका लाभ अवश्य उठायें। संकल्प करें तो नवरात्र में चारो वेदों का सम्पूर्ण पाठ सम्पन्न हो सकता है। इतना सम्भव न हो तो सामवेद अथवा यजुर्वेद का पाठ तो अवश्य पूर्ण करने का संकल्प लें। ये दोनों ही वेद आकार में लघु परन्तु स्वयम् में सम्पूर्ण और महत्वपूर्ण भी हैं। सामवेद अथवा यजुर्वेद का सम्पूर्ण पाठ प्रतिदिन भी किया जा सकता है। यदि नवरात्र में इतना कर लें तो अत्युत्तम है। जो इतना भी न कर सकें, वे भी प्रतिदिन यजुर्वेदीय सप्ताध्यायी

शिवपाठ का पारायण अवश्य करें। इसी उद्देश्य से हम इस अंक में सम्पूर्ण शिवपाठ प्रस्तुत कर रहे हैं। वेदपाठ स्वयम् में सम्पूर्ण साधना -उपासना है, साधक को इसका फल प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

व्यक्तिगत साधना-उपासना तो महत्त्वपूर्ण है ही, यह भी आवश्यक है कि उपासना का प्रसाद अन्य लोंगों में भी वितरित किया जाये। इसके लिए सत्संग के आयोजन भी किये जाने चाहिए। वेद में इसके लिए यज्ञ या यजन शब्द का प्रयोग हुआ है। यज्ञ या यजन का शाब्दिक अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण व दान। वर्तमान समय में सत्संग शब्द में भी यही भावना निहित है। पारिवारिक सत्संग तो नवरात्र में प्रतिदिन तथा वर्ष भर साप्ताहिक किये जाने चाहिए, नवरात्र में यथासम्भव वेद महोत्सव के रूप में सार्वजनिक सत्संग आयोजित किये जाने चाहिए, जिससे अधिकतम लोगों को इसका लाभ मिल सके। साधना-उपासना-सत्संग तो कभी भी जितना भी कर सकें, उत्तम ही है, परन्तु नवरात्र जैसे विशेष पवित्र अवसरों पर तो हमारा मुख्य ध्यान इस पर ही होना चाहिए। प्रयास करना चाहिए कि वर्ष भर प्रतिदिन प्रातः-सायम् उपासना का क्रम चलता रहे। अधिक कुछ न कर सकें तो शिवसंकल्प सूक्त का पाठ तो करते ही रहें।

46. उपासना

अयम् इह प्रथमः धायि धातृभिः,
होता यजिष्ठो अध्वरेषु ईड्यः।
यम् अप्नवानो भृगवो वि रुरुचुः,
वनेषु चित्रम् विभ्यम् विशेविशे।।

(यजुर्वेद - 3/21/15)

परमात्मा उसके उपासक, उसकी वाणी वेद अहिंसक लोगों तथा अहिंसक कर्मों में स्तुत्य है। परपीड़क हिंसक लोग परमात्मा की स्तुति उपासना नहीं कर सकते हैं, वे उपासक होने का दिखावा कर सकते हैं। इस भावना, उपासना को धारण करने वाले लोगों ने यहाँ अर्थात् इस जीवन में, इस संसार में पहले धारण किया है। जीवन की सफलता-सार्थकता के लिए परमात्मा को तथा उपासना को सबसे पहले धारण करें। वह यजनशील दानी है, हमें भी देवपूजा, संगतिकरण, दान को जीवन में अपनाना है। उस अद्भुत चेतना, विशिष्ट चिन्तन को व्यापक भावना वाले, समाज का पोषण करने वाले लोगों ने वाणी में और प्रत्येक कर्म में प्रकाशित किया है। चित् धातु का अर्थ चेतन होना तथा चित्र धातु का अर्थ चित्रीकरण या चित्र बनाना भी है। देवचित्र तथा भावचित्र हमें सद्प्रेरणा देते हैं। सद्गुणों को वाणी से व्यक्त करें, लोगों को प्रेरणा दें तथा प्रत्येक कार्य में भी वे सद्गुण प्रकाशित हों, तभी प्रभाव पड़ेगा।

47. वेद मन्त्रों पर सभी का अधिकार

वेद मानव मात्र के लिए उपयोगी हैं तथा इस पर सभी का समान अधिकार है किसी प्रकार जाति, सम्प्रदाय, स्त्री-पुरुष आदि को इससे वंचित नहीं किया जा सकता है। सभी वेद मन्त्रों का सस्वर प्रवाहपूर्ण पाठ तथा गायन किया जाता है। इसमें किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। मध्यकाल में कुछ स्वार्थी लोगों ने अपने हित के लिए प्रतिबन्ध लगाने का प्रयास किया था, जिससे विद्या का

प्रसार न हो तथा उन थोड़े से लोगों पर निर्भर रहें।

गायत्री मंत्र तथा अन्य वेद मन्त्रों के गायन तथा उच्च स्वर में पाठ का विरोध करने के पीछे अपनी अयोग्यता को छिपाने का ही प्रयास था। जो लोग मंत्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते थे, उन लोगों ने प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया कि गायत्री आदि वेद मंत्र मन में ही रटे जाने चाहिए। महिलाओं का स्वर अधिक प्रभावशाली तथा मधुर होता है। अतः उनका मुकाबला न कर पाने वाले पुरोहितों को यही उचित लगा कि महिलाओं को मंत्र पाठ करने ही न दिया जाये।

अब अन्धकार का युग बीत गया है तथा शिक्षा सर्वसुलभ हो गयी है। अतः वेद पढ़ना-पढ़ाना सभी सनातनधर्मियों का अधिकार भी है तथा कर्त्तव्य भी। प्रबुद्ध लोगों को वेद पाठ तथा वेद विज्ञान प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने चाहिए।

48. विद्वानों का सम्मान, संगठन व दान : वैदिक यज्ञ

भारतीय संस्कृति में यज्ञ का बहुत महत्त्व है। भारतीय समाज यज्ञमय है। यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं, देवपूजा, संगतिकरण तथा दान। महर्षि दयानन्द तथा शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार देव का अर्थ होता है विद्वान्। अर्थात् विद्वानों का सम्मान तथा सहयोग करना, सत्पुरुषों का संगठन करना तथा उनको दान देना ही यज्ञ है। इस प्रकार विद्वान् सत्पुरुषों का महत्त्व तथा सम्मान करते रहने तथा उनका मार्गदर्शन समाज को मिलते रहने से बुराइयाँ तथा

अन्धविश्वास नहीं पनपने पाते हैं।

महर्षि दयानन्द ने वेद का सच्चा स्वरूप समाज के सामने रखा। पहले यज्ञ के नाम पर अग्निकुण्ड में पशुओं को मारकर जला दिया जाता था। गौतम बुद्ध ने भी कई शताब्दियों पहले इसका विरोध किया था। महर्षि दयानन्द ने बताया कि जिन वेदमन्त्रों से यह हिंसा की जाती है, उनका अर्थ यह नहीं है। मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा भी वेद मन्त्रों से ही की जाती है, परन्तु महर्षि दयानन्द ने बताया कि उन मन्त्रों का मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने अपने वेद भाष्य में किसी मन्त्र का अर्थ करते समय उसमें मूर्तिपूजा या अग्नि जलाकर उसमें पशु या किसी पदार्थ को डालने का उल्लेख नहीं किया। दयानन्द ने यज्ञ का परम आध्यात्मिक अर्थ ही किया है।

महर्षि दयानन्द ने यज्ञ के संगतिकरण अर्थ में आर्य सज्जनों के संयोग के लिए यज्ञ में अग्निहोत्र को स्वीकार किया है और हम लोग अपने सत्संग में वैसा करते भी हैं। दयानन्द ने उसके लिए कल्पसूत्र, मनुस्मृति तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का सहारा लिया है। अग्न्याधान, घी डालने आदि के मन्त्र इन्हीं ग्रन्थों से लिये गये हैं। साधारण लोगों के लिए कोई प्रतीक होना आवश्यक है। सभी लोग वेद के विद्वान् नहीं होते हैं। अतः हवन-सत्संग में ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तकरण के नाम पर कुछ वेद मन्त्रों का पाठ करने का अभ्यास हो जाता है, तो भी बहुत है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि वेद मन्त्रों में आग जलाकर उसमें घी या अन्य सामग्री डालने का निर्देश किया गया है। किसी भी माध्यम से वेद पाठ तथा वेद चर्चा हो जाये तो सराहनीय है। छोटे-छोटे विवादों में न पड़कर मुख्य ध्यान वेद के प्रचार-प्रसार पर लगाना ही वैदिक

विद्वानों का कर्त्तव्य है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना ही आर्यों का परमधर्म बताया गया है।

49. वेद स्थापना, वेदपाठ

श्रावण मास में शिव-संकल्प तथा रुद्र सूक्तों की अनुगूँज के पश्चात् भाद्रपद मास के प्रथम सप्ताह में भगवान् श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तक वेद-सप्ताह मनाने की गौरवमयी परम्परा है। शेष भाद्रपद मास में शारदीय नवरात्र में विशेष रूप से वेदस्थापना तथा वेदपाठ के आयोजन अभियान के रूप में किये जाने के लिए प्रयास किये जाने चाहिए। वेदपाठ के लिए वेदायन का प्रकाशन उपयोगी रहा है। नित्य पूजा-उपासना के साथ ही सामूहिक पाठ में इससे सुन्दर वातावरण बन रहा है तथा वेद के प्रति युवाओं में रुचि भी जाग्रत हो रही है। हमें अपने परिवारों में वेदायन पाठ का आयोजन करना है तथा प्रयास करना है कि नवरात्र में उपयोगी सार्वजनिक आयोजन सम्पन्न हो सकें।

वेदपाठ के आयोजन में सुरुचिपूर्ण वेद-मन्दिर स्थापित किया जाना चाहिए। वेद संहिता को प्रमुखता से स्थापित कर प्रेरणाप्रद दिव्य प्रतीकों - चित्रों को भी सम्मान तथा साज-सज्जा के साथ प्रतिष्ठित करना चाहिए। पितरों-पूर्वजों के चित्र भी सम्मानपूर्वक स्थापित किये जा सकते हैं। भावनापूर्वक वेदायन का सस्वर पाठ दिव्य आध्यात्मिक वातावरण बनाने में बहुत उपयोगी होता है। वेदपाठी आचार्यों - परिजनों का समुचित सेवा, सम्मान तथा सहयोग अवश्य करें। यह वेद भगवान् का सम्मान है तथा युवा आचार्यों के

लिए प्रेरणा तथा प्रोत्साहन भी। हम-आप सभी को परमात्मा की कृपा तथा वेद भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त हो।

प्रत्येक घर में वेद मन्दिर की स्थापना होनी चाहिए। इससे अनेक रूढ़ियों, कुरीतियों तथा अन्ध विश्वासों का निवारण अपने आप हो जायेगा। जैसे सूर्य का उदय होने पर अन्धकार को भगाने के लिए कोई उपाय नहीं करना पड़ता है और वह स्वतः दूर हो जाता है, उसी तरह से वेद स्थापना हो जाने से सभी भ्रम और शंकाएँ स्वतः दूर हो जाती हैं।

अपनी आस्था के अनुसार हम सभी लोग किसी न किसी रूप में परमात्मा का स्मरण अवश्य करते हैं तथा घर में किसी स्थान को पवित्र पूजा स्थल भी बनाते हैं। वहाँ पर वेद भगवान की स्थापना अवश्य करें तथा प्रतिदिन कम से कम पांच मन्त्रों का पाठ तथा स्वाध्याय करने का नियम बनायें। प्रातः भोजन से पूर्व पाठ तथा रात्रि शयन से पूर्व उन्हीं मन्त्रों का स्वाध्याय-अर्थ चिन्तन का नियम बना लें, तो कुछ ही दिनों में अपने जीवन में चमत्कारी परिवर्तन का अनुभव करने लगेंगे।

वेद को सनातन हिन्दुत्व के सभी मतों-सम्प्रदायों का मूल स्रोत तथा धर्म का परम प्रमाण माना गया है। उपनिषद, गीता, रामायण, पुराण से रामचरितमानस तक सभी वेद को ही प्रमाण मानते हैं। अतः घर में वेद रखना तथा वेद पढ़ना सभी सनातनी हिन्दुओं का कर्तव्य है। अपने मूल ग्रन्थों बाइबिल और कुरान से जुड़े होने के कारण ही ईसाई और मुसलमान एकताबद्ध और शक्तिशाली रहते हैं। हिन्दुओं में विघटन अपने मूल ग्रन्थ वेद को छोड़ देने के कारण ही है।

सम्पूर्ण चारो वेद रखना अर्थात् खरीदना और पढ़ना कठिन हो तो वेद के कुछ मंत्रों की छोटी पुस्तकें रखनी चाहिए। जैसे महाभारत का छोटा-सा भाग गीता है तथा पूरी रामायण न पढ़कर कुछ लोग सुन्दरकाण्ड का ही पाठ करते हैं। उसी तरह से वेद के सूक्त भी छोटी पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुए हैं। उनका उपयोग करना चाहिए। ये पुस्तकें बहुत कम, नाम मात्र के मूल्य पर उपलब्ध हो सकती हैं। वेद को पढ़ना-पढ़ाना सभी सनातन हिन्दुओं का परम कर्तव्य है।

वेद तथा योग विश्व को भारत की प्रमुख देन हैं। वेद मंत्रों में दिव्य शक्तियां समाहित हैं। उनके प्रयोग से जीवन की सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। जिस घर में वेद स्थापना होती है, वहाँ दूषित वातावरण तथा नकारात्मक ऊर्जा नहीं रह सकती है। अतः स्वास्थ्य शांति तथा सुख ऐसे परिवार में स्थायी रूप से बने रहते हैं। सभी लोग वेद मंत्रों का पाठ कर लाभ उठा सकते हैं।

50. उपासना का स्वरूप

उपासना का लाभ पाने के लिए उसके विज्ञान को समझना आवश्यक है। उपासना का अर्थ है स्वयम् को परमात्मा के निकट लाना, प्रभु के निकट बैठना, उस परम चेतन सत्ता का अंश होने का अनुभव करना। धार्मिक कर्म-काण्ड इस दिशा में प्रेरित करने के उपाय मात्र हैं। इनसे आध्यात्मिक वातावरण बनाने में सहायता मिलती है जिससे उपासना की ओर प्रवृत्ति होती है। इस दृष्टिकोण से वेदपाठ सबसे उत्तम है। व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से वेदपाठ

का आयोजन नियमित रूप से करते रहने से भावनात्मक वातावरण के साथ ही समुचित ज्ञान तथा मार्गदर्शन भी प्राप्त होता रहता है। वेदपाठ तथा स्वाध्याय में रुचि बढ़ते जाने से हमारा जीवन स्वतः अध्यात्म की ओर प्रेरित होता है तथा उपासना सहज हो जाती है। वेदपाठ तथा स्वाध्याय स्वयम् में उपासना भी है। वेद को शब्द-ब्रह्म कहा गया है अर्थात् वेद परमात्मा के साक्षात् स्वरूप ही हैं। इससे हमें परमात्मा का संरक्षण अनुभव होता है तथा हम तनाव-मुक्त हो जाते हैं।

अन्य स्थूल कर्मकाण्डों के अनेक सकारात्मक तथा नकारात्मक पक्ष विद्वानों के विचार के विषय हैं, परन्तु वेदपाठ तथा वेद-स्वाध्याय सभी की दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है। यह सरल तथा सहज है, इसमें किसी को कोई कठिनाई या समस्या नहीं हो सकती है। प्रारम्भ में वरिष्ठ परिजनों के मार्गदर्शन में वेद का ज्ञान तथा अभ्यास कर सकते हैं एवम् शीघ्र ही स्वयम् दूसरों को प्रशिक्षण-मार्गदर्शन देने की क्षमता प्राप्त कर सकते हैं।

51. वेद की महत्ता

परमात्मा वेद स्वरूप हमें प्रत्यक्ष है। उपासक की भावना है कि निराकार परमात्मा वेद के रूप में हमें प्रत्यक्ष रूप में उपलब्ध होता है। वह वेद से जानता है, इसका भाव यही है कि परमात्मा की उपासना की कसौटी वेद ही है। वेद के अनुसार चलने वाले ही उसके सच्चे उपासक हैं। वह विद्वानों के लिए वेद के रूप में प्रत्यक्ष उपलब्ध हो गया है। जो विद्वान् हैं, वे वेद का स्वाध्याय कर तथा

उसके निर्देशों का पालन कर परमात्मा की अनुभूति कर सकते हैं। वह मेरे लिए भी वेद हो जाये अर्थात् हम भी वेद का महत्त्व समझें तथा उसके माध्यम से परमात्मा की अनुभूति कर सकें। स्तुतियों को जानकर स्तुतियों को पाया जा सकता है। स्वाध्याय कर वेद को समझना है, उसके मूल भाव को अनुभव करना है। परमात्मा को पाने और जीवन को सफल बनाने का यही राजमार्ग है। यही वास्तविक यजन है। अतः प्रार्थना है कि मन स्वामी देव परमात्मा इस यजन को व्यापक बना लें; विद्या व गतिशीलता के लिए इसी यजन को धारण करना है।

52. वेद मंत्रों से जाग्रत होती हैं दिव्य शक्तियां

वेद मंत्रों की साधना से ही ऋषियों की दिव्य शक्तियां जाग्रत होती हैं। इसके लिए उनके शुद्ध पाठ के साथ ही साथ गहन स्वाध्याय तथा चिंतन जरूरी है। आस्था के कारण किसी भी शब्द को मंत्र मान लेने से लाभ नही होता। **वेदों के संहिता भाग में संकलित रचनाएं ही मंत्र कहलाती हैं,** जबकि अन्य सभी ग्रंथों के श्लोक पद्य मात्र होते हैं। वेद मंत्रों के साथ ऋषि देवता तथा उस सूक्त का भी उल्लेख होना चाहिए जहां से मंत्र लिया गया है। सन्दर्भ से काटकर, बिना अर्थ समझे मंत्र का जाप करने से लाभ नहीं होता। व्यवधान तथा त्रुटियों से रहित पूरी साधना व्यर्थ नहीं जाती और न ही उसका कोई विपरीत प्रभाव ही पड़ता है। साधना में कमी रहने से परिणाम में भी कुछ कमी या देरी हो अवश्य हो सकती है।

वैदिक साधना हानिरहित तथा निश्चित फलदायी है। नकली

मंत्रों से कोई लाभ नहीं मिलता, इसलिए लोग त्रुटियों का बहाना कर असफलता छिपाने का प्रयास करते हैं।

ऋषियों को वेदमन्त्रों का द्रष्टा कहा गया है। जिस मंत्र को वह पूरी तरह आत्मसात कर लेता है, वह उसी मंत्र का द्रष्टा हो जाता है। **एक वेद का ज्ञाता वेदर्षि, दो का देवर्षि, तीन का महर्षि तथा चारों को जानने वाला अध्येता या ब्रह्मर्षि कहलाता है।** मध्यकाल में अनेक संत हुए परन्तु ऋषि कोई नहीं हुआ। संत एक स्वभाव है। उसका हृदय कोमल होता है। वह अपने सुख औऱ अधिकार की चिंता नहीं करता।

53. संस्कृत व वेद सनातन धर्म के आधार हैं

वेद और संस्कृत सनातन धर्म के मूल आधार हैं। इनकी उपेक्षा करने से ही सनातन धर्म का पतन हुआ। प्रत्येक व्यक्ति को अपने घरों में वेदों की स्थापना करनी चाहिए और सुखी जीवन के लिए प्रतिदिन चारों वेदों के प्रथम व अंतिम सूक्त का पाठ करना चाहिए। इसी को वैदिक यज्ञ या संध्या कहते हैं।

वैदिक सन्ध्या सनातन धर्म के सभी सम्प्रदायों में मान्य है, क्योंकि सभी सम्प्रदाय वेद, संस्कृत तथा युगाब्द को मानते हैं। उन्होंने कहा कि सभी ग्रन्थों में वेदों को ही धर्म का स्रोत बताया गया है और यही सनातन धर्म की एकता का आधार है। अनेक विभिन्नताओं तथा मतभेदों के बीच वेद ही एक मात्र सेतु है। इन्हें मानने के कारण ही सभी सम्प्रदाय सनातन धर्म के अंग माने जाते हैं।

54. वैदिक मन्त्र-साधना तथा उपचार

स्वस्थ होने का अर्थ है स्व में स्थित होना। स्पष्टतः सम्पूर्ण स्वास्थ्य का आधार अध्यात्म है। वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा हमारे धर्म - संस्कृति का मूल है। वेद मन्त्रों में दिव्य शक्तियाँ समाहित हैं। ऋषियों के अनुभव तथा तप की ऊर्जा वेदमन्त्रों में निहित है। इस सन्दर्भ में हमने अपनी वैदिक मन्त्र साधना पुस्तक में साधना-प्रणाली, उपचार प्रक्रिया तथा फल-प्रभावों के विषय में जानकारी देने का प्रयास किया है। कुछ अन्य लेखों तथा पुस्तकों में भी इस विषय में चर्चा की है। कुछ मित्रों को इसका व्यावहारिक अनुभव भी मिला है। हमें अपने सत्संग, उपासना, साधना कार्यक्रमों में वैदिक उपचार को प्रमुखता से सम्मिलित करना है। प्रमुख साधक परिजन वैदिक उपचार प्रक्रिया के माध्यम से लोगों को लाभ प्रदान करेंगे तो इस विषय में जागरूकता बढ़ेगी। इस अभियान का नेतृत्व डॉ. अखण्ड प्रकाश जी कर रहे हैं। उन्होंने इस विषय पर वैदिक उपचार नाम से पुस्तक भी लिखी है जो व्यावहारिक उपचार प्रक्रिया सीखने के लिए उपयोगी सिद्ध हो रही है।

डॉ. अखण्ड प्रकाश जी स्वयम् पूर्णतः चिकित्सा क्षेत्र से ही जुड़े हैं। उनका तो पूरा परिवार ही इस क्षेत्र में समर्पित है। अतः उन्होंने इस क्षेत्र से जुड़े लोगों, चिकित्सकों तथा पीड़ितों, दोनो की भावनाओं का व्यापक अनुभव प्राप्त किया है। अतः वैदिक उपचार पद्धति को व्यावहारिक रूप में समाज में स्वीकार्य बनाने में उनको विशेष सफलता प्राप्त हुई है। उपयोगी ज्ञान तथा वस्तु को आकर्षक कलेवर मिल जाये तो वह समाज में सहज स्वीकार्य हो जाता है।

कभी-कभी अत्यधिक सरलता तथा सुलभता भी जन-सामान्य में रुचि उत्पन्न करने में बाधक बन जाती है। इस दृष्टि से वैदिक उपचार को डॉ. अखण्ड प्रकाश जी ने जो स्वरूप प्रदान किया है, वह सराहनीय है। आशा है इस पुस्तक से वैदिक उपचार को लोकप्रिय बनाने में उनको तथा हम सबको और भी अधिक सफलता प्राप्त होगी।

55. वेदपीठ : संकल्पना तथा संकल्प

वेद को जन-जन तक सुबोध तथा सुगम रूप में पहुँचाने के लिए वेदपीठ की स्थापना आवश्यक हो गयी है। वेदपीठ में नियमित रूप से वेद-पाठ, वेदार्थ-व्याख्यान, सरल संस्कृत व्याकरण, वैदिक इतिहास तथा वैदिक उपचार की व्यवस्था रहेगी। इन सभी विषयों में कार्यकर्ताओं को नियमित रूप से प्रशिक्षण भी प्रदान किया जायेगा।

हम लोगों को अपने निवास तथा अन्य स्थलों पर भी इस प्रकार की गतिविधियाँ सञ्चालित करने का प्रयास करना है। इसके लिए स्थायी तथा स्वतन्त्र रूप से वेदपीठ की स्थापना आवश्यक है। अभी हमारे पास इसके लिए न कोई साधन है और न कोई आश्वासन ही। परन्तु ईश्वरीय प्रेरणा से संकल्प उभरा है तो उदारमना महानुभावों के सहयोग से यह पूर्ण भी होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

इसके लिए प्रारम्भ में लघु वेदपीठ की स्थापना करने का प्रयास करना है। प्राथमिक विद्यालय स्तर का ही वेद-विद्यालय, वेदपीठ स्थापित किया जाना अपेक्षित है। भविष्य में विकास करते हुए वेद विश्वविद्यालय का लक्ष्य भी प्राप्त हो सकता है। लघु बीज

से विराट वट-वृक्ष का विकास स्वाभाविक है, महत्वपूर्ण तो बीज का बोना तथा अंकुरण ही है। अभी लघु वेदपीठ की स्थापना कर उसमें वेद-पाठ, वैदिक उपचार तथा प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलने लगे तो आगामी कुछ ही वर्षों में उसे विराट कलेवर धारण करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। यह हमारा विश्वास है, इसे वेद-भगवान् की इच्छा तथा परम पिता परमात्मा का आश्वासन भी समझा जा सकता है।

वेदपाठ-सत्संग तथा संगठन को व्यवस्थित रूप देने की हमारी भावना मूर्त रूप लेती हुई प्रत्यक्ष हो रही है। इन्हीं भावनाशील सहयोगियों के प्रयासों से वेदपीठ स्थापना करने का संकल्प भी उभरा है, जिसे पूर्ण होना ही है। उसके पश्चात् सभी गतिविधियाँ अबाध रूप से चलने लगेंगी। इसे सुनिश्चित मानकर हमें पूरे उत्साह तथा पूर्ण क्षमता के साथ महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जुट जाना है। हमारा दायित्व इतना ही है, शेष कार्य परमात्मा का है। उसका कार्य है, उसे ही पूर्ण करना है। हमें यह विश्वास बनाये रखना है।

56. वेद महोत्सव

वैदिक अध्यात्म संस्कृति अभियान में वेद महोत्सवों का आयोजन महत्वपूर्ण है। ये आयोजन एक दिवसीय भी हो सकते हैं तथा बहु दिवसीय भी। प्रत्येक आयोजन में वेद-पाठ, वेदचर्चा, वैदिक उपचार तथा सरल संस्कृत प्रशिक्षण को सम्मिलित किया जाना चाहिए। वेद स्थापना तथा पुस्तक प्रसाद सभी कार्यक्रमों में अनिवार्य है। इसके साथ ही साहित्य पटल भी होना चाहिए जहाँ आगन्तुकों को वैदिक साहित्य से परिचित होने तथा क्रय करने की भी सुविधा मिल

सके।

शिक्षा संस्थानों में इस प्रकार के आयोजन सरलता से किये जा सकते हैं। अब ऐसे आयोजनों को अभियान के रूप में करने का समय आ गया है। अधिक से अधिक लोग वेद से परिचित हों, उसका पाठ एवम् स्वाध्याय करें, इसके लिए ये आयोजन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इनके माध्यम से संस्थानों में वेद-स्थापना भी होगी तथा उपस्थित लोग अपने घरों में वेद-स्थापना के लिए प्रेरित भी होंगे। शिक्षा संस्थानों में वेद उपलब्ध होने से शिक्षकों तथा विद्यार्थियों को सुलभ होंगे तथा वे वेद का स्वाध्याय कर सकेंगे। अभी तो जिज्ञासुओं के लिए भी वेद सरलता से सुलभ नहीं हो पा रहे हैं। बड़ी संस्थायें भी इस दिशा में कुछ विशेष नहीं कर रहीं हैं। अतः सीमित साधनों से भी हमारा दायित्व अधिक बढ़ गया है। हमें अपनी क्षमता के अनुसार अधिक से अधिक प्रयास करना है।

शिक्षण संस्थानों के साथ ही अन्य संस्थानों तथा कार्यालयों में भी इस प्रकार के आयोजन किये जा सकते हैं। इसके लिए संस्थानों के प्रमुखों से सम्पर्क करना तथा उनको इसके लिए प्रेरित करना होगा। अच्छी भावना से किये गये निःस्वार्थ प्रयासों को समर्थन मिल ही जाता है। अधिकतर लोगों की भावना तो होती है, परन्तु उचित दिशा के अभाव में कुछ कर नहीं पाते हैं। ऐसी स्थिति में हमारा प्रयास उनके लिए प्रकाश की किरण बन सकता है। अधिकांश लोग इस अभियान में सहयोग करने का शुभ अवसर प्राप्त करना चाहेंगे। हमारा कर्तव्य है कि हम उनको प्रेरित करें।

57. वेद में सोम

वेद में सोम महत्वपूर्ण अवधारणा है। सोम मुख्यतः परमात्मा का वाचक है। इसका अर्थ है कि परमात्मा के वैदिक नामों में सोम भी प्रमुख नाम है। एक मन्त्र में सबसे पहले सोम को उत्पन्न करने की कामना की गयी है। सोम का अर्थ है ऐश्वर्यवान सृष्टिकर्ता।

सोम शब्द सु तथा सू धातु से निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है उत्पन्न करना, उत्पन्न होना, जनना, गर्भ धारण करना, अद्भुत सामर्थ्य या अमानवी पराक्रम होना, ऐश्वर्य होना, आसवन करना, सींचना, स्नान करना, यन्त्रादि द्वारा अर्क निकालना, दबाना, हिलाना। सू धातु का अर्थ है प्रेरणा देना। अतः सोम शब्द में ये सभी अर्थ समाहित हैं। इसलिए सोम को महत्वपूर्ण माना गया है।

सोम औषधियों में तथा अपों में अर्थात् पालकों में राजा है, प्रमुख है, प्रकाश स्वरूप है। वेद में कहा गया है कि यह सब कुछ हमारे लिए है और इसलिए है क्योंकि हम पुरोहित हैं अर्थात् पहले समाज का हित करने वाले हैं। हम राष्ट्र में जाग्रत रहते हैं अर्थात् राष्ट्र हित सदैव सक्रिय रहते हैं। राष्ट्र शब्द रट् तथा राज् धातुओं से निष्पन्न होता है। अतः राष्ट्र शब्द का अर्थ वाणी, राज्य, प्रकाश, दान होता है। रट् धातु का अर्थ बोलना, सम्भाषण करना तथा राज् धातु का अर्थ प्रकाशित होना, प्रकाशित करना होता है। इसके साथ ही राष्ट्र शब्द में रा धातु का अर्थ दान करना भी निहित है। इस तत्व को समझना, अनुभव करना, जीवन में अनुपालन करना ही सोम-पान करना है।

58. नवसम्वत्सर

वासन्तिक नवरात्र से नवसम्वत्सर भी प्रारम्भ होता है। अध्यात्म से आच्छादित वैदिक संस्कृति का नववर्ष आध्यात्मिक पर्व के रूप ही मनाया जाता है जो पूर्णतः उचित ही है। नव दिवसीय इस साधना अवसर पर यजुर्वेद अथवा सामवेद का पारायण करना सरल और स्वाभाविक है। इतना अवश्य किया जाना चाहिए।

व्रत-उपवास में सात्विक आहार लेना चाहिए जिससे साधना-उपासना में बाधा न हो। न तो पूरी तरह निराहार रहें और न ही प्राकृतिक भोजन - फलाहार के रूप में और अधिक गरिष्ठ भोजन का लोभ न करें। भोजन संयम का उद्देश्य सुपाच्य प्राकृतिक भोजन लेना है, जिससे स्वास्थ्य अच्छा रहे, भारीपन न हो और उपासना सरलता से हो सके। उपासना ही मुख्य है, इसका ध्यान अवश्य रहे। शेष बातों के पालन में परिस्थिति के अनुसार समायोजन किया जा सकता है।

नवरात्र में प्रतिदिन प्रातः - सायंकाल वेद पाठ तथा योग - ध्यान जितना कर सकें, उत्तम है। सामूहिक प्रयास से फल अनेक गुना बढ़ जाता है। सामूहिक अखण्ड वेदपाठ का आयोजन किया जाये तो चारो वेदों का पारायण सरलता से सम्भव है। इससे सहयोग देने वाले सभी लोगों को स्वाभाविक लाभ मिलता है। सामूहिकता का यही महत्व है। संकल्प लें कि यथासम्भव लोगों का सहयोग करेंगे, किसी का अहित नहीं करेंगे, अपमान नहीं करेंगे। नवरात्र में इस प्रकार के व्रत लेना आवश्यक है। मानवीय सद्गुणों की उपेक्षा कर, लोगों के साथ धोखा, छल-कपट का व्यवहार करने से तो साधना का फल भी प्रभावित होता है। दूसरों का वास्तविक हित करें, उन्नति में सहयोग

दें तो साधना का फल कई गुना बढ़ जाता है।

59. विनम्र प्रणाम

आधुनिक सुशिक्षित और विकसित राष्ट्र बनने की ओर अग्रसर भारत में पत्र-पत्रिकाओं का कोई अभाव नहीं है और उनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्रिकाएँ भी पर्याप्त हैं। ऐसे में एक और स्वास्थ्य पत्रिका का प्रकाशन करने की आवश्यकता हमें इसलिए अनुभव हुई क्योंकि जन सामान्य को उसकी भाषा में बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी पक्षों को प्रस्तुत करने वाली पत्रिका अभी भी उपलब्ध नहीं है। इस अभाव को दूर करना ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा स्वीकृत परिभाषा के अनुसार स्वास्थ्य के चार आयाम शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक हैं तथा इन चारों दृष्टियों से स्वस्थ व्यक्ति को ही पूर्ण स्वस्थ कहा जा सकता है। इस पत्रिका में हमारा प्रयास रहेगा कि इन सभी पक्षों से सम्बन्धित जानकारी नियमित रूप से उपलब्ध करायी जाये। यदि किसी व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं है, उसका सामाजिक जीवन अनुकूल नहीं है तथा आध्यात्मिक दृष्टि से चिन्तन तथा आचरण स्वस्थ नहीं है तो उसका स्वस्थ रह पाना सम्भव नहीं हो सकेगा। केवल शरीर को स्वस्थ रखने का सारा प्रयास करने पर भी शरीर स्वस्थ नहीं रह सकेगा। हम इस सम्पूर्ण स्वास्थ्य पत्रिका में मानसिक-बौद्धिक भोजन देने का प्रयास करेंगे, सामाजिक अनुकूलन के लिए उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करेंगे तथा आध्यात्मिक

पक्ष को भी प्रमुखता प्रदान करेंगे। शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सामग्री तो पर्याप्त होगी ही।

हमारा प्रयास रहेगा कि चिकित्सा उपचार की सभी पद्धतियों का लाभ उठाया जाये। किसी चिकित्सा पद्धति के प्रति हमारा कोई पूर्वाग्रह नहीं है। एलोपैथी, आयुर्वेद, होम्योपैथी, योग-प्राकृतिक उपचार एवम् अन्य सभी प्रचलित पद्धतियों से सम्बन्धित सामग्री इस पत्रिका में नियमित रूप से प्रस्तुत की जायेगी। स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वास्थ्य रक्षा या रोगों से बचाव के उपाय, जाँच कर समय से रोगों का पता लगाना भी चिकित्सा से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इन सभी पक्षों पर हम समुचित ध्यान देते रहेंगे। अपने इस प्रयास में हम कितने सफल होते हैं, इसका निर्णय तो सुधी पाठक ही करेंगे। आपके बहुमूल्य सुझावों का सदैव स्वागत रहेगा जिससे हम इस पत्रिका को आपके लिए और उपयोगी बना सकें।

60. तमसो मा ज्योतिर्गमय

अन्धकार को मिटाने का एक ही उपाय है और वह है प्रकाश उत्पन्न करना। अन्धकार को कोसने से या उसकी निन्दा-आलोचना करने से अन्धकार कम नहीं हो सकता है, परन्तु यदि हम प्रकाश उत्पन्न कर दें, उसके लिए एक छोटा सा ही दीप जला दें तो अन्धकार स्वतः समाप्त हो जायेगा। समाज में फैली हुई अनेक बुराइयों, कुरीतियों, अन्धविश्वासों, अनुपयोगी तथा हानिकारक परम्पराओं के सन्दर्भ में भी यही बात सत्य है। अनेक लोग केवल समाज की कमियों की निन्दा करते रहते हैं तथा उसकी तुलना में

अपनी मान्यताओं तथा विचारों की श्रेष्ठता की दुहाई देते रहते हैं। इससे अपने अहंकार की तुष्टि तो हो सकती है, परन्तु कोई सुधार नहीं हो सकता है।

किसी अच्छे विचार को लोग केवल हमारे चाहने से नहीं अपना लेंगे। इसके लिए त्याग और तप करना पड़ता है। त्यागी-तपस्वी विद्वानों के परिश्रम और अथक प्रयासों से ही समाज में परिवर्तन सम्भव हो पाते हैं। विदेशी राज्य से स्वदेशी राज्य अच्छा है, ऐसा सोचने और कहने से देश स्वतन्त्र नहीं हो सकता था। उसके लिए महात्मा गांधी और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जैसे सर्वस्व त्यागी महामानवों के नेतृत्व में लाखों लोगों ने त्याग और बलिदान दिये और तब स्वतन्त्रता का सूर्य उदय हो सका। अनेक सामाजिक परिवर्तन भी ऐसे ही तप साधना से सम्भव हो सके हैं।

श्रावण पूर्णिमा को श्रावणी पर्व तथा रक्षा बन्धन मनाया जाता है। इस दिन संस्कृत दिवस भी मनाने की श्रेष्ठ परम्परा बन गयी है। श्रावणी से श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तक वेद सप्ताह भी मनाया जाता है। हमारा विनम्र आग्रह है कि इस अवसर पर अवैदिक विचारधारा तथा कार्यक्रमों की निन्दा-आलोचना करने के स्थान पर वेद महोत्सवों के आयोजन करें, उसके लिए तन-मन-धन से समर्पित भाव से प्रयास करें। समय और संसाधनों का सहयोग करने के लिए आगे आयें तो वेद सप्ताह में समाज में वेदमय वातावरण बन सकता है। कृपया अवैदिक मतों की निन्दा नहीं, वेद महोत्सवों का आयोजन करें, यही सार्थक और रचनात्मक वेदसेवा होगी।

61. धर्म का पाठ्यक्रम आवश्यक

धर्म के क्षेत्र में आयी जड़ता को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र की तरह ही विधिवत् धर्मशास्त्र को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए। उचित तो यह है कि धर्मशास्त्र को कम से कम स्नातक कक्षाओं तक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाये। इससे धार्मिक क्षेत्र में बढ़ रही कूप मण्डूकता तथा अपने परिवार में मान्य सम्प्रदाय को ही सब कुछ समझने तथा अन्य विचार धाराओं को हेय दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से स्वतः समाप्त हो जायेगी।

जब एक व्यापक आधार वाले विषय के रूप में धर्मशास्त्र में स्वीकृत विभिन्न विचारधाराओं पर अध्यापक व छात्र खुलकर चर्चा करेंगे तथा विश्वविद्यालयों में विभिन्न विचारधाराओं के विकासक्रम व समाज पर पड़ने वाले प्रभावों पर तटस्थ दृष्टिकोण से शोध कार्य होंगे तब संकीर्णतः स्वतः समाप्त हो जायेगी।

धर्मशास्त्र विषय में ऐसा नहीं होगा कि किसी सम्प्रदाय या विचारधारा विशेष के धार्मिक ग्रन्थों को श्रद्धापूर्वक कण्ठस्थ कराया जाये। पाठ्यक्रम में धर्म ग्रन्थ नहीं पढ़ाये जायेंगे, अपितु धार्मिक मान्यताओं व विचारधाराओं का विवेचनात्मक अध्ययन किया जाएगा। वेद, रामायण या गीता पढ़ाना अथवा कुरान या बाइबिल को अनिवार्य विषय बनाना तो धार्मिक रुढ़िवाद को ही बढ़ावा देगा।

धर्मशास्त्र विषय समाजशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र के काफी निकट होगा। मनोविज्ञान की खोजों से भी अनुप्राणित होगा। उसमें विश्व के प्रमुख धार्मिक विद्वानों तथा विचार धाराओं द्वारा मान्य

स्वीकृत विचारधाराओं तथा निष्कर्षों का विवेचन किया जायेगा। किसी भी मनीषी अथवा मान्यता के प्रति कोई पूर्वाग्रह तथा अन्धश्रद्धा रखे बिना सभी परिकल्पनाओं, नियमों व सिद्धान्तों की विवेचना की जाएगी।

धार्मिक क्षेत्र में आने वाले मुख्य विषयों में सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और प्रलय भी शामिल हैं। यह तो पूरी तरह से विज्ञान का क्षेत्र है। वैज्ञानिक खोजों के प्रकाश में इसकी विवेचना काफी उपयोगी होगी। धर्म के अन्तर्गत मानवीय गुणों, नैतिकता तथा सामाजिक व्यवहार भी सम्मिलित हैं। इन विषयों का सम्बन्ध नीतिशास्त्र व समाजशास्त्र से है। इसी दृष्टिकोण से इन बातों की विवेचना की जा सकती है। वैसे भी इन बातों पर धर्म के सभी देश काल के मनीषी व गुरुजन लगभग एकमत हैं। लोगों का भला करना, सत्य बोलना, चोरी-बेईमानी न करना सभी धर्म, कर्तव्य मानते हैं। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में असत्य बोलने आदि की छूट उचित है या नहीं, जैसी विशेष बातों पर विवेचना काफी रोचक हो सकती है। इन बातों पर विभिन्न सम्प्रदायों व मनीषियों के विचारों का उल्लेख किया जाना है।

धर्म का मुख्य विषय ब्रह्म, जीव व प्रकृति के बारे में चिन्तन तथा परिकल्पना है। इस सम्बन्ध में विश्व के प्रमुख मनीषियों, ऋषियों, धर्मगुरुओं के विचारों का काफी महत्व है। सभी विचारों को धर्मशास्त्र के पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए। विद्यार्थी स्वयं विवेचना करके अपना विचार बनायेगा।

ब्रह्म की तरह प्रकृति व जीव भी अनादि है या ब्रह्म से ही उत्पन्न हैं, शरीर के बाद आत्मा रहती है या नहीं, पुनर्जन्म सम्भव

है या एक ही जन्म होता है, कर्मों का फल मृत्यु के बाद मिलता है या जीवन काल में ही मिल जाता है आदि बातों पर सभी मतों का उल्लेख व विवेचन किया जाना चाहिए।

इस प्रकार यदि विकासवादी दृष्टिकोण से धर्मशास्त्र की पाठ्य पुस्तकें तैयार की जायें तथा यह माना जाये कि अन्य विद्याओं की तरह धर्म विद्या का भी क्रमिक विकास आदिकाल से लगातार होता आया है और विश्व में फैले हुए अनेक सम्प्रदाय तथा मत मतान्तर धर्म विद्या के क्रमिक विकास के विभिन्न चरण हैं। इन सभी को मिलाकर समग्र रूप में देखने से ही 'धर्म' का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट हो सकता है। विद्वानों में मतभेद हो सकता है, लेकिन उसे विवाद का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए। तभी धर्म के प्रति विकासवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हो सकेगा और धर्म वास्तव में मानव जाति को आनन्दपूर्ण बनाने में सफल हो सकेगा।

62. ब्रह्मा की देन है धर्म

सम्पूर्ण मानव जाति के आदि पुरुष पितामह ब्रह्मा हैं। ब्रह्मा ने ईश्वरीय ग्रन्थ वेदों का ज्ञान अपने मानव पुत्रों को दिया। ब्रह्मा की कई पीढियों के बाद हुए महर्षि कश्यप ने अपने दस पुत्रों के द्वारा पूरे संसार में वैदिक संस्कृति की ज्योति जलायी। उनमें सबसे बड़े इन्द्र ने स्वर्ग या त्रिविष्टप (तिब्बत) में चक्रवर्ती साम्राज्य की राजधानी स्थापित की। इन्द्र के सबसे छोटे भाई विष्णु की राजधानी वैकुण्ठ क्षीर सागर या कश्यप सागर (कैस्पियन सागर) के तट पर थी। कश्यप के वंशज विवस्वान सूर्य के पुत्र मनु ने हिमालय से

दक्षिण में मानव लोक या भारत में वैदिक संस्कृति की स्थापना की। मनु के पुत्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि कर्म के अनुसार बने। मनु एकतावादी वैदिक संस्कृति तथा कर्म के अनुकूल वर्ण व्यवस्था मानते थे। मनु के नाम पर फैली वेद विरोधी भेदभाव की बातें मध्यकाल में फैली हैं। धर्म की मुख्य बातें तथा सत्य इतिहास की जानकारी होने से ही भ्रम मिटेगा तथा भारतीय समाज शक्तिशाली बन सकेगा।

63. ओम् महामन्त्र चिन्तन

'ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म।।' ओम् परमात्मा का मूल नाम है। वेद में इसी नाम का स्मरण करने के लिए कहा गया है। इसलिए हर मन्त्र में, हर मन्त्र से पूर्व ओम् का उच्चारण किया जाता है। कालिदास ने लिखा है - प्रणवः छन्दसाम्। छन्दसाम् माने जैसे वेद मन्त्रों में सबसे पहले ओम् आता है। तो इस प्रकार सभी वेद मन्त्रों में पहले हम ओम् का उच्चारण करते हैं, बोलते हैं। उसी रूप में मान लें कि वह यहाँ भी है। यो माने जो। संस्कृत से हिन्दी तक आते-आते लोक भाषा में सामान्यतः इस क्षेत्र में पूरब में य का उच्चारण ज होने लगता है। यमुना को लोग जमुना बोलते हैं। चन्द्रशेखर प्रधानमंत्री हो गये, लेकिन योजना को वो जोजना बोलते रहे। बलियाटिक प्रभाव। तो य को ज बोलने का सहज प्रभाव है। यो वेद में है, आज उसे हम जो बोलते हैं। अलग से हमें कहीं व्याकरण से अर्थ पढ़ने की आवश्यकता नहीं हुई। इसे भाषा-विज्ञान कहते हैं। असौ माने यह। जो कुछ हमारे

समक्ष है। यो असौ - जो यह है, जो यह है मेरे पास। आदित्ये। आदित्य क्या है - सामान्यतः अदिति शब्द से आदित्य की निष्पत्ति मानी जाती है। जो अदिति से उत्पन्न है, जो अदिति से सम्बन्धित है, उसे आदित्य कहा जाता है। अदिति क्या हुआ - अ माने नहीं, दित् शब्द से दिति शब्द बनता है। दिति का मतलब, जिसका क्षय होता है, जिसका विनाश होता है, अदिति का मतलब है - जिसका विनाश नहीं हो सकता, जो अविनाशी है। जो स्वयं अविनाशी तत्व है, और उससे जो उत्पन्न हुआ है, मूलतः वो भी अविनाशी ही होगा। यो असौ आदित्ये पुरुषः। परमात्मा के लिए पुरुष शब्द का प्रयोग बाद में दर्शनों में भी बहुत किया गया है। उसे पुरुष कहा है। पुर का मतलब होता है आगे, अग्रणी। इस सृष्टि में सबसे आगे, जो है, वह परमात्मा। इसलिए वह पुरुष है। वेद में भी यह पुरुष शब्द परमात्मा के लिए अनेक बार प्रयोग होता है। उसे हम पुरुष सूक्त कहते हैं। उसके विषय में उसका जब वर्णन किया जाता है तो उस सूक्त का नाम है पुरुष सूक्त। यो असौ आदित्ये पुरुषः, जो यह आदित्य पुरुष है, वह यह है, वह नहीं है, वह सब कुछ हमारे साथ है, हमसे परे नहीं है, वह बताना चाहता है। वह कह रहे हैं, सो असौ अहम्, अब यहाँ आया, सो माने वह, असौ माने यह, अहम् माने मैं। हमने कहा यो असौ आदित्ये पुरुषः - जो यह आदित्य पुरुष है, अक्षय, अविनाशी, परमात्मा है। वह यह मैं हूँ। वही तो मैं हूँ। जो आदित्य पुरुष परमात्मा है, वह अक्षय है, अविनाशी है, अनादि है, अनन्त है, वही मैं हूँ। चूँकि उसी अदिति से यह आदित्य उत्पन्न हो रहा है, तो जो कुछ वह है, वही सब कुछ है, उससे परे कहीं कुछ नहीं है।

ओम् खम् ब्रह्म - ओम् परमात्मा का नाम है, ओम् शब्द

अव्यय है, ओम् के रूप नहीं चलते, ओम् का बहुवचन नहीं बनता। राम के रूप हमने स्कूल में पढ़ रखे हैं। प्राइमरी से जूनियर तक। रामः, रामौ, रामाः रटा है, लेकिन ओम् का बहुवचन नहीं होता। चूँकि ओम् सदा एक रस, एक परमात्मा है, दो हो ही नहीं सकता। राम तो अनेक हो सकते हैं, कृष्ण अनेक हो सकते हैं, संसार में, इतिहास में एक नाम के अनेक व्यक्ति हो सकते हैं, लेकिन वह जो अक्षय, अविनाशी, परमात्मा है, वह सिर्फ एक है, वह दूसरा हो ही नहीं सकता। इसलिए ओम् शब्द अव्यय है। इसका कोई रूप नहीं चलता, कोई बहुवचन नहीं बनता, इस पर किसी कारक, क्रिया का प्रभाव नहीं पड़ता। वह निर्विकार है, अक्षय-अविनाशी है, सदा-सर्वदा एक रस होता है। इसलिए वो ओम् है। ओम् शब्द की निष्पत्ति करने का भी कुछ लोगों ने प्रयास किया है। ओम् - अव - रक्षणे धातु से बनाने का प्रयास किया गया है। धातु से शब्द बनायेंगे तो कहीं न कहीं उसके रूप भी चल पड़ते हैं, विभक्तियाँ आने लगती हैं, उसकी आवश्यकता भी नहीं, अगर बनाते भी हैं तो ठीक है, जो रक्षा करता है वह ओम् है, लेकिन ओम् अपने-आप में उसका भाव प्रतीक है, उसे कहीं कुछ और ले जाने की आवश्यकता नहीं लगती। खम् का अर्थ है - सर्व व्यापक। वो ओम् सर्व व्यापक है, सर्वत्र व्याप्त है। उससे परे, उससे मुक्त, उससे रिक्त कुछ भी नहीं है। ब्रह्म माने बड़ा। बृह् - धातु है, हम लोग जानते हैं बृहद् उसी से बनता है, उसी से ब्रह्म बन गया। उसी तरह कृ धातु से कर्म बन गया, धृ धातु से धर्म बन गया। म - जुड़ गया है। जन् धातु से जन्म बन गया। म - जुड़ जाता है, म - प्रत्यय है। बृह् धातु में म जुड़ गया - ब्रह्म बन गया। ब्रह्म माने बड़ा। वह ओम् सबसे बड़ा है, सर्व व्यापक है, यह अन्त

में निष्कर्ष रूप में हमको बताया गया है। सरलता के लिए कुछ शब्दों में, हमने इसे जान लिया। मुश्किल से दस शब्द इस मन्त्र में आये हैं। इतने इन दस शब्दों में शायद यह पूरा विषय, इतनी स्पष्टता से बता दिया गया, कि बहुत प्रयास करने पर भी शायद लोगों को जीवन भर तमाम अध्ययन करने पर भी नहीं होता है। यही इसका महत्त्व है। इसीलिए, वेद का यह अन्तिम मन्त्र आया है और अन्त में सम्पूर्ण वेद विद्या का सार इन दस शब्दों में इस छोटे से मन्त्र में कह दिया गया है। इतने में हमने इसको सीख लिया। अब! क्या इस तत्व को समझने के लिए यह एक मन्त्र पढ़ लेना पर्याप्त है, या सम्पूर्ण वेद का अध्ययन करना आवश्यक है, या इस वेद के बिना या इन शब्दों के बिना इसको समझा नहीं जा सकता है, यह भी एक प्रश्न है। हम इसकी चर्चा भी करना चाहते हैं। अगर हम ये कहें, कि इस मन्त्र को जपने से ही होगा, इसको रटने से ही होगा, इसको समझने से ही होगा, या इस वेद को पढ़कर दोहराने से ही यह सम्भव है, तो ऐसा लगता है कि जैसे हम कुछ संकीर्ण हो रहे हैं और जो इस मन्त्र का जो मूल भाव है, उस व्यापकता से परे हो रहे हैं। यह एक साम्प्रदायिक, संकीर्ण दृष्टिकोण हो सकता है। क्या यही एक मात्र सत्य है, जो हम कह रहे हैं? नहीं! एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति - वेद कहता है, उस एक सत्य को विद्वान् अनेक रूपों में वर्णित करते हैं। हर विद्वान्, ऋषि अपने-अपने तरीके से उस सत्य को कहता है। उस स्वरूप को हम लोग अलग-अलग प्रकार से बताते हैं, अलग-अलग रास्तों से हम उसे समझ सकते हैं, पा सकते हैं कि यह सत्य है। फिर वेद का महत्त्व क्या है? हम इसे अनेक रास्तों से पा सकते हैं, क्या अनेक रास्तों में एक वेद है? या एक मात्र मार्ग ये

है? ये भी हमें समझना है। हम स्पष्ट कर रहे हैं कि वेद को हम एक मात्र मार्ग कहेंगे, तो यह संकीर्णता होगी। वेद की सर्वोच्चता को मानते हुए भी मैं यह मानता हूँ कि यह एक मात्र मार्ग तो नहीं है। फिर हम इसे इतनी प्रमुखता क्यों दे रहे हैं? इसका भी उत्तर इसी मन्त्र में निहित था कि जितनी सरलता से दस शब्दों के एक छोटे से मन्त्र में इतना बड़ा तत्व हमें ज्ञात हो गया। इस मन्त्र को पढ़ने से पहले समाज में अधिकांश लोगों ने अभी यह मन्त्र नहीं पढ़ा-समझा है, इस रूप में। क्या वो इस मन्त्र को इतनी सरलता से बता सकते हैं? इसको समझ सकते हैं? इतना अनुभव कर सकते हैं? शायद नहीं! यही इसका महत्व है कि इतने सूत्र रूप में वेद हमें बता देता है, वह और जगह सम्भव नहीं होता। वेद निश्चित रूप से अनेक मार्गों में एक है, लेकिन वह हमारे लिए सर्वोच्च होता है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं, कि वह सर्वश्रेष्ठ है। हम सर्वश्रेष्ठ पर जोर इसलिए नहीं देना चाहते हैं कि ये न लगे, कि हम सही बाकी सब गलत! ये भावना नहीं रखनी चाहिए, कि वेद हमारा है, हम इसके हैं, तो हम कह दें कि नहीं यही तो ठीक है, बाकी सब गलत है। वेद केवल सर्वश्रेष्ठ मैं इस रूप में मानता हूँ कि क्योंकि का मार्ग हमें जन-सामान्य के लिए सरलतम है। कुछ लोग ये प्रचार करने का प्रयास कर रहे हैं कि वेद बहुत कठिन है, इसलिए हम उससे नहीं जुड़ते। मैं कहना चाहता हूँ कि वेद और वेद का मार्ग सरलतम है। वेद के बिना क्या लोगों ने इस तत्व को नहीं समझा? वेद के बिना क्या लोगों ने इस परम तत्व को नहीं जाना? नहीं! जाना है! भारत में, विश्व में अनेक लोगों ने वेद को पढ़े बिना, इस परम तत्व को जाना। आगे भी जान सकते हैं। परन्तु वह मार्ग बहुत कठिन है। एक

सक्षम व्यक्ति, सामर्थ्यवान् व्यक्ति अगर प्रयास करे, कि नहीं, मैं तो अपना मार्ग बनाऊँगा, मैं अपना मार्ग खोजूँगा, कर सकता है। जो बहुत सबल है, समर्थ है, वो अपना नया मार्ग बना सकता है। वो पर्वतों को काट कर रस्ता बना सकता है। लेकिन हर व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं है। जनसाधारण के लिए यह उचित है कि बने-बनाये राजमार्ग पर अगर वो चले, तो सरलता से अपने लक्ष्य को पा सकता है।

दिल्ली से कोलकाता जाने के लिए हम इसीलिए राजमार्ग पकड़ लेते हैं कि आराम से सीधी दिशा में जाते हुए हम लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि हम इस सड़क पर नहीं पहुँचेंगे, तो हम वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकते। पहुँचने के और भी रास्ते हो सकते हैं। सक्षम व्यक्ति घूमते-टहलते, पूछते-पाछते, तमाम अनुभव लेते हुए पहुँचेगा। हो सकता है उसको रास्ते में और अनुभव और जानकारी हो। तमाम कुछ लोग पा जायें, जो राजमार्ग पर चलने वाला उससे छूट जाये। यह सम्भव है। लेकिन जनसामान्य के लिए सरल और निरापद मार्ग है कि वह राजमार्ग पर चला जाये, तो वह पहुँच जरूर जायेगा सरलता से, भटकेगा नहीं। तो वेद वो राजमार्ग है।

छोटा सा बाइण्ड एक पुस्तक हमारे पास उपलब्ध है। जो विश्व का प्राचीनतम् ग्रन्थ है। सबसे लम्बे समय तक इस पर अध्ययन, चिन्तन, शोध हुआ। आदिकाल मे जब वेद का प्रादुर्भाव हुआ। जब मानव सृष्टि की मानव सभ्यता का शुभारम्भ हुआ, जंगली मानव से सभ्य मानव बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। वहाँ से वेद का प्रादुर्भाव हुआ। वो वेद का आदिकाल है। लेकिन आज जो वेद हमारे

सामने उपलब्ध हैं, ये भी हमारी परम्परागत मान्यता है कि उसे अन्तिम रूप कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने दिया। यह अन्तिम सम्पादन था। वह कहते हैं कि मैं अट्ठाइसवाँ वेदव्यास हूँ। पुराण बताते हैं कि कृष्ण द्वैपायन व्यास अट्ठाइसवें व्यास थे। व्यास माने जिन्होंने वेदों का अध्ययन, चिन्तन, सम्पादन किया, वह सम्पादक व्यास कहलाते हैं। कृष्ण द्वैपायन अट्ठाईसवें व्यास थे। वेद का प्रादुर्भाव और प्रचार होने के बाद से अट्ठाईस लोगों ने प्रमुखता से उसका सम्पादन किया। अन्तिम सम्पादन कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने किया। तो इतने लम्बे समय तक, हजारों वर्षों तक, जिस पर लाखों मनीषियों ने इतना परिश्रम किया तो वह अपने-आप में बहुत ही परिपक्व हो गया और एक छोटा-सा वाल्यूम, वेद की चार संहिताएँ मिलाकर यदि हम एक वेद कहते हैं, इसे कुछ लोग इसे चार वेद भी कहते हैं, कुल मिलाकर वाल्यूम कितना है, मुश्किल से बीस हजार मन्त्र। इसमें अगर अध्ययन की दृष्टि से देखें तो बहुत कुछ पुनरावृत्ति भी है, आकार बहुत कम है।

एक बाइण्ड में, एक पुस्तक के रूप में चारो वेद छपे हैं, हमने भी छापे हैं, उसका आकार बहुत बड़ा नहीं है। अगर हम पढ़ने का प्रयास करेंगे, तो अपने जीवनकाल में उसे सरलता से, सहजता से, पढ़ और समझ सकते हैं। लेकिन इसके बिना अगर साधना करेंगे, कर सकते हैं परन्तु उसमें पूरा जीवन खप जाता है, शायद ही कोई पहुँच पाता है। कोई बुद्ध ही वहाँ तक पहुँच पाता है, वेद को बिना पढ़े। कोई ईसा, कोई मोहम्मद, कोई नानक, कोई कबीर पहुँच जाता है, पहुँच सकता है, यह असम्भव नहीं। कबीर जैसा अनपढ़ व्यक्ति, मोहम्मद जैसा अनपढ़ व्यक्ति, जो निरक्षर है, वेद तो क्या उसने

कुछ भी नहीं पढ़ा है, वो भी गहन साधना के द्वारा उस तत्व को पा लेता है, उसने भी उस तत्व कहा है, अपने शब्दों में कहा है। परन्तु उसके लिए वह साधना कठिन है। कबीर दास जी स्वीकार करते हैं कि 'लंबा मारग, दूरि घर विकट पंथ, बहुत मार्ग। कबिरा क्यों कर पाइए, दुर्लभ यह संसार'। जो बहुत लम्बा मार्ग हो जाता है, उस साधना का। 'चलो-चलो सब कोई कहे, पहुँचे विरला कोई'। वह महसूस करते हैं, महसूस कर रहे हैं कि बहुत से लोग, लाखों लोग प्रयास करते हैं कि चलो अब चला जाये, यह साधना की जाये, उसे अपनाया जाये, लेकिन शताब्दियों में कोई एक होता है, जो उसे पाता है। शताब्दियों में कोई एक कबीर, एक नानक, एक मोहम्मद, एक बुद्ध जन्म ले पाता है। जो उस स्तर को पा पाता है। बोधिसत्व के रूप में यह परम्परा भी मानती है कि जब बहुत साधना करते हैं तब कोई एक बुद्ध बनता है। बुद्ध जन्म नहीं लेता, बुद्ध बनता है। लाखों साल में कोई बुद्ध बनता है। युगों-युगों में कोई बुद्ध बनता है। लेकिन वेद की व्यवस्था में, चूँकि शब्द हमारे सामने हैं, शब्द के अर्थ हमारे सामने हैं, शब्द के अर्थ को समझने की पूरी प्रणाली हमारे सामने है। अगर हम एक-एक मन्त्र, एक-एक सूक्त पढ़ते चले जायेंगे, तो कुछ वर्षों में वेद पूरा हो जायेगा। पढ़ लेंगे हम और अगर हमने सही ढंग से अर्थ पढ़-समझ लिया, तो मार्ग के सारे अनुभव लेते हुए अन्तिम पड़ाव हम इस मन्त्र तक पहुँचते हैं, तो शायद वह सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। उसके बहुत पहले उसको अनुभव हो जाता है कि तो वह कह देता है कि लोग कहते हैं कि वो अनिर्वचनीय, अज्ञेय है, उसे जाना नहीं जा सकता। वह अनिर्वचनीय तो हो सकता है किसी के लिए, लेकिन वो अज्ञेय, अज्ञात नहीं है। उसे जाना जा सकता है। वेद

स्पष्ट घोषणा करता है - "वेदा ह एतम् पुरुषम् महान्तम्, आदित्य वर्णम् तमसा परस्तात्। तमेव विहित्वा अतिमेति सर्वम्, नान्या पन्था विदथे अनाय।।" वेद कहता है कि उस आदित्य पुरुष परमात्मा को मैंने जान लिया है। ऐसा नहीं है कि उसे जाना नहीं जा सकता है। वह दावे से कहता है कि हमने उसे जाना है। हम उसे जान लेते हैं और कैसे जान लेते हैं? कि उसको जानकर व्यक्ति मृत्यु से पार हो जाता है। सभी चीजों से पार हो जाता है और फिर वो अन्त में वह विनम्रता से कह देता है - 'नान्या पन्था विदथे अनाय'। मुझे लगता है इस वेद के अतिरिक्त कोई और मार्ग सरलता से हमारे लिए नहीं है, इसके अतिरिक्त उस कठिन साधना से गुजर सके, जो गुफाओं में, कन्दराओं में, सामाजिक जीवन से अलग हट करके, पूरा जीवन खपा देता है, तब कहीं उसकी प्राप्ति होती है और वेद के मार्ग से हम सहज सामान्य जीवन जीते हुए, जीवन के सभी कार्य करते हुए, एक-एक मन्त्र, एक-एक शब्द को पढ़ते हुए, समझते हुए, उसे अनुभव करते हुए, उसे अपनाते हुए, एक दिन उस परम तत्व को बहुत सरलता से पा लेते हैं। ये वेद की सरलता, सहजता, सुगमता और श्रेष्ठता, महानता हम मानते हैं कि यह हमारे लिए सहज है, सरल है, सुगम है, सुलभ है। कहीं न कहीं इस दिशा में चलते हुए मेरे जैसा साधारण व्यक्ति भी, हम आप सबके बीच में हैं, कोई साधु-महात्मा, कोई संत-संन्यासी नहीं। कहीं किसी का फोन आया कि नेट पर कहीं जानकारी डाली हुई है, कि वह क्या हैं, कोई संत हैं, महात्मा है। मैंने कहा जिसने यह कार्य किया है उसे आप क्या मानोगे। हाँ ट्रेडीशनल सन्त नहीं हैं। तो आपके बीच रहते हुए तमाम दोष-दुर्गुण, तमाम समस्याओं, तनाव के बीच घिरे हुए, तमाम सामाजिक समस्याओं के

बीच जीवन जीते हुए अगर हम इसे कर सकते हैं, तो इससे बड़ा प्रमाण और क्या चाहिए, कि ये जन साधारण के लिए सुलभ है। इसमें संन्यास किसी को नहीं लेना, किसी को घर-परिवार छोड़कर कहीं जंगल नहीं जाना, किसी को मठ-मन्दिर में साधना नहीं करनी, किसी को कोई कठिन अनुष्ठान, अनुशासन का पालन नहीं करना, हम सहज सामान्य जीवन जीते हुए, सारे दोष-दुर्गुण, सारे सामाजिक बुराइयों के बीच जीते हुए, उसे पा लेते हैं।

इस नव-संवत्सर, इस नवरात्र में आकर कहीं न कहीं मुझे उसकी अनुभूति, उपलब्धि, या कह सकते हैं कि वह पूर्णता मिली, प्राप्त हुई, मुझे लगा कि हाँ अब मेरी जीवन की साधना, मेरे जीवन का लक्ष्य, जो मार्ग का लक्ष्य हो सकता है, वह मैंने पा लिया है। यहाँ मेरी यात्रा समाप्त होती है। चाह गयी, चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह। जाको कछु न चाहिए, सोइ सा हंसा।। वो तत्व है क्या? मन में कबीर की एक ही बात थी, इस बात को वह कितनी सरलता से समझाते हैं। आज यह बात समझ करके हम इसको विराम देंगे।

हमारे और उसके बीच क्या सम्बन्ध है? कुछ लोग कहते हैं कि वह अलग है, हम अलग हैं। क्यों? कैसे? मान सकते हैं कि वह पूर्ण है, वह सर्वत्र है, उसके बिना कुछ नहीं है, हमारी ये मान्यता है। फिर हम उससे अलग क्यों दिखते हैं। ''जल में कुम्भ है, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी। फूटहिं कुम्भ, जल जलहि समाना, संतों यह अकथ कहानी।।'' है क्या - सरोवर है, समुद्र है, नदी है, जल ही जल है। उसमें हमने एक घड़ा डाल दिया। वही पानी घड़े के भीतर भी आ गया। घड़े के भीतर एक जल है, घड़े के बाहर भी एक जल है। देखने वाला कह सकता है कि यह घड़े का जल है, वह सरोवर का

जल है, वह नदी का जल है। दोनों में भेद उत्पन्न हो गया। ये जो भेद है जो बीच में घड़ा आ गया है। इसी को लोग कहते हैं कि माया है, भ्रम है, अज्ञानता है। हम यह समझ नहीं पाये, दोनों में एक है, यह हमारा भ्रम, हमारा अज्ञान जो बीच में घड़े के रूप में आ गया, इसलिए हमें वो अलग दिख रहा है। कबीर दास कहते हैं कि फूटा कुम्भ, जल जलहि समाना। संतों यह अकथ कहानी। जब यह घड़ा फूट जाता है, यह हमारा भ्रम दूर हो जाता है, तो फिर दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। तब जो भेद दिख रहा था, था नहीं, लेकिन दिख रहा था। वो भी समाप्त हो जाता है। हमारा अस्तित्व उससे अलग कैसे होता है? उन्होंने कहा है - 'बूँद समानी समुद में, सो कत हेरी जाय'। हमारा उसका सम्बन्ध क्या है? उस सरोवर से हमने हाथ में जल लिया। छोड़ भी दिया। एक बूँद तो कहीं उँगली में है ना। हम कह रहे हैं कि एक बूँद तो उंगली में है, और वह सरोवर का विशाल जल है। अगर वो बूँद हमारी उँगली से वापस उसमें गिर जाये, तो उसे दोबारा खोजा कैसे जा सकेगा? बूँद समानी समुद में, सो कत हेरी जाय। क्या उसे दोबारा खोजा जा सकता है? क्या वही बूँद हमें दोबारा प्राप्त हो सकती है? क्या उस बूँद का पुनर्जन्म हो सकता है? नहीं हो सकता। उस समुद्र से अनेक बूँदें तो अलग हो सकती हैं। तमाम लोग समुद्र में हाथ डालकर अलग-अलग बूँदें तो ला सकते हैं। लेकिन वो बूँद जो एक बार हमने ली, और वापस उसमें चली गयी, क्या उसी बूँद को दोबारा पाया जा सकता है? क्या उस बूँद का पुनर्जन्म हो सकता है? वो सम्भव नहीं है। दो उदाहरण से उन्होंने समझाया। कबीर ने समझाया। उसने वेद नहीं पढ़ा। वो व्याकरण संस्कृत का विद्वान् नहीं था। लेकिन उसने इस परम तत्व को

जितनी सरलता से समझा दिया, वेद के बड़े-बड़े संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्, बड़े-बड़े व्याकरणाचार्य, हमें नहीं समझा पाये। वो केवल शास्त्रार्थ करते रहे, शब्दों को लेकर। लेकिन उस परम तत्व को कबीर ने समझाया, जिसने कुछ नहीं पढ़ा है। ये महत्वपूर्ण बात है। उस साधना से कबीर ने पा तो लिया, बिना पढ़े। लेकिन उसकी वह साधना बहुत कठिन है। उसने माना कि वह बहुत कठिन है। लेकिन उसने परम तत्व को समझा - फूट कुम्भ, जल जलहि समाना, संतों अकथ कहानी। बूँद समानी समुद में, सो कत हेरी जाय। सारी समस्याओं का समाधान यहाँ हो चुका है। इसी को हमने अभी पढ़ा। तत्र को मोहः कः शोकः। एकत्वम् अनुपश्यतः। अगर हम इस एकत्व भाव को एक बार अनुभव कर लें, तो कोई मोह, कोई शोक कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। अब हमारे पास कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता है। हमारे जीवन की साधना जीवन की आत्मा यहाँ पूर्ण होती है। अब आगे की व्यवस्था देखिए, इतना कह सकते हैं कि हम निष्काम हो सकते हैं, निष्कर्म नहीं हो सकते हैं। हम कहते हैं - जिजीविशेत शतम् समाः। लेकिन कुर्वन् एव इह कर्माणि, जिजीविशेष शतम् समाः। सौ वर्ष तक जीने की इच्छा तो करें, लेकिन कर्म करते हुए। निष्कर्म होकर नहीं, निकम्मे होकर नहीं, निष्क्रिय होकर नहीं जीना चाहिए। हम सौ वर्ष जियें, लेकिन कर्म करते हुए जियें, लेकिन वो कर्म हमारा कर्तव्य कर्म है। अब हम उसमें लिप्त नहीं हो सकते - न कर्म लिप्यते नरे। वह कर्म हमारे ऊपर अब लिप्त नहीं होगा। हम वहाँ आ चुके हैं कि वो कर्म मेरे में लिप्त तो नहीं होगा, लेकिन हमें जीना है तो कर्म करते हुए जीना है। इतना ही करना है कि अब किसी को मुझसे कुछ सीखना है तो आ सकता है। जो चाहे, कुछ

सीखने आयेगा, तो सिखा देंगे। कोई कुछ पूछेगा, तो बता देंगे। सम्पादन का कार्य ये लोग कर रहे हैं। जब तक हमरा शरीर स्वास्थ्य साथ देगा, तब तक हमारा मार्गदर्शन जो सम्भव है, आपको मिलता रहेगा। जितना हमसे हो सकेगा, सम्पादन हम भी करते रहेंगे। इसके अलावा अब मेरे लिए करने को कोई कार्य शेष नहीं है। अब ये कार्य यहाँ पूर्णतः को प्राप्त हुआ। अब मेरी ये इच्छा नहीं है, कि इतना ये और हो जाये। अब और हो जाये की इच्छा आप पालिए। हाँ आपको पालना ही है। हम यहाँ आ गये, इसका मतलब यह नहीं कि आप भी यहाँ अचानक आ जायेंगे। पिता जी कहते थे कि - रामलीला देखते-देखते थक गये। भाई आप वह सब कर चुके हैं, लेकिन हमारा तो अभी बचपन है न, हमें तो उस मार्ग से गुजरना होगा, आप उस खिलौने को छोड़ चुके हैं, लेकिन बच्चे को तो खिलौना चाहिए न। हमें उस रास्ते से गुजरना होगा। हम भी उन सब रास्तों से गुजरकर यहाँ आये हैं, आपको भी गुजरना होगा। अब ये दायित्व, ये कर्तव्य आपका है, आपको करना है, आपको निभाना है। जितना हमसे हो सकेगा, हमें बस सीखना और सिखाना है। आप लोग सीख लें, सक्षम हो जायें, तब तमाम वेद-पीठ, वेद विद्यालय बनते रहें, हाँ लोग तैयार हो जायें, उसका संचालन करने के लिए, यह आवश्यक है। अगर सम्भव है, तो एक छोटा सा नमूना, कि वेद पीठ और वेद विद्यालय में काम कैसे कराना चाहते हैं? व्यावहारिक रूप से वह स्वरूप हमारे सामने आ जाये, तो अच्छा है, आपके लिए अच्छा है, आपके भविष्य के लिए अच्छा है। सारे समाज के लिए अच्छा है। मेरे लिए अब उसका कोई महत्व, कोई उपयोग नहीं बचा।

64. चिन्तन धारा

आज हमारा प्रयास होगा, जो भी हमारा ये कार्यक्रम है, जो हमारा विचार है, जो उद्देश्य है, वह संक्षेप में लोगों तक पहुँचा सकें। हम सब जानते हैं, मैं बहुत समय से लगातार कह रहा हूँ कि हमारे पास कुछ नया नहीं होता है। अब हम जो भी बोलते हैं, वह सारी बातें आपको पता होती हैं, केवल उसका पुनर्प्रस्तुतीकरण समय और अवसर के अनुसार हम करते हैं। जिससे वह सारी बातें नये-पुराने सभी लोगों को व्यवस्थित रूप में प्राप्त होती हैं। हम लोगों का जो भी कार्यक्रम है, मुख्य रूप से वेद पर केन्द्रित है। क्यों है? हमने बताया है कि वेद विश्व का प्राचीनतम् ग्रन्थ है। मानव संस्कृति, विचारधारा, चेतना का प्राचीनतम् स्रोत, प्राचीनतम् चिन्तन जहाँ से मनुष्य मनुष्य बनता है, पशुवत् जीवन छोड़कर जब वह आगे बढ़ता है, मनुष्य जब मनुष्य बनना प्रारम्भ करता है। उसके अन्दर विचारशीलता आती है, तो प्राचीनतम् विचार, चिन्तन, मनुष्य को मनुष्य बनाने वाला चिन्तन, वेद में हमारे पास संकलित है, सुरक्षित है। वेद इस दृष्टि से हमारे लिए राजमार्ग है, सरल है, सुलभ साधन है। अधिक साधना किये बिना हम वेद के शब्दों को समझ सकते हैं, ये सरल है। हमारे पास शब्द हैं, इन शब्दों के अर्थ हैं और इन शब्दों के अर्थ करने, समझने के लिए हमारे पास विद्या है, प्रणाली है, तन्त्र है। इन शब्दों को हम सरलता से समझ सकते हैं, वह साधन हमारे पास उपलब्ध हैं। तो हम सामान्य जीवन जीते हुए, नित्य प्रति दैनिक कार्य करते हुए, उसमें से थोड़ा-सा समय निकालकर, एक-एक मन्त्र को क्रमशः समझते हुए, हम इस परम तत्व को समझ सकते

हैं, पा सकते हैं, सरलता से पा सकते हैं। लोग कहते हैं, उसे नहीं जाना जा सकता, उसे नहीं पाया जा सकता, उसे नहीं समझा जा सकता। वेद हमें आश्वस्त करते हैं, स्पष्ट उद्घोषणा करते हैं - ''वेदाहमेतम् पुरुषम् महान्तम्, आदित्य वर्णम् तमसा परस्तात्। तमेव विहित्वा अत्येति सर्वम्, नान्या पन्था विदथे अनाय।।'' वेद कहता है, वेद स्पष्ट कहता है कि हमने उस परम तत्व को जान लिया है, स्पष्ट घोषणा करता है, हमने उसको जान लिया है, वह अज्ञेय नहीं है, वह गोपनीय नहीं है, अप्राप्त नहीं है, अलग नहीं है, वह हमारे लिए सुलभ है, हमने उसे जान लिया है, तो आप भी जान सकते हैं। वेद का राजमार्ग हमारे लिए सुलभ है, उपलब्ध है। इसका यह अर्थ नहीं है, कि इस वेद के ग्रन्थ को पढ़े बिना उसे नहीं जाना जा सकता है। यह मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ। मैंने कहा यह सरल है, सुगम है, आपके लिए उपलब्ध है, सांसारिक जीवन जीते हुए, सरलता से आप इसे जान सकते हैं। अगर आप राजमार्ग को छोड़कर जाना चाहते हैं, हमें कहीं जाना है, राजमार्ग है, हमें पता है, कि इस सड़क को पकड़ लेंगे तो वहाँ पहुँच जायेंगे। जी. टी. रोड पर हम चलना शुरू कर देंगे, तो इधर जायेंगे, तो कोलकाता पहुँच जायेंगे, उधर जायेंगे, तो दिल्ली पहुँच जायेंगे, सरल है। लेकिन जो सक्षम हैं, जिनको जानकारी है, वो किसी भी रास्ते से जा सकते हैं। हर व्यक्ति के लिए सुलभ है कि वह राजमार्ग पर जाये, सीधे रास्ते से पहुँच जायेगा। वेद सबके लिए सुलभ है। लेकिन वेद जिसको सुलभ नहीं है, किसी कारणों से, उसे इस रास्ते की जानकारी भी नहीं है, या उसमें कुछ अधिक ही बल है, अधिक ऊर्जा है, कि नहीं! हम तो अपने तरीके से चलेंगे, असम्भव नहीं है, लेकिन ये कठिन बहुत है। वेद के बिना भी लोगों ने पाया है,

गौतम बुद्ध ने, ईसा मसीह ने, हजरत मोहम्मद ने, नानक ने, कबीर ने, उस परम सत्य को बिना वेद पढ़े पाया है। यह सत्य है कि इसमें से अधिकांश लोग निरक्षर थे। कबीर जी उद्घोषणा कर देते हैं, मसि कागज छुओ नहीं, कलम गही नहिं हाथ। मोहम्मद साहब को भी पढ़ना-लिखना नहीं आता था। गौतम बुद्ध को लिखना-पढ़ना तो आता था - लेकिन लोगों ने उसे भ्रमवशात् पढ़ने ही नहीं दिया गया। लोगों ने उसके स्वभाव को ही समझकर ही बता दिया कि ये आगे चलकर कहीं संत, महात्मा, ऋषि न हो जाये। सो इसे वेद पढ़ने ही मत दो। उस दिशा में जाने मत दो, वह राजकुमार है, उसे राजकार्य, दुनियादारी सिखाओ। भोग-विलास में इतना उलझा दो, वो उधर न जाने पाये, लेकिन जिसे जाना था, वो जायेगा ही। नहीं वेद पढ़ने दिया, न सही, उसने वेद को बिना पढ़े वेद के परम तत्व को साधना से पा लिया। मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ - कि उस साधना से उस तत्व को आप पा तो सकते हैं, लेकिन उसके लिए आपको बुद्ध होना होगा, उसके लिए आपको ईसा होना होगा, उसके लिए आपको मोहम्मद होना होगा, उसके लिए आपको कबीर होना होगा, नानक होना होगा, वह सरल नहीं है। वह आम आदमी के लिए सुलभ नहीं है। कबीरदास जी कहते हैं - चलो चलो सब कोई कहे, पहुँचे विरला कोई। एक बच्चे ने मुझसे प्रश्न किया कि सब लोग क्यों नहीं कर पाते। मैंने कहा उन्होंने कहा है - चलो चलो सब कोई कहे, पहुँचे विरला कोई। जब बहुत लोग चलना शुरू करते हैं, तब कोई एक पहुँचता है। हम कहते हैं कि जब करोड़ों बच्चे विज्ञान पढ़ते हैं, तब एक डॉ. कलाम बन पाता है। जब करोड़ों बच्चे गलियों में क्रिकेट खेलते हैं, तब एक सचिन तेन्दुलकर बनता है। उन्हीं में से कोई

बनेगा। लेकिन जब करोड़ों लोग वो साधना करते हैं, तब कोई एक बुद्ध बनता है। बुद्ध बनने की साधना बहुत कठिन है। वेद मार्ग सरल है, सुगम है, उतनी कठिन साधना, तपश्चर्या की आवश्यकता नहीं है। केवल साधारण भाषा की जानकारी करके उन शब्दों का अर्थ सही ढंग से समझ करके, वेद को वेद शब्दों में पढ़कर, समझकर, हम उस परम तत्व को जान सकते हैं, पा सकते हैं। यह सरल मार्ग है। कठिन तपस्या नहीं करनी पड़ेगी, साधना नहीं करनी पड़ेगी, सांसारिक जीवन के साथ कर लेंगे, इसलिए वेद मार्ग को हमने अपनाया है। कबीर के मार्ग में एक समस्या और है, जो कबीर होता है, वह किसी से कहता नहीं, और जो नहीं होता है, वो कोई भी फर्जी रामपाल, स्वयं को कबीर का अवतार घोषित कर देता है, इन फर्जी अवतारों में असली कबीर का एक प्रतिशत भी अगर कोई है, उसको ढूँढ़ना तलाशना बड़ा कठिन होता है। हो सकता है, असम्भव तो नहीं है लेकिन वह इतना कठिन है और ये फर्जी लोग विज्ञापन के दम पर ज्यादा दिखाई पड़ते हैं, जो असली होता है, वह कहीं छुपा रह जाता है। वेद का राजमार्ग इस दृष्टि से भी हमें प्रामाणिकता से सुलभ होता है, अगर कोई वैदिक ऋषि होने का दावा करता है। तो वेद पढ़े, पढ़ाये और समझाये। पहले हमारा विद्या गुरु बने, फिर वह दीक्षा गुरु बनने की सोचे। कुछ आता-जाता नहीं है, पढ़ना-पढ़ाना नहीं आता है, लेकिन साहब आडम्बर-ताम-झाम खड़ा करके वह महागुरु हो जाते हैं। इन फर्जी गुरुओं से बचने की कसौटी भी वेद है। आपको कुछ आता है, कुछ पढ़ना आता है, कुछ कर सकते हो, नहीं कर सकते हो तो फर्जी गुरु हो।

ये मन्दिर मस्जिद गिरिजाघर, ये गुरुद्वारे, ये मीनारें।

धर्मान्ध पुजारी करते हैं, इनमें खुद के वारे-न्यारे। जो परम पिता को छोड़ स्वयं, अपनी पोथी पुजवाता है, फर्जी बाबा कहलाता है। जिस आशाराम बापू की फोटो पूजी जाती है, जिस राम रहीम की फोटो पूजी जाती है, जिस संत रामपाल की फोटो पूजी जाती है, वह अन्ततः वहीं पहुँचते हैं, जिसके योग्य हैं, पहुँचना चाहिए, जो बचे हैं, उन्हें भी पहुँचना चाहिए। न्याय की तुला पर एक तुल गया तो क्या, इस देश में अभी बहुत अनतुले हैं। तो सबको उचित अंजाम तक पहुँचना होगा, जो कर्म है, उसका फल यहीं मिलेगा। मरने के बाद नहीं। जन्मों के बाद नहीं, जो हम कर्म करते हैं, उसका फल हमें, यहीं तत्काल प्राप्त होता है। हम आपको अभी छुयेंगे, तो अभी जलेंगे। अगले जन्म में जलन नहीं होगी। हम जो भी अच्छा-बुरा करते हैं, उसका फल हमें अभी प्राप्त होगा। हाँ, काल की गति है। आग बहुत तेज है, उसमें पड़ते ही, तुरन्त समाप्त हो जायेगा। हल्की आग में जलन होगी, धीरे-धीरे कुछ देर तक जलेगा, समय लगेगा, लग भी सकता है। तो थोड़ा-सा काल का अन्तराल इतना तो सम्भव है। कोई चीज आप बोते हैं, तो सप्ताहों में, कुछ महीनों में फल भी आ जाता है, और हम वटवृक्ष बोते हैं, तो उसे तैयार होने में वर्षों लगते हैं। लेकिन वो प्रक्रिया तत्काल प्रारम्भ हो जाती है। वटवृक्ष को तैयार होने में, वर्षों लगते हैं, ये इस बात का बहाना नहीं है कि आपके इस जन्म के कर्म का फल, कई जन्मों के बाद मिलेगा, कई जन्म नहीं होते। वेद में एक प्रसंग आया था, एक प्रश्न करता है, कस्य एकाकी चरति, कस्विद् जायते पुनः, एक प्रश्न किया कि कौन एकाकी चलता है, अकेला कौन चलता है और पुनः कौन जन्म लेता है। ऋषि मुस्कराकर उत्तर देता है। चुटकुले का प्रश्न था, चुटकुले की

भाषा में उत्तर देता है देखो भाई - सूर्यो एकाकी चरति। ये सूर्य अकेला चलता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, वह अकेला नहीं चलेगा। देखो भाई ये सूर्य अकेला चलता है और चन्द्रमा जायते पुनः। ये चन्द्रमा पुनः उत्पन्न होता है। पूर्णमासी का चन्द्र घटते-घटते अमावस्या पर समाप्त हो जायेगा और प्रतिपदा का चन्द्र पुनः फिर छोटा-सा उदय होगा, आप कह लीजिए, कि पुनः जन्म हो गया। आप चाहें तो कह लें, कि चन्द्रमा का पुनः जन्म हो गया। सब जानते हैं कि चन्द्रमा के पुनर्जन्म का क्या मतलब है। तो जिसका पुनः जन्म होता है इस हास्यास्पद प्रश्न को परिहास के तरीके से समझा दिया गया है। ये वेद मन्त्र है। जैसा प्रश्न वैसा उत्तर। आपने गम्भीरता से जानना चाहा, उस तरह बताया और आपने इस तरह कहा तो ये बता दिया। उस उत्तर में ऋषि ने ये नहीं कहा, कि जीव का पुनर्जन्म होता है। उसने ये नहीं कहा कि मनुष्य का पुनर्जन्म होता है। कहीं उसमें नहीं कहा। सूर्यो एकाकी चरति, चन्द्रमा जायते पुनः। वेद में कहीं पुनर्जन्म की बात नहीं आयी। अगर आयी, तो इतनी सी आयी और इस तरह आयी, जिसका अर्थ स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। बात स्पष्ट है। अब हम थोड़ा-सा कुछ आज के मुख्य बिन्दुओं को हम चाहते हैं, वो भी हमारे इस विषय से जुड़े हुए हैं। जैसे भाषा का प्रश्न है। इस पर मैं कुछ बताना चाहता हूँ। हमारी भाषा सर्वोपरि है। प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा मातृ भाषा में होनी चाहिए और चूँकि हम वेद से जुड़े हैं, वेद को जानना-समझना है, तो वेद की भाषा भी हमें जाननी चाहिए। बच्चे की प्राथमिक शिक्षा-दीक्षा केवल मातृ भाषा में होनी चाहिए। जो भी उसकी मातृभाषा हो। जिस देश, प्रदेश का निवासी है वो, वहाँ की मातृभाषा होगी। जब वह बड़ा होता है, और

हमें वेद तक पहुँचना है, तो वेद की भाषा को धीरे-धीरे हमें सीख लेना चाहिए। जिससे हम उस परम तत्व को जान सकें, समझ सकें। इसके अलावा कोई भी तीसरी भाषा नहीं। देशी या विदेशी। क्योंकि ईश्वर के साम्राज्य में देश और विदेश नहीं होता। जब हम उसकी बात करते हैं, तो काहे का देश और काहे का विदेश। हरसू हयात कारा जहूर तेरा। हर संग निकल रहा है जलवा हुजूर तेरा। उसके आगे देश-विदेश नहीं होता। तो कोई भी भाषा, देशी और विदेशी नहीं होती। एक मातृ भाषा होती है और एक वेद भाषा होती है। इसके अलावा अन्य भाषाएँ होती हैं, जो हम अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार जितनी चाहें, सीख सकते हैं। मातृ भाषा में शिक्षा प्रारम्भ हो। वेद की भाषा को हम विशेष रूप से सीख लें, और बाकी व्यावहारिक संसार की आवश्यकता के अनुसार जो भाषा की आवश्यकता हो, सीखें। अब अगर हमें, गुलाम देश में रहना है, तो सरकार की भाषा सीखनी पड़ेगी, वो चाहे जो हो। अब हमें सरकारी नौकरी पानी है, तो अंग्रेजी लेनी मजबूरी है। चूँकि अंग्रेजों की गुलामी हम करते आ रहे हैं। तो सरकारी नौकरी करने के लिए अंग्रेजी हमारी मजबूरी है, वह हमारी आवश्यकता नहीं है। अगर हमपे, क्षमता होती, तो आज बोलो, तख्त बदल दो, ताज बदल दो, बेईमानों का राज बदल दो। एक बार प्रधानमंत्री उद्घोषणा कर दें, आज रात 12 बजे के बाद अंग्रेजी भाषा लीगल टेंडर नहीं रहेगी। अंग्रेजी भाषा में कोई परीक्षा नहीं हो सकेगी। नौकरी के लिए अंग्रेजी की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अंग्रेजी में दिया गया कोई भी सरकारी आदेश वैध नहीं होगा। ये निर्णय कोई भी सरकार, किसी भी एक मन्त्रि-मण्डल की बैठक में ले सकती है। सक्षम सरकारों ने बड़े-बड़े निर्णय लिये हैं। अच्छे भी

और बुरे भी। हम उससे सहमत या असहमत हो सकते हैं, राजनीति विषय नहीं है मेरा। किसी सरकार ने कोई बड़ा निर्णय लिया, हम उससे सहमत हों या असहमत हों, लेकिन हम मानते हैं कि सरकारें जब निर्णय लेने पर आ जाती हैं तो बड़े-बड़े फैसले कर लेती हैं। नोटबंदी उचित थी, या अनुचित; ये आज हमारा विषय नहीं है। लेकिन एक मजबूत सरकार ने, एक बड़ा फैसला सुना दिया, सौ करोड़ लोग फुटपाथ पर आ गये और छोटे-मोटे फैसलों के लिए हमसे कहा जाता है, साहब विपक्ष सहमत नहीं है, विपक्ष अड़ंगा लगाये है, महिला आरक्षण के लिए विपक्ष तैयार नहीं है। अंग्रेजी हटाने के लिए विपक्ष तैयार नहीं है। इतना बड़ा फैसला आपने ले लिया, वहाँ कुछ नहीं कहा। एक सज्जन ने कहा साहब संस्कृत के समर्थन में ई-मेल कम आये। मैंने कहा नोट-बंदी के समर्थन में कितने ई-मेल आये थे। कितने लोगों ने ई-मेल भेजकर नोट-बंदी की मांग की थी। संस्कृत के समर्थन में ई-मेल कम आये, कहे गये थे, आये तो। लेकिन अंग्रेजी की तुलना में कम आये। किसी विदेशी भाषा की तुलना में कम आये। फिर भी आये न। किसने नोट-बंदी की मांग की थी। तमाम चीजें हुई, किसी भी सरकार के लिए। हम किसी सरकार के पक्ष और विपक्ष में नहीं हैं। इसी तरह से आप में कलेजा है, हिम्मत करके आप कह देते कि कल से अंग्रेजी माध्यम से कोई शिक्षा नहीं होगी। अंग्रेजी माध्यम के सभी स्कूलों का मान्यता, कल से निरस्त किया जाता है। आप कर सकते हैं। आपको करना चाहिए। और हमारे मुद्दे स्पष्ट हैं - राष्ट्रीय ग्रन्थ - वेद। राष्ट्रीय भाषा - संस्कृत। राष्ट्रीय संवत् - युगाब्द। आपको मंजूर हो तो मानिये। हमारा समर्थन आपके साथ। जो कोई हो, ठीक है। हमारे मुद्दे स्पष्ट हैं। हम न धर्म निरपेक्ष

हैं, लेकिन दल निरपेक्ष हैं। हम धर्म निरपेक्ष नहीं हैं। हम धार्मिक हैं, हम आध्यात्मिक हैं, हम लोगों को धार्मिक बनाना चाहते हैं, अधार्मिक नहीं बनाना चाहते, इसलिए हम धर्म निरपेक्ष नहीं हैं। हम पंथ निरपेक्ष हैं। हम किसी एक रास्ते पर जड़ नहीं हैं। हमने कहा कि उस परम तत्व को, बुद्ध ने, ईसा ने, मोहम्मद ने, नानक, कबीर ने, अपनी साधना से पाया। राह हैं जुदा-जुदा, खुदा तो एक है। राह पकड़कर एक चल-चला-चल, पा जायेगा मधुशाला। मधुशाला तक पहुँचने के रास्ते अनेक हैं, लेकिन लक्ष्य एक है। कहते हैं - राह पकड़कर एक चल-चला-चल, पा जायेगा मधुशाला। किसी भी रास्ते से चलो, मिल जायेगा; उसमें कोई दिक्कत नहीं है। हम किसी भी दल के साथ कभी भी बंधेंगे नहीं। कभी भी जुड़ेंगे नहीं। देश-काल परिस्थिति के अनुसार हम कुछ भी कर सकते हैं। इसी चुनाव में, कोई प्रत्याशी आये, हमारा वेद विद्यालय बनवा दे, इस चुनाव में हमारा समर्थन। जी-जान से प्रचार में भी लग जायेंगे, वो चाहे जो भी पार्टी हो। केवल हमारा समझौता इतना है कि आपने हमारा काम किया, मैंने आपका काम किया। उसके बाद आपका रास्ता अलग, हमारा रास्ता अलग। बंधने हम किसी से नहीं जा रहे हैं। चाहे वो कोई भी हो। वो चाहे गांधीवादी हों, चाहे गोडसेवादी हों, चाहें लोहियावादी, या अम्बेडकरवादी हों।

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्,
ॐ खम् ब्रह्म।

(यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

जो आदित्य सृष्टि में पुरुष (ईश्वर) है, वही मैं हूं,
ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है।

(यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

द्वितीय भाग - अविद्या

1. महाभारत का पहला दिन
भारतीय इतिहास की आधार तिथि
(5132वीं गीता जयन्ती पर विशेष)

आज से ठीक पांच हजार एक सौ बत्तीस (5132) वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र के मैदान में भारत का युगान्तकारी ऐतिहासिक गृहयुद्ध प्रारम्भ हुआ था। महाविनाशकारी उस महायुद्ध से पूर्व तत्कालीन राष्ट्रनायक योगेश्वर श्रीकृष्ण वासुदेव ने अपने मित्र और फुफेरे भाई व बहनोई पाण्डव अर्जुन को कर्मयोग का वह महान जीवन दर्शन समझाया जो आज गीता उपदेश के रूप में विख्यात है।

जिस दिन गीता का उपदेश दिया गया और महाभारत का भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ, वह दिन 3138 ई. पू. की मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी भारतीय इतिहास की निर्णायक तिथि है। न केवल इसीलिए कि उस गीता उपदेश ने आज तक भारत को प्रेरणा दी और वह युद्ध भारत के लिए युग-परिवर्तनकारी बना, अपितु इसलिए भी, क्योंकि यह भारतीय इतिहास की प्राचीनतम सुनिश्चित तिथि भी है। इसी तिथि के आधार पर प्राचीन भारतीय इतिहास का तिथिक्रम निर्धारित किया जा सकता है।

महाभारत युद्ध 18 दिनों तक चला। युद्ध समाप्त होने के दस दिन बाद सम्राट युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ। अपने राज्यारोहण पर सम्राट ने उसी समय से युधिष्ठिर संवत् का प्रारम्भ किया। युधिष्ठिर संवत् भारत का ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम संवत् है, इससे पूर्व भारत में कोई संवत् प्रचलित था या नहीं, इस बारे में

आज कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

युधिष्ठिर संवत 36 में बहेलिए के बाण से युग नायक कृष्ण की मृत्यु हो गयी। मानो एक व्यक्ति का नहीं, एक पूरे युग का अंत हो गया। उस वर्ष से पुनः एक नया संवत युगाब्द प्रारम्भ होता है, जो आज तक प्रचलित है और सभी भारतीय पंचांगों में लिखा जाता है। अपनी विलक्षण प्रतिभा, सबका मन मोह लेने वाले मृदु स्वभाव, अजेय योद्धा, महारथी, सेनानायक होने के साथ ही योगी और अद्‌वितीय दार्शनिक होने के कारण अति शीघ्र अलौकिक प्रभा मंडल कृष्ण के व्यक्तित्व चारो ओर बनता चला गया और युगाब्द को जनमानस के बीच युधिष्ठिर संवत् से भी अधिक सम्मान मिला। सम्राट विक्रमादित्य द्‌वारा 2051 वर्ष पूर्व विक्रम संवत् प्रारम्भ किये जाने के बाद सम्राटों-नरेशों द्‌वारा युधिष्ठिर संवत का प्रयोग बन्द हो गया और विक्रम संवत् प्रचलित हो गया। लेकिन युगाब्द का प्रचलन पंचांगों में होता रहा।

19वीं शताब्दी ई. में पश्चिमी इतिहासकारों की स्थापनाओं को ही अंतिम सत्य मानने वाले लोगों को युधिष्ठिर संवत् व युगाब्द की ऐतिहासिकता में पूरा संदेह हो सकता है। वे तो विक्रम संवत् की ऐतिहासिकता पर भी विश्वास नहीं कर पाते हैं। विक्रमादित्य के 135 वर्ष बाद सम्राट शालिवाहन द्‌वारा शक संवत् पर भी पश्चिम इतिहासकारों को संदेह ही है लेकिन यहां उल्लेखनीय है कि सम्राट विक्रमादित्य से पूर्व की सभी तिथियां हमें युधिष्ठिर संवत् और कलि संवत् में ही मिलती हैं। अतः इन संवतों पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं है।

उदाहरण के लिए एक विवादास्पद तिथि का उल्लेख करते हैं।

आदि शंकराचार्य की जन्मतिथि युधिष्ठिर संवत् व युगाब्द दोनो ही संवतों में उपलब्ध है। आदि शंकराचार्य का जन्म वैशाख शुक्ल पंचमी को युधिष्ठिर संवत् 2631 तथा युगाब्द 2593 में हुआ था। उनका देहावसान 2625 युगाब्द में हुआ। सम्राट सुधन्वा द्वारा आदि शंकराचार्य को सम्बोधित एक ताम्रपत्र लेख पर भी तिथि युधिष्ठिर संवत् 2663 अंकित है। इसके अनुसार शंकराचार्य का जीवन काल कुल 32 वर्ष (509 ई. पू. - 466 ई. पू.) है। अब विदेशी उन्हें 8वीं या 9वीं सदी में माने अथवा 19वीं या 20वीं सदी ईस्वी में, कल्पना का कोई आधार तो होता नहीं है।

नेपाल के इतिहास के अनुसार भी प्राचीन राजवंशों के तिथिक्रम में युधिष्ठिर संवत् का प्रयोग होता रहा है। नेपाल नरेश वृषदेवत वर्मा का शासन काल युधिष्ठिर संवत 2651 से 2690 तक अथवा युगाब्द 2615 से 2654 तक माना जाता है। कोटा वेंकटाचलम द्वारा लिखित इतिहास ग्रन्थ क्रोनोलाजी ऑफ नेपाल हिस्ट्री में इन तिथियों का ही प्रमुख उल्लेख है।

यह अलग बात है कि इन तिथियों को स्वीकार करने से पश्चिमी विद्वानों द्वारा लिखा गया भारत का विदेशी इतिहास संशोधन की मांग करने लगता है। बिना किसी प्रमाण के यह मान लिया गया है कि भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के समय विष्णु गुप्त चाणक्य व चन्द्रगुप्त मौर्य भारत के नायक - सिकन्दर के समकालीन थे। लेकिन सिकन्दर के आक्रमण से प्रभावित तक्षशिला का आचार्य कौटिल्य विष्णुगुप्त चाणक्य सिकन्दर का कहीं उल्लेख तक नहीं करता। कौटिल्य का अर्थशास्त्र मूलतः राजनीतिक ग्रन्थ है, लेकिन उसमें सिकन्दर के आक्रमण का उल्लेख न होना, दोनों की

समकालीनता पर प्रश्न चिह्न खड़े करता है।

वास्तव में युधिष्ठिर संवत् व युगाब्द के अनुसार प्राप्त तिथिक्रम से चन्द्र गुप्त मौर्य का राज्याभिषेक ई. पू. 1584 में हुआ था, सिकन्दर से 1250 वर्ष पहले।

इस प्रकार गीता का उपदेश और महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने का दिन भारतीय इतिहास की आधार तिथि है। इसी तिथि को आधार मानकर युधिष्ठिर से पूर्व के राजाओं का समय पीढ़ियों के अन्तर को सामने रखकर लगभग अनुमान किया जा सकता है तथा युधिष्ठिर के बाद के सभी राजाओं का समय पूर्णतः सुनिश्चित रूप से ज्ञात किया जा सकता है।

जल प्रलय के बाद प्रथम राजा मनु हुए। मनु के बाद अनुक्रम में युधिष्ठिर 95वें सम्राट थे। उनसे पूर्व वैवस्वत मनु के बाद 5वें सम्राट ययाति, 20वें मान्धाता, 31वें अर्जुन कार्तवीर्य, 33वें हरिश्चन्द्र, 41वें सगर, 44वें दुष्यन्त पुत्र भरत, 65वें दशरथ पुत्र राम, 69वें सम्राट प्रसिद्ध दशरथ युद्ध के विजेता नायक सुदास हुए। एक शताब्दी में औसत तीन राजाओं का शासनकाल माना जा सकता है। इस प्रकार सभी प्रमुख सम्राटों का समय अनुमान किया जा सकता है।

गीता उपदेश तक सम्पूर्ण वैदिक साहित्य की रचना हो चुकी थी और वेदान्त कही जाने वाली प्रमुख उपनिषदें भी लिखी जा चुकी थीं, लेकिन वैदिक भाषा के स्थान पर वाल्मीकि के रामायण वाली लौकिक संस्कृत जनभाषा के रूप में साहित्य की भाषा बनने लगी थी। गीता के साथ वैदिक आध्यात्मिक साहित्य के स्थान पर लौकिक संस्कृत और लौकिक साहित्य को भी प्रतिष्ठा मिली। पुराणों की शृंखला की रचना प्रारम्भ हुई और उसमें इतिहास और भूगोल जैसे

प्रामाणिक उल्लेख करने की परम्परा स्थापित हुई। वास्तव में तभी से आधुनिक अर्थों में भारत का ऐतिहासिक काल प्रारम्भ होता है। उसी समय से हम आज तक तिथिक्रम सहित इतिहास प्रस्तुत कर सकते हैं। मनु से युधिष्ठिर तक का समय आधुनिक इतिहासकारों की शब्दावली में पुरा ऐतिहासिक काल कहा जायेगा, क्योंकि उस समय का इतिहास है तो, लेकिन तिथि क्रम के साथ घटनात्मक विवरण उपलब्ध नहीं है। इन्द्र से पूर्व तथा इन्द्र से मनु का समय प्राक ऐतिहासिक काल कहलायेगा, क्योंकि उस समय का कोई राजनीतिक इतिहास नहीं प्रस्तुत किया जा सकता है।

2. वसन्त का स्वागत

फाल्गुन फरवरी का समय वासन्ती बहारों का है। धरती पीली चादर लपेटे इठला रही है और आम भी बौराने लगे हैं। फूलों के खिलने और भौंरों तथा तितलियों के उल्लास से हम सब भी सराबोर हैं। हर तरह के जीवन के विकास और उल्लास का यह मौसम उन कीट-पतंगों के लिए भी विकास का अच्छा समय है जो मनुष्य को रोगी बनाने में सहायक बनते हैं। मक्खी-मच्छर जैसे अनेक कीट-पतंगों की भी भरमार इसी समय होती है। अतः अपने उल्लास को बनाये रखने के लिए हमें रोगों के प्रति सावधान रहना भी इस समय बहुत आवश्यक है। भोजन-व्यायाम का विशेष ध्यान रखकर तथा बदले मौसम के प्रति जागरूक रहकर हम अपना स्वास्थ्य बनाये रख सकते हैं।

शीत लहर जा चुकी है और सर्दी उतार पर है, लेकिन ऊनी

कपड़ों को एकदम से त्याग न दें। जरा-सी असावधानी हमें रोगी बना सकती है। इस मौसम में क्या खायें और क्या न खायें जैसे उपदेश हम देना चाहते हैं। इस विषय में परिवार और समाज के अनुभवी लोगों की सलाह मानें और जरूरत पड़े तो सुयोग्य चिकित्सक से सलाह लेने में संकोच न करें। बस, थोड़ी सी जागरूकता और सावधानी अपनाकर हम स्वस्थ बने रह सकते हैं। आयुर्वेद जैसे प्राचीन चिकित्सा विज्ञान का सिद्धान्त है स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा और रोगी व्यक्ति के रोग का निवारण। अतः पहली आवश्यकता तो यही है कि हम अपनी जीवनचर्या ऐसी बनायें जिससे रोगों से दूर रहें तथा यदि किसी भी कारण से रोग हो ही जाये तो समाज में सुयोग्य चिकित्सक हमारी पीड़ा दूर करने के लिए हैं ही।

वसन्त में प्रकृति उल्लासमय है। इसके साथ ही मानव मन भी उत्साह और उमंग से भरा हुआ है। इस उल्लास, उत्साह और उमंग के साथ हमें वैदिक संस्कृति अभियान को नूतन गति प्रदान करनी है। इस वर्ष वेद स्थापना - वेदपाठ अभियान को निर्णायक सोपान तक पहुँचाना है। साधन अत्यल्प हैं, अतः समय भी अतीव अल्प है। इस वर्ष कार्य को प्रथम चरण की दृष्टि से तो पूर्णता की स्थिति में पहुँचाना ही है। अधिकतम परिवारों में वेद स्थापना तथा वेद पाठ करना है। इतना करना ही है कि भविष्य में वैदिक परिवार किसी व्यक्ति विशेष के आश्रित न रहकर सामूहिक रूप से कार्य करते हुए आगे बढ़ सके। अब हमारे बिना कार्य करते रहने की व्यवस्था बनायी जानी चाहिए। यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

ईश्वर की कृपा से प्रथम चरण के लिए आधारभूत सामग्री उपलब्ध हो गयी है। वेदों का सरल पाठ तैयार हो गया है। सविता

पाठ के रूप में यजुर्वेद के पाँच अध्याय प्रामाणिक भाष्य सहित प्रकाशित हो गये हैं। आवश्यक संस्कृत व्याकरण के साथ ही विस्तृत धात्वादि कोश भी प्रकाशित कर लिया गया है। वेद भाष्य का कार्य इतनी सामग्री की सहायता से सरलता से किया जा सकता है। आधारभूत व्यवस्था बनी रही तो यह कार्य भी श्री अमित गुप्त जी तथा श्री गौरव श्रीवास्तव जी मिलकर कर सकते हैं। इसी प्रकार से वैदिक पुराण का सम्पादन भी संसाधन उपलब्ध होने पर और भी सरलता से सम्भव है। अतः अब लेखन - सम्पादन से अधिक ध्यान प्रचार - प्रसार पर देना होगा। यह वर्ष हमारे लिए संगठन तथा आत्म विस्तार वर्ष होना चाहिए। इसी में हमारे उद्देश्य की सफलता निहित है।

वासन्तिक नवरात्र पर्व नव सम्वत्सर का शुभारम्भ भी है। वेदों का सरल पाठ प्रकाशित हो जाने से वेदपाठ परम्परा का नव जागरण सहज सम्भव हो गया है। नवरात्र में एक वेद का पारायण तो सभी परिजन व्यक्तिगत उपासना के क्रम में कर ही सकते हैं, सामूहिक रूप से अखण्ड पाठ आयोजन भी करने का प्रयास करना है। वेदायन का सामूहिक पाठ तो हम सबको अनिवार्य रूप से करना ही है। साप्ताहिक वेदायन पाठ कार्यक्रम का विस्तार करने का प्रयास करते रहें। सभी को वेद ग्रन्थ तथा वेद-पाठ का अवसर सरलता से सुलभ हो तथा यह भ्रम दूर हो सके कि वेद केवल उच्च स्तरीय विद्वानों तथा विशिष्ट वर्ग तक सीमित है अथवा वेद इतने कठिन हैं कि जन सामान्य के लिए वेद-पाठ तथा वेद-स्वाध्याय करना सहजता से सम्भव नहीं है।

गत मकर संक्रान्ति पर्व पर गायत्री साहित्य केन्द्र का शुभारम्भ

कर दिया गया है। वहाँ पर आवश्यक साहित्य उपलब्ध हो गया है। उसका भी क्रमशः विकास हो रहा है। वैदिक साहित्य के साथ ही आवश्यक समस्त सामग्री वहाँ उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है। आशा है कि नवरात्र से यह केन्द्र विधिवत् कार्य करने लगेगा। इसके लिए स्थान तथा समस्त सुविधाएँ डॉ. उमेश पालीवाल जी ने ही उपलब्ध करायी हैं। उनको वैदिक परिजनों की ओर से शतशः धन्यवाद। इस केन्द्र के संचालन का दायित्व श्री गौरव श्रीवास्तव जी का है। उनको हम सभी की हार्दिक शुभकामनाएँ। हम सबको सहयोग प्रदान कर गायत्री साहित्य केन्द्र को सफल बनाना है जिससे जन-जन को वैदिक साहित्य सुलभ होता रहे।

3. नया उल्लास, नयी उमंगें

शीत ऋतु बीत चुकी है, मौसम खुशनुमा है। हम होलिकोत्सव और नवरात्र के रूप में नूतन सम्वत्सर के स्वागत की तैयारियाँ कर रहे हैं। नयी फसल तैयार है और लहलहाते खेत किसानों में ही नहीं, नगर-वासियों के मन में भी उल्लास भर रहे हैं। ऐसे में इस उल्लास को बनाये रखने के लिए उमंग के साथ सावधानी भी जरूरी है, जोश के साथ होश बनाये रखना ही बुद्धिमानी है।

रंगों का पर्व होली बाहर से कपड़े ही नहीं, अन्तर्मन को भी सराबोर कर देता है। लेकिन थोड़ी-सी लापरवाही हो जाये तो ये रंग हमारे जीवन को बदरंग भी कर सकते हैं। बाजार में बिकने वाले रासायनिक रंग स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होते हैं, इनसे यथासम्भव बचा जाना चाहिए। परन्तु तमाम प्रयासों के बावजूद इनसे

पूरी तरह बच पाना कई बार सम्भव नहीं हो पाता है। ऐसे में प्रातः काल ही पूरे शरीर पर सरसों का तेल अथवा कोई अन्य तेल लगाना आवश्यक है। इससे कुछ सुरक्षा हो सकती है। हम प्रयास कर सकते हैं कि अपने निकट परिजनों के संग ही होली खेलें और उसमें प्राकृतिक रंगों का ही प्रयोग करें। टेसू आदि फूलों से बने रंग स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होते हैं जबकि रासायनिक रंग हानिकारक।

इसी प्रकार नवरात्र में व्रत-उपवास की परम्परा स्वास्थ्य की रक्षा के उद्देश्य से ही बनायी गयी है। यदि सुयोग्य चिकित्सक से परामर्श कर उपवास करें तो धार्मिक अनुष्ठान के साथ ही यह इस बदलते मौसम में स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी हो सकता है। भारतीय नव-सम्वत्सर तथा कालगणना पद्धति प्राचीन तथा वैज्ञानिक भी है। **युगाब्द अथवा कलि सम्वत् 3045 विक्रम पूर्व तथा 3102 ईस्वी पूर्व में प्रारम्भ हुआ था। नव-सम्वत्सर की हार्दिक शुभकामनाओं के साथ।**

4. हरित भूमि, निर्मल आकाश

तपती धरती की प्यास बुझाने के बाद निर्मल नील गगन में अठखेलियाँ करते बादलों के प्रयाण का समय है। लौटते बादल कभी कहीं प्यार से भिगो देते हैं तो कभी आकाश में मनमोहक आकार में हमें आकर्षित करते हैं। उनका उल्लास और सन्तोष की उमंग देखते ही बनती है। यह उल्लास और आत्म-सन्तोष है तपन से उबारने का तथा पृथ्वी को हरा-भरा बनाने का। देने का सुख तो देने वाले ही

जानते हैं। जिन्होंने कभी कुछ दिया नहीं, उन्हें यह सुख, उल्लास और आत्म-सन्तोष नहीं मिल पाता है। इन बादलों ने दो मास तक सबकी प्यास बुझायी, तपन से तड़पती धरती को नमी और हरियाली दी और सबको नवजीवन देकर किसी से कुछ लिये बिना उल्लास और प्रसन्नता बिखेरते हुए जा रहे हैं। ऐसा ही जीवन सार्थक होता है। प्रकृति से हम यह सीख ले सकते हैं।

लोग इसीलिए बादलों की प्रतीक्षा करते हैं। उनका जन्म और जीवन हमारे लिए है, अपने लिए नहीं। उनके आने में विलम्ब हमें सहन नहीं होता है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि बादल समय से आयें और झूमकर बरसें क्योंकि उनसे हमें नवजीवन मिलता है। हमारा भी जीवन ऐसा ही होना चाहिए कि लोगों को हमसे सुख मिले, उल्लास मिले, नवीन ऊर्जा और नयी आशा मिले। बादल ही क्यों, प्रकृति के सभी स्वरूप सबको समान रूप से अनुदान देते हैं, कोई भेदभाव नहीं करते हैं। सर्वहित की यही भावना हमें प्रकृति से सीखनी है। यदि हम प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेंगे, प्रकृति का संरक्षण करेंगे तो प्रकृति से संरक्षण और पोषण हमें प्राप्त होगा। यदि हम प्रकृति विरोधी जीवन-शैली अपनायेंगे तो हमारा जीवन कठिन हो जायेगा और पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व ही संकट में पड़ जायेगा। अतः प्रकृति के साथ चलें और सर्वहित की भावना रखें तो सबके साथ हमारा अपना भी हित अवश्य होगा।

यह मास भाद्रपद अधिमास का भी है। चन्द्रमास और सौर वर्ष के मध्य सन्तुलन स्थापित करने के लिए अधिमास की व्यवस्था प्राचीन ऋषियों ने की थी। जिस चन्द्रमास में कोई सूर्य संक्रान्ति नहीं होती है, उसे अधिमास माना जाता है। इस व्यवस्था से ही यह

सम्भव हो पाता है कि चन्द्रमास के श्रावण-भाद्रपद में बादल अवश्य आते हैं, इन मासों में शीत या प्रखर ग्रीष्म नहीं होती है तथा आश्विन में शरद ऋतु ही होती है।

5. सेवा में प्रथम वर्ष

इस अंक के साथ पत्रिका आपकी सेवा में अपना प्रथम वर्ष पूर्ण कर रही है। एक वर्षीय यह शिशु डगमगाते कदमों से ही सही, पर धीरे-धीरे चलने लगा है। आपने ही इसे अंगुली पकड़कर चलना सिखाया है। आपके सम्बल से ही यह बल प्राप्त कर रहा है। अतएव आप सब परिजन निश्चित रूप से हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

धरातल नहीं, उससे नीचे गर्त से प्रारम्भ हुई यह यात्रा शिखर की ओर सधे कदमों से आगे बढ़ रही है। इस बीच एक-एक छोटा पग हमारे लिए कठिन था। परन्तु हमने इस बीच कुछ पड़ाव तय किये हैं और अब लक्ष्य की ओर बढ़ने का भरोसा तो जगा ही है। आर्थिक तथा अन्य अनेक कठिनाइयों से जूझते हुए वैदिक मंच परिजनों का सहयोग-सम्बल ही हमारे लिए प्रेरणा और आशा का स्रोत बना और हम वेद तथा वैदिक संस्कृति के साथ सम्पूर्ण स्वास्थ्य की दिशा में सेवा का यत्किंचित सुख पाने का सौभाग्य प्राप्त कर सके।

इस एक वर्ष की सेवा में सहयोग के लिए आप सभी के प्रति आभार व्यक्त करते हुए हमारी अपेक्षाएँ भी बढ़ी हैं। सहयोग-सहायता करने वालों का अनुभव रहता है कि अपेक्षाओं की कोई सीमा नहीं होती है, हम विनम्रतापूर्वक इसे स्वीकार करते हैं। आप जितना सहयोग करते रहेंगे, हमारी अपेक्षा भी उसी के अनुपात में बढ़ती

रहेगी। बड़ा कार्य करना है तो सहयोग भी उसी के अनुरूप चाहिए ही। आपके सहयोग के बल पर अब तो वेद के प्रकाशन का हमारा संकल्प भी पूर्ण होता प्रतीत हो रहा है।

सहयोग के अनुरूप हम आपकी अपेक्षाएँ पूर्ण करने का प्रयास करते रहेंगे। आगामी वर्ष हम पत्रिका का स्तर सुधारने तथा महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन की दिशा में कुछ सार्थक तथा उल्लेखनीय कर पाने की आशा करते हैं। हम एक बार पुनः आप सबके सहयोग के प्रति आभार तथा धन्यवाद ज्ञापित करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

6. धन्यवाद, आभार

आध्यात्मिक तथा सांसारिक, व्यावहारिक जीवन के बीच समुचित सन्तुलन वैदिक चिन्तन की प्रमुख विशेषता है। आध्यात्मिक चेतना के साथ हम शारीरिक स्वास्थ्य का भी ध्यान रखें तथा सांसारिकता का निर्वाह करते हुए भी अध्यात्म से विमुख न हों, यही हमारा प्रयास होना चाहिए। इस विचार को ध्यान में रखकर ही हम पत्रिका में सामग्री चयन का प्रयास करते हैं।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर आधारित सम्पूर्ण स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता की दिशा में इस पत्रिका के रूप में हमारा यह तुच्छ विनम्र प्रयास वेद और वैदिक संस्कृति की दिशा में यथासम्भव कुछ सेवा कर पाने की भावना ही है। नितान्त साधनहीनता और विपरीत परिस्थितियों में प्रारम्भ की गयी इस पत्रिका का यह छठवाँ अंक सफलतापूर्वक प्रकाशित हो पाना ही हमारे लिए परम सन्तोष का

विषय है। इस बीच वेदानुयायी साधुजनों के उदार सहयोग से हमारा भरोसा बढ़ा है कि अब पत्रिका निरन्तर और उत्तरोत्तर प्रगति करती रहेगी।

हमारे सहयोगी परिजन ही हमारे लेखक भी हैं तथा प्रचार-प्रसार में सहयोगी प्रतिनिधि भी। पत्रिका के प्रकाशन-संचालन के लिए आवश्यक संसाधनों का प्रबन्ध आप सबको ही मिलकर करना है। अब तक के आपके सहयोग को देखकर ही हमारा आत्मविश्वास बढ़ा है। इसके लिए विनम्रतापूर्वक हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। हम इस पत्रिका में आपके सुझावों के अनुसार सामग्री देने का प्रयास कर रहे हैं तथा आपके सहयोग से उपलब्ध संसाधनों के अनुसार क्रमशः श्रेष्ठतर पत्रिका प्रस्तुत करने का प्रयास करते रहेंगे।

इस अंक के साथ पत्रिका द्वितीय वर्ष पूर्ण कर रही है। यह उपलब्धि आप सबके स्नेह-सहयोग का ही प्रतिफल है। इस वर्ष वेदायन, संस्कृत धात्वादि कोश तथा यजुर्वेदीय पञ्चाध्यायी सविता पाठ का प्रकाशन भी सम्भव हुआ। आगामी वर्ष वेदों का सरल पाठ तथा वेदभाष्य का प्रकाशन करने का प्रयास किया जाना है। पत्रिका को भी नवीन स्वरूप प्रदान करने पर विचार चल रहा है। पत्रिका के सहयोगी परिजनों को पुस्तकें उपलब्ध कराना भी हमारी कार्ययोजना में है। इसको मूर्त रूप देने के लिए व्यावहारिक उपायों पर विचार किया जा रहा है।

इसके साथ ही वेद स्थापना तथा वेदपाठ सत्संग की दिशा में भी सहयोगी परिजन प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। वेद सेवा की भावना को मूर्त रूप प्रदान करने की एक रूपरेखा तो बन ही गयी है। दिशा

मिली है, कार्य प्रारम्भ हो गया है, भावनाशील सहयोगियों ने दायित्व ग्रहण कर लिया है। युवा देव समूह भी हमें आश्वस्त कर रहा है कि शीघ्र यह प्रयास सफलता प्राप्त करेगा। उदारमना सहयोगियों का वरदहस्त भी हमारा उत्साहवर्धन कर रहा है। आगामी नूतन वर्ष इन प्रयासों को महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्रदान करेगा, यह आशा करना स्वाभाविक ही है।

7. उत्तरायण पर्व

मकर संक्रान्ति से उत्तरायण प्रारम्भ होता है। इस दिन से सूर्य का तेज उत्तरी गोलार्ध में बढ़ने लगता है। सरल रूप में कहा जा सकता है कि सूर्य की गति मकर रेखा से कर्क रेखा की ओर उत्तर की दिशा में अनुभव होती है। शीत तथा रात्रि चरम स्थिति को प्राप्त कर क्रमशः न्यूनता को प्राप्त होते हैं तथा दिन का प्रकाश निरन्तर बढ़ने लगता है। अतः उत्तरायण पर्व तथा मकर संक्रान्ति को ऊर्जा तथा तेज का पर्व माना जाता है। इस पर्व से सूर्य का प्रभाव न्यूनतम स्थिति से क्रमशः बढ़ना प्रारम्भ करता है, अतः इसे सूर्य दिवस भी माना जाता है। सूर्य के तेज को समर्पित यह पर्व सम्पूर्ण विश्व में मनाया जाता है। स्थानीय आधार पर इस पर्व के नाम तथा मनाने की विधियों में अन्तर होना स्वाभाविक है।

प्रखर तेजस्विता के प्रतीक बन गये स्वामी विवेकानन्द का जन्म भी मकर संक्रान्ति को ही हुआ था। इसी मास स्वतन्त्रता संग्राम के तेजस्वी योद्धा नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का भी जन्मदिन है। इस अवसर पर हम उनका सादर स्मरण कर उनके तेजस्वी

व्यक्तित्व को प्रेरणा बनायें तथा स्वयम् भी उसका कुछ अंश धारण करने का प्रयास करें, यही इस पर्व की मूल भावना है।

इसी भावना के साथ आपकी पत्रिका अपना प्रथम वर्ष पूर्ण कर द्वितीय वर्ष में प्रवेश कर रही है। आपके सहयोग से सम्बल प्राप्त कर हम सेवा संकल्प को आगे बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। आपका सहयोग हमारे इस सेवाधर्म को निरन्तर बल प्रदान करता रहेगा।

8. सभी को प्रकाश मिले बिना दीपावली उद्देश्यहीन

अंग्रेजों के शासन से मुक्त होकर स्वतन्त्र शासन व्यवस्था का उपयोग करते हुए 45 वर्ष पूरे हो गये हैं। इस अवधि में आंकड़ों की दृष्टि से उपलब्धियां भी काफी हैं। बड़े-बड़े उद्योग लगे हैं। प्रौद्योगिकी का विकास हुआ है और महानगरों में चमक भी बढ़ी है. लेकिन इसी के साथ और अधिक तेजी से बढ़ी है गरीबों और अशिक्षितों की संख्या। बेरोजगारों की फौज बढ़ी है, अपराध और राष्ट्र विरोधी हरकतें बढ़ी हैं और सबसे अधिक बढ़ी है अपने देश को हीन समझने और उन्हीं अंग्रेजों की भाषा तथा तौर तरीके अपनाने की भावना। इसे केवल यही कहा जा सकता है कि राजनीतिक आजादी के बाद हम जाहिल, कंगाल तो हुए ही हैं और मानसिक रूप से पहले से कहीं अधिक गुलाम भी हो गये हैं। राजनीतिक गुलामी तो कम घातक थी लेकिन यह मानसिक गुलामी तो राष्ट्र के अस्तित्व पर ही संकट बनकर छा गयी है। यह अंधेरा लगातार दीपावली को मुंह चिढ़ा रहा है।

स्पष्ट है कि हमारी प्राथमिकताओं और नीतियों में कहीं मौलिक भूल हो गयी है। विकास तो हुआ लेकिन विकास की रोशनी अधिकांश लोगों तक नहीं पहुंच सकी। यह जाहिर हो चुका है कि हमारे विकास का मॉडल ही गलत था। हमें वास्तव में ऐसी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता थी, जो नागरिकों में देश के प्रति सम्मान की भावना बढ़ाती और प्रत्येक व्यक्ति का विकास के प्रसाद में भागीदार बनाती। राष्ट्रीय एकता के नारों के स्थान पर वास्तविक एकता समरसता स्थापित होती और हर नागरिक यदि धनी-सम्पन्न न होता, तो भी कम से कम सभी की न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी होती और वह अपनी स्थिति पर कुछ तो संतोष कर पाता। नागरिक होने पर गर्व की भावना होती। इस आत्म गौरव के प्रकाश के बिना दीपावली का प्रकाश पर्व केवल एक व्यंग्य बनकर रह जायेगा। इसके लिए हमें नये सिरे से ऐसी व्यवस्था करने की आवश्यकता है, जो हर व्यक्ति का विकास सुनिश्चित कर सके और उसे विकास की उपलब्धियों में स्वयं को भागीदार अनुभव करायें। वास्तव में समग्र विकास मूलक समाज की स्थापना ही देश को साम्प्रदायिकता, अलगाववाद, बेकारी, गरीबी और भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं से छुटकारा दिला सकती है। विकास मूलक जीवन दर्शन की आधारभूत मान्यता है क्रमिक विकास। इसके अनुसार विराट ब्रह्माण्ड का वर्तमान स्वरूप शून्य से क्रमिक विकास द्वारा ही बन सका है। छोटी से छोटी या बड़ी से बड़ी इकाई व्यक्ति, समाज, राष्ट्र या विश्व की प्रगति भी इसी प्रकार हो सकती है। सभी को अचानक एक स्तर पर लाना संभव नहीं है। किसी को विकास के अवसर से वंचित भी नहीं किया जा सकता है।

वैज्ञानिक विकासवाद ही व्यक्ति तथा समाज के विभिन्न स्तरों तथा श्रम विभाजन की तर्क संगत व्याख्या करने में सक्षम है। अपनी क्षमताओं, विचारों तथा परिस्थितियों के अनुसार ही क्रमिक विकास होता है। इसलिए विकास की दिशा तथा स्तर अलग-अलग होते हैं। यह प्राकृतिक सत्य है। इसे उलटने का प्रयास व्यर्थ है तथा अनावश्यक भी।

सामाजिक न्याय के लिए सभी को विकास का अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है। समाज तथा शासन व्यवस्था केवल स्वाभाविक क्रमिक विकास में सहायक बन सकती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के विकास का समान अवसर समान परिस्थितियों में मिले, इसके लिए आवश्यक है कि सभी शिशुओं को प्रारम्भ से उच्च शिक्षा के साथ ही भोजन, वस्त्र, आवास तथा मनोरंजन के लिए भी एक समान अवसर तथा संसाधन को उपलब्ध होने चाहिए। एक समान संसाधनों व परिस्थितियों में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलने पर किसी को सामाजिक अन्याय की शिकायत नहीं होगी। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं व रुचियों के अनुसार योग्यता अर्जित करेगा तथा उसी के बल पर जीवन क्षेत्र में प्रतियोगिताओं का सामना करते हुए सफलता प्राप्त करेगा।

आदर्श सामाजिक न्याय में शिक्षा का अवसर मिलने के अतिरिक्त एक बड़ी बाधा पैतृक सम्पत्ति मिल जाने से अयोग्य व्यक्ति भी जीवन की दौड़ में सुयोग्य लोगों से आगे निकल जाता है लेकिन सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति समाप्त कर देने से भी सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी तथा औद्योगिक प्रगति को धक्का लगेगा। अतः मध्यवर्ती मार्ग अपनाना ही उचित होगा। असीम पैतृक

सम्पत्ति के उत्तराधिकार में हस्तान्तरण पर रोक लगनी चाहिए। व्यक्ति की योग्यता को यहाँ भी आधार बनाया जाना चाहिए। पैतृक सम्पत्ति की निश्चित सीमा अवश्य होनी चाहिए।

जिस व्यक्ति को पैतृक सम्पत्ति के रूप में भूमि, भवन या वाणिज्य उद्योग आदि मिलें, उसे विभिन्न सेवाओं में रोजगार का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। जिसके पास कोई भूमि या भवन नहीं है, उसे सेवायोजन में वरीयता दी जानी चाहिए। वरिष्ठ प्रशासनिक पदों तथा वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में केवल योग्यता व क्षमता के आधार पर चयन होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपनी भूमि या भवन को जीवन-यापन के लिए अनुपयोगी पाता है तथा रोजगार को वरीयता देता है, तो उसे सेवायोजन दिया जाना चाहिए और उसकी भूमि या भवन का अधिग्रहण कर ऐसे उपयुक्त व्यक्ति को दे दिया जाना चाहिए, जो रोजगार का अवसर न चाहता हो। राष्ट्रीयकरण कदापि नहीं किया जाना चाहिए।

विकासवादी अर्थव्यवस्था में उन्हीं उद्योगों या रोजगार को महत्व दिया जायेगा, जिससे उत्पादकता बढ़े तथा सम्पत्ति व पूंजी का सृजन हो। मनोरंजन तथा मात्र विलासिता की वस्तुओं पर पूंजी नहीं लगानी चाहिए। सकल राष्ट्रीय राष्ट्रीय आय का कम से कम 50 प्रतिशत अंश केवल शुद्ध उत्पादक कार्यों पर व्यय होना चाहिए। इससे राष्ट्रीय सम्पदा व पूंजी में तीव्र गति से वृद्धि होगी तथा रोजगार के अवसर भी बढ़ेगे। शुद्ध उत्पादकता केवल उन कार्यों में ही पायी जाती है, जो सम्पदा को बढ़ाने में सहायक हो। खनिजों का दोहन, परिष्करण तथा उपयोगिता वाली वस्तुओं का निर्माण ही शुद्ध उत्पादकता है। **चित्र या मूर्ति का भी बाजार मूल्य होता है, लेकिन**

उसे शुद्ध उत्पादकता की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

मैं मनोरंजन की उपयोगिता को नकारना नहीं चाहता, लेकिन यह तो तय करना ही पड़ेगा कि सकल राष्ट्रीय आय का कितने प्रतिशत अंश इसमें व्यय किया जा सकता है। मनोरंजन पर कुल दस प्रतिशत से अधिक व्यय की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसमें मनोरंजन सामग्री का उत्पादन व्यय भी शामिल है।

कुछ अनिवार्य अनुत्पादक व्यय भी हैं। सेना, शिक्षा तथा नागरिक सुविधायें उपलब्ध कराने के लिए, की जाने वाली व्यवस्थाएँ तथा विकास कार्य इस श्रेणी में आते हैं। इनको अनुत्पादक उपयोगी व्यय कहा जा सकता है। इन पर राष्ट्रीय आय का तीस से चालीस प्रतिशत तक व्यय किया जाना चाहिए।

शुद्ध अनुत्पादक कार्यों में मंत्रियों व सरकारी अधिकारियों की विलासिता पर होने वाला व्यय शामिल है। इस पर एक प्रतिशत भी व्यय करना राष्ट्र के प्रति अन्याय है।

विकासवादी अर्थव्यवस्था लागू करके लक्ष्य पूरा हो सकता है। ऐसा करने में केवल एक वर्ष का समय लगेगा। उत्पादकता मूलक औद्योगिक नीति अपनाने से सम्पदा व रोजगार के अवसर बढ़ेंगे तथा बेकारी समाप्त हो जायेगी। शिक्षा के व्यापक प्रसार से प्रतिभाओं व विद्वानों को अपनी क्षमता दिखाने का अवसर भी मिलेगा तथा समाज में सांस्कृतिक चेतना तथा सुव्यवस्था की स्थापना भी होगी। प्रारम्भ में तो बहुत बड़ी संख्या में लोगों को अनुत्पादक उपयोगिता मूलक कार्यों में रोजगार मिल जायेगा। जिसके व्यय की पूर्ति उत्पादकता मूलक अर्थव्यवस्था तेजी से कर सकेगी। यह भी प्रयास किया जायेगा कि उपयोगिता मूलक कार्य भी आर्थिक रूप से

आत्मनिर्भर बनकर ही संचालित हो तथा सरकारी अनुदान का मुखापेक्षी न रहे।

विभिन्न रूप में दिये जाने वाले सरकारी अनुदान तथा सब्सिडी अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ है। इस प्रक्रिया को तुरन्त समाप्त किया जाना चाहिए। साबुन, खिलौने तथा अन्य ऐसी वस्तुएं, जो लघु उद्योगों व गृह उद्योगों में बन सकती हैं, उनका उत्पादन बड़े उद्योगों में पूरी तरह बंद कर दिया जाना चाहिए। इससे औद्योगिक संस्कृति का विकास होगा तथा स्वरोजगार का प्रवृत्ति बढेगी और नौकरियों पर निर्भरता कम होगी। फिर कोई बेकार रहेगा ही नहीं। ट्रांजिस्टर व टेपरिकार्डर जैसी वस्तुएं भी लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित कर दी जानी चाहिए। सब्सिडी के स्थान पर लघु व कुटीर उद्योगों को इस प्रकार का संरक्षण अधिक उपयोगी सिद्ध होगा तथा अर्थव्यवस्था पर बोझ भी नहीं बढ़ेगा।

धर्म के क्षेत्र में विकासवाद को स्वीकार कर लेने से साम्प्रदायिकता स्वतः समाप्त हो जायेगी। जिस प्रकार हम भौतिकी, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विषयों का क्रमिक विकास मानते हैं उसी प्रकार से धर्मशास्त्र का भी क्रमिक विकास हुआ है, यह वैज्ञानिक अवधारणा है।

यह तथ्य सभी मानते हैं कि वेद विश्व का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य है। उसके पश्चात् विभिन्न स्थानों के अनेक महापुरुषों ने धर्म के क्षेत्र में चिन्तन कर मानव जाति के कल्याण के लिए विभिन्न विचार व व्यवस्थायें दी। इसे धर्मशास्त्र का क्रमिक विकास माना जाना चाहिए। विकास क्रम के सभी चरण तथा सभी विचार सभी को पढ़ाये जाने चाहिए।

अन्य विषयों की तरह ही धर्मशास्त्र को एक स्वतंत्र विषय के रूप में अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। उसमें विश्व की धार्मिक मान्यताओं की विवेचना होगी। एक परमेश्वर तथा बहुदेवता, एक ही जन्म व पुनर्जन्म की मान्यता, प्रकृति जीव व ब्रह्म का सम्बन्ध आदि पर विभिन्न मतों का उल्लेख तथा विश्लेषण किया जाना चाहिए। इन पर विश्वविद्यालयों में शोध कार्य भी होने चाहिए। इससे इस प्राकृतिक तथा वैज्ञानिक सत्य को पूरी तरह से स्थापित किया जा सकेगा तथा मान्यता मिल सकेगी कि धर्म तो एक ही है और विभिन्न मत व सम्प्रदाय तो विकास के विभिन्न चरण हैं।

न्यायपालिका की जटिल व उबाऊ प्रक्रिया तथा प्रशासनिक लालफीता शाही भी विकास में बाधक है। शासकीय प्रक्रिया काफी सरल तथा समयबद्ध होनी चाहिए। प्रत्येक कार्य की अधिकतम समय सीमा निर्धारित होनी चाहिए। किसी भी प्रकार के कोटा परमिट लाइसेंस तथा अन्य आवेदन पत्रों के अंतिम रूप से निस्तारण की अधिकतम समय सीमा निश्चित कर दी जाये। उसके अंदर कार्य पूरा करना सम्बन्धित अधिकारी के लिए अनिवार्य होना चाहिए।

न्याय पाने की प्रक्रिया भी समयबद्ध तथा सरल होनी चाहिए। अपना पक्ष सिद्ध करने का दायित्य वादी-प्रतिवादी पर नहीं होना चाहिए। न्यायपालिका स्वयं तथ्यों का पता लगा कर न्याय करे। निर्दोष व्यक्ति के खिलाफ अकारण मुकदमा कायम कर अदालत में भाग दौड़ करने तथा धन, समय व श्रम नष्ट करने की व्यवस्था समाप्त होनी चाहिए। मुकदमेबाजी में फंसकर न्याय पाने से पूर्व कई वर्षों तक अन्याय का शिकार किसी को नहीं बनाया जाना चाहिए।

निर्बाध विकास के लिए सामाजिक समरसता भी बहुत

आवश्यक है। भाषा, पहनावा तथा सामाजिक/सार्वजनिक व्यवहार में पूरी तरह समरसता आवश्यक है। विचारधारा, चिन्तन और मान्यतायें अलग हो सकती हैं, लेकिन बाहरी प्रतीकों पर दुराग्रह समाज में विघटन पैदा करता है और विकास मे बाधक बनता है। जिस देश व समाज में रहे हैं वहां की सामान्य वेशभूषा और भाषा अपनायी जानी चाहिए। ब्रिटेन का नागरिक यदि सम्प्रदाय या धर्म के नाम पर अरबी, हिब्रू या हिन्दी से ही चिपका रहेगा, तो समरसता में बाधक बनेगा। इसी प्रकार बंगाल में तो बंगला ही अपनानी पड़ेगी। इसका प्रमाण यह है कि इस्लाम के नाम पर पूर्वी पाकिस्तान में उर्दू का प्रयोग बुरी तह असफल हुआ और बांग्लादेश बना जिसमें केवल बंगला ही सर्वमान्य भाषा है।

जब तक हमारे अंदर सामाजिक नागरिक चेतना विकसित नहीं होती और परिवार में बड़े-बूढ़ों का सम्मान, छोटों को निर्णय में भागीदार बनाना हम नहीं सीख पाते, तब तक विकास दर्शन केवल आदर्श ही रहेगा। नागरिक कर्तव्यों का पालन आदत बन जानी चाहिए अन्यथा कोई भी सरकार या व्यवस्था विकास नहीं कर सकती। संयुक्त परिवार अनेक समस्याओं का अकेला समाधान है।

अभी तो दीपावली मनाना भी हमारे लिए आत्म प्रवंचना ही है और कुछ नहीं।

जन-जन के मन से, जिस दिन होगा तमस दूर,
घर-घर में जिस दिन, ज्ञान ज्योति जल जायेगी।
हम उस दिन दीपावली, मनायेंगे स्वामी
जिस दिन संस्कृति की, सीता वापस आयेगी।

प्रकाश पर्व

अमावस्या की रात्रि, जब आकाश में सूर्य तो क्या, चन्द्रमा भी नहीं दिखायी पड़ता है, तब मानवीय उत्साह की परीक्षा होती है। अकर्मण्य लोग निराशा में डूबकर अन्धकार को कोसते रह सकते हैं, परन्तु पुरुषार्थी मानव मिट्टी के छोटे-छोटे दीपकों से ही पूरी धरती को जगमगा देते हैं और इस तरह गहन अन्धकार को सफलतापूर्वक चुनौती देते हैं। यही है हमारा दीपावली पर्व।

हम युगों से इसी तरह यह दीपावली पर्व मनाते आये हैं। समय के साथ अनेक महत्वपूर्ण घटनायें इस अवसर से जुड़ती गयीं और इस पर्व का महत्व बढ़ता गया। मानो दीपावली पर्व पर अनेक नये दीपक जुड़ते चले गये। इस पर्व पर झिलमिलाते हुए सभी दीपक हमें यही सिखाते हैं कि अन्धकार को कोसने से कोई लाभ नहीं हो सकता है, परन्तु एक छोटा सा दीपक भी अन्धकार को भगाने में समर्थ है। हम प्रयास कर एक दीपक जलाते हैं और फिर सरलता से दीप से दीप जलाते चले जाते हैं। इस पर्व की यही महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। स्वयम् को दीपक की तरह प्रकाशवान् करें और फिर इसी दीपक से अन्य अपने जैसे दीपकों को प्रकाशित करते चलें तो अन्धकार के लिए कोई स्थान नहीं शेष रहेगा, चारो ओर ज्योति की जगमग होगी।

छोटे-छोटे दीपकों का अपना महत्व है, छोटे से छोटा दीपक भी अन्धकार को नष्ट करने में सक्षम होता है। अतः किसी छोटे दीपक का, किसी छोटे से सत्प्रयास का अनादर न करें, उसका भी सम्मान करें। हाँ, स्वयम् बड़े दीपक बनकर अधिक प्रकाश फैलाने का प्रयास अवश्य करें। अधिक प्रकाश देने वाले बड़े दीपक का महत्व

सभी लोग स्वतः अनुभव करते हैं। जो स्वयम् जलकर प्रकाश दे नहीं सकते हैं, वे ही अन्धकार दूर करने वाले दीपकों को मिलने वाले सम्मान से दुःखी होते हैं और उन्हें कोसते हैं। वे कभी दीपकों को भला-बुरा कहते हैं और कभी उनको सम्मान देने वाले गुणग्राही समाज को। अतः दीपक और गुणग्राही बनें, आलोचक नहीं, तभी समाज सम्मान दे सकेगा।

कार्तिक मास की अमावस्या की अन्धकारमय रात्रि में हम प्रकाशोत्सव मनाते हैं। हमारा प्रयास होता है कि कोने-कोने में प्रकाश हो जाये, कोई भी स्थान प्रकाश से वंचित न रहे। यह पर्व अन्धकार से लड़ने के हमारे दृढ़ संकल्प का प्रतीक है। जब आकाश में चन्द्रमा का भी प्रकाश नहीं होता है, उस रात्रि में हम छोटे-छोटे दीपकों के माध्यम से अन्धकार को दूर कर सर्वत्र प्रकाश भर देने का उत्साह तथा उल्लास जगाते हैं। यही हमारा पुरुषार्थ, प्रयास की प्रबलता तथा संकल्पशीलता है। इसी भावना से हम अपने जीवन से दोष-दुर्गुणों के अन्धकार को दूर कर सत्य तथा सद्गुणों का प्रकाश भर सकते हैं।

आध्यात्मिक जीवन में सभी दोषों का मूल असत्य है। यही सबसे बड़ा दोष है। हम संकल्प लें कि असत्य से पूर्णतः बचेंगे। सत्य बोलने का साहस न कर सकें तो भी इतना तो करें ही कि असत्य न बोलें। हम बहुधा परिस्थिति से लाचार हो सकते हैं, शक्तिशाली के समक्ष अप्रिय सत्य नहीं कह सकते हैं। ऐसे में इतनी व्यावहारिकता अपना सकते हैं कि सत्य को प्रकट न करें, परन्तु असत्य से फिर भी बचें। किसी को प्रसन्न करने के लिए असत्य न बोलें। असत्य आध्यात्मिक साधना के लिए बाधक ही नहीं, घातक भी है। व्यावहारिक दृष्टि से भी असत्य का भेद कुछ समय पश्चात् खुलता

ही है, तब स्थिति और भी कठिन हो जाती है। यदि हमें दुःख न पहुँचे, इसलिए आप हमसे कठोर सत्य छिपाते हैं, असत्य कह देते हैं तो सत्य ज्ञात होने पर हमें अधिक कष्ट होगा। पहले ही वस्तुस्थिति ज्ञात होने पर हम सावधान हो सकते हैं, समय पर हमें अप्रिय सत्य बता दें, यह हमारे लिए अच्छा ही होगा। असत्य आश्वासन देना, वचन को पूरा करने के प्रति गम्भीर न होना तो असत्य का निम्नतम स्तर है। यह तो कठोरतम अपराध है। अध्यात्म के प्रति, वेद के प्रति ऐसा करना तो घोरतम् पापकर्म है।

दीपावली का उद्देश्य है, प्रत्येक घर में उजाला

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' भारतीय संस्कृति का प्रतीक कहा जा सकता है और दीपावली उसका प्रत्यक्ष स्वरूप है। शरद ऋतु की कार्तिक अमावस्या, जिस रात चन्द्रमा भी नहीं होता है, प्रकृति की चुनौती को स्वीकार करते हैं और नन्हें-नन्हें मिट्टी के दीपक विश्व को सन्देश देते हैं कि सूर्य के अभाव में अपनी छोटी-सी क्षमता से अन्धकार का मुकाबला सफलतापूर्वक किया जा सकता है। वास्तव में प्रकृति की बाधाओं के विरुद्ध मानव के पुरुषार्थ का प्रतीक भी है दीपावली महापर्व।

कल्पना कीजिए कि प्रागैतिहासिक काल में, या कह लीजिए पत्थर युग में मानव ने पहली बार चन्द्रमा रहित रात के अंधेरे का सामना करने के लिए अपने प्रयासों से दीपक जैसा कुछ बनाया। वह वास्तव में मानव सभ्यता के इतिहास में बहुत बड़ी घटना रही होगी। किसी पत्थर के बीच में थोड़ा-सा बेड़ौल सा गहरा भाग देखकर उसमें

चर्बी भरी गयी होगी और किसी सूखी लता का टुकड़ा डालकर पत्थर की चिंगारी से उसे जलाया गया होगा। उस छोटे से नियन्त्रित प्रकाश को देखकर मानव को विद्युत के अविष्कार से कम खुशी नहीं हुई होगी।

दीपावली पर्व को हम उस महान् आविष्कार की जयन्ती भी कह सकते हैं। जगमगाते विद्युत प्रकाश के बीच भी अभी तक मिट्टी के दीपकों का महत्व कम नहीं हुआ है और अति प्राचीन युग की उपलब्धि का स्मरण हमें कराता रहता है।

इस प्रकार दीपावली भारत का अति प्राचीन पर्व है। प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख भी मिलता है। भारत के सभी सम्प्रदायों, शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिख आदि इस पर्व को अपनी-अपनी परम्पराओं से जोड़कर मनाते हैं। आधुनिकतम सम्प्रदाय आर्य समाज भी इसे महर्षि दयानन्द निर्वाण उत्सव के रूप में मनाता है। लंका पर विजय प्राप्त कर अयोध्या वापस आने पर राम के स्वागत में की गयी दीपमालिका की मान्यता सर्वाधिक प्रचारित है। वास्तव में दीपावली प्रकाश पर्व अनादिकाल से मनाया जा रहा है तथा उसके साथ ऐतिहासिक घटनाएँ समय-समय पर जुड़ती रही हैं।

भारतीय संस्कृति का आधार ग्रन्थ वेद अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने की प्रार्थना करता है तो उसका आशय मात्र भौतिक प्रकाश से नहीं होता है। दीपावली पर्व के साथ हर घर में दीपक जलाने का उदात्त भाव भी जुड़ा है। जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना, अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाये। यदि इस दिन भी किसी घर में अंधेरा है, किसी की क्षमता इस दिन भी घर में दीप जला पाने की नहीं है तो समाज का दायित्व बनता है कि उसका अभाव दूर करे

तथा वहां भी प्रकाश करने का प्रयास करे। धन लक्ष्मी का पूजन तथा दरवाजे खुले रखकर लक्ष्मी का स्वागत करने की परम्परा के पीछे यही भाव महत्वपूर्ण है। चांदी के सिक्कों का आदान-प्रदान भी इसी भाव की पुष्टि करता है। यदि अभावग्रस्त लोगों तक समृद्धि की किरण नहीं पहुंच सकी तो दीपावली परम्परा एक कर्मकाण्ड बनकर रह जायेगी।

आइए, इस दीपावली पर भीतर और बाहर का अंधेरा दूर करने का संकल्प लें। जन-जन तक ज्ञान का प्रकाश फैले, अज्ञान का अन्धकार दूर हो, लोगों में जागरूकता आये, चेतनता बढ़े। इस पर्व का सूक्ष्म संकेत यही है। जिस देश में आधी से अधिक जनसंख्या निरक्षर हो, गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने के लिए मजबूर हो, उस देश में दीपावली पर्व का बहुत अधिक महत्व है। प्रतिवर्ष यह पर्व हमें इस दायित्व की याद दिलाता है और कहता है कि चार डग हमने भरे तो क्या किया, है पड़ा मैदान कोसों का अभी। अशिक्षा, बेकारी, मानसिक गुलामी के अंधेरों के रहते हुए दीपावली को कर्तव्य के प्रति जागरूकता की प्रेरणा देने के रूप में ही मनाया जाना चाहिए।

हमने शताब्दियों तक गुलामी का अंधकार सहा है। वास्तव में इससे बड़ा कोई अन्धकार नहीं होता है। इस अंधेरे ने हमें स्वतन्त्र चिन्तन के प्रकाश के प्रति असहनशील बना दिया है। अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी ऐतिहासिक परम्परा हम सहन नहीं कर पा रहे हैं। हमारे लिए अभी भी अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी साहित्य और संस्कार ही प्रेरणास्रोत बने हुए हैं। हमारा शासन-प्रशासन, न्याय और विधान सब कुछ अंग्रेजी में ही है। उपयोगी जानकारी किसी भी भाषा-

साहित्य से प्राप्त कर लेना अच्छी बात है, लेकिन शिक्षा, न्याय व शासन-प्रशासन की भाषा तो भारतीय भाषा ही होनी चाहिए। आज अंग्रेजी उच्च वर्ग तथा श्रेष्ठता का प्रतीक बनी हुई है। हम पूजन के समय महालक्ष्मी से प्रार्थना करें कि देववाणी प्रेमियों पर अपनी कृपा विशेष रूप से बरसाएँ और उनका हर अभाव दूर कर मालामाल कर दें।

जब तक अशिक्षा और बेकारी का अंधेरा व्याप्त है, दीपावली पर्व सार्थक नहीं हो सकता है। सबको शिक्षा और सबको रोजगार की ओर यदि हम सार्थक पहल कर सकें तभी हर घर में दीपक जगमगा सकेंगे। यदि घोटाले, भ्रष्टाचार, अंग्रेजी और नशा जैसे अंधेरे दूर किये जा सकें तो शिक्षा और रोजगार का प्रकाश फैलते देर नहीं लगेगी। आप केवल अंग्रेजी हटाइए, अशिक्षा और बेकारी अपने आप चले जायेंगे।

9. मितव्ययी पत्रिका - निःशुल्क पत्रिका

पत्रिका तथा पुस्तकों के प्रकाशन सहित संस्था के सम्पूर्ण सेवा कार्य आप सब परिजनों के उदारतापूर्वक अंशदान से ही संचालित हो रहे हैं। अतः उचित यही है कि अपव्यय रोका जाये तथा सहयोग का सदुपयोग इस प्रकार हो कि उससे अधिकतम प्रतिफल प्राप्त किया जा सके। पत्रिका का आवरण पृष्ठ इसी भावना के साथ नवीन रूप में दिया जा रहा है। इससे धन की बचत होगी तथा उसका सदुपयोग हम पुस्तकों के प्रकाशन में कर सकेंगे। इस प्रकार मितव्ययी होने पर हम अपने सक्रिय सत्संगी वेदपाठी परिजनों को निःशुल्क पत्रिका

उपलब्ध करा सकेंगे।

हमारा विनम्र आग्रह है कि सभी परिजन अपने निवास पर वेदस्थापना करेंगे, साहित्य केन्द्र स्थापित करेंगे तथा मासिक वेदपाठ सत्संग का क्रम अवश्य बनायेंगे। हमारे सत्संग आडम्बर रहित तथा मितव्ययी होते हैं जिससे साधनहीन परिजनों को भी कठिनाई न हो। प्रायः देखा गया है कि सम्पन्न व्यक्ति भी व्यय तथा आडम्बर की व्यवस्थाओं से बचने के लिए सत्संग के आयोजन से बचने का प्रयास करते हैं जबकि वैदिक सत्संग में उनकी रुचि होती है तथा सरलता से व्यय करने तथा अनुदान देने में भी वे आगे रहना चाहते हैं। अत्यधिक भावनाशील परिजन भी पारिवारिक कारणों से अनेक व्यवस्थायें करने में स्वयम् को असमर्थ पाते हैं तथा बहुत चाहते हुए भी अपने निवास पर सत्संग का आयोजन नहीं कर पाते हैं। हमारे वेदपाठ सत्संग में ऐसी कोई व्यवस्था अनिवार्य नहीं रखी गयी है जिससे ऐसी कोई कठिनाई उत्पन्न हो। सभी परिजन अपनी भावना तथा परिस्थिति के अनुसार वेदपाठ सत्संग का आयोजन कर सकते हैं।

सत्संग में पुस्तक प्रसाद का वितरण करने की हमारी परम्परा है। इस माध्यम से अधिकतम लोगों तक वेद का प्रकाश पहुँचाने में सहायता मिलेगी। पुस्तक प्रसाद में वेदसूक्तों का ही वितरण करने का आग्रह किया जाता रहा है। इसके लिए ओम् साधना, शिव संकल्प, वेदायन पुस्तकें सुलभ हैं। यजुर्वेदीय शिवपाठ शारदीय नवरात्र वैदिक उपासना विशेषांक (अक्टूबर 2012) के रूप में प्रकाशित किया जा चुका है। पुस्तक के रूप में भी उसे उपलब्ध कराया जा रहा है। वेदपाठ की परम्परा को जन-जन में लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से

वेदायन पुस्तक का भी प्रकाशन किया गया है। ये सभी प्रकाशन पुस्तक प्रसाद के रूप में वितरण के लिए उपयुक्त हैं। घर-घर में वेदस्थापना हो, वेदपाठ का क्रम बने यही हमारी भावना है। परमात्मा की कृपा तथा आप सब परिजनों के सहयोग से हम इस दिशा में प्रयासरत हैं।

10. सहयोग में सावधानी

हमारी पौराणिक परम्परा में एक प्रेरणाप्रद कथा आती है। एक दानी राजा ने किसी अवसर पर अनेक लोगों को गायें दान की। राजा का बहुत यश हुआ। परन्तु उसमें एक चूक हो गयी। दान की हुई एक गाय किसी प्रकार वापस राजा की गायों में आ मिली और एक अन्य व्यक्ति को दान कर दी गयी। एक ही गाय दो लोगों को दान कर दिये जाने से दोनों में विवाद हो गया कि वह गाय किसकी है। जिसे पहले दान की गयी थी, उसने दूसरे व्यक्ति पर गाय चोरी की आरोप लगाया जबकि दूसरे व्यक्ति का कहना था कि उसे तो गाय दान में मिली है और उस पर चोरी का असत्य आरोप लगाया जा रहा है जो अन्याय है। दोनों ही व्यक्ति ठीक कह रहे थे। विवाद राजा तक पहुँचा। दोनो ने राजा पर धोखा देने का आरोप लगाया। कथा के अनुसार राजा को ही दण्डित होना पड़ा।

सत्कर्म करने पर भी राजा को दण्डित क्यों होना पड़ा? यही इस कथा का महत्वपूर्ण सन्देश है। दान पाने वाले निर्धन थे जो एक गाय के लिए राजा के आयोजन स्थल तक किसी प्रकार बड़ी आशा लेकर पहुंचे थे। उन्हें अनावश्यक रूप से चोरी करने तथा दूसरे की

गाय का लालच करने का आरोप सहना पड़ा। उनका पक्ष था कि उचित व्यवस्था करना भी राजा का कर्तव्य था जिससे उन्हें इस विवाद से बचाया जा सकता था। राजा उदारतापूर्वक दोनों पक्षों को दान-सहयोग तथा शालीनता से सन्तुष्ट भी कर सकता था। राजा सक्षम तथा अधिकार सम्पन्न था। यहां उससे विशेष उदारता की अपेक्षा की जाती थी। राजा का पक्ष भी ठीक था कि उसने तो उदारता से दान किया है, सत्कर्म किया है, फिर भी उसे दोषी ठहराया जा रहा है। यदि राजा केवल अपना यही पक्ष देखता है तो उसकी बात ठीक होते हुए भी दान पाने वालों के साथ न्याय नहीं है। सहयोग में विवेक, व्यवस्था, न्याय, उदारता अपेक्षित है। यदि हमारी असावधानी से सहयोग पाने वाले को कष्ट होता है तो हम अपने दायित्व से बच नहीं सकते हैं।

11. स्वस्थ चिन्तन, स्वस्थ जीवन

शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति तो लोग स्वाभाविक रूप से जागरूक रहते हैं, परन्तु मन और चिन्तन के स्वस्थ रहने पर सामान्यतः ध्यान नहीं दे पाते हैं। शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या के लिए बाहरी कारक दुर्घटना, जीवाणु, विषाणु आदि तो कारण बनते ही हैं, मन-विचार का स्वस्थ न होना भी महत्वपूर्ण कारण होता है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए जीवन मनोविज्ञान पर ध्यान देना बहुत उपयोगी है। स्वस्थ सकारात्मक चिन्तन तथा सामाजिक जीवन का महत्व न समझने वाले अकारण भी अस्वस्थ रहते हैं।

शरीर की स्वाभाविक क्रियाओं में साधारण व्यवधान तथा उसके

लिए अनावश्यक औषधियों का सेवन ऐसे लोगों के सामान्य जीवन का अंग बन जाता है। चिकित्सक को किसी जांच से किसी कारण का पता नहीं चलता और कोई उपचार संतोषजनक लाभ दे नहीं पाता है। ऐसी स्थिति में अध्यात्म चिकित्सा ही उपयोगी हो सकती है। कुशल चिकित्सा मनोवैज्ञानिक इस तथ्य को समझकर उचित परामर्श देकर यही प्रयास करते हैं। परन्तु यदि रोगी सकारात्मक चिन्तन और आचरण नहीं अपनाना चाहता तो उसको कोई लाभ नहीं मिल पाता है।

इसका दूसरा पक्ष भी है। कुछ लोग पहले से दुःखी रोगी का कष्ट यह कहकर और बढ़ा देते हैं कि अपने कष्ट के लिए वह स्वयम् दोषी है। खान-पान आदि के प्राकृतिक नियम का उल्लंघन करने के कारण ही उसे कष्ट हुआ है, ऐसा कहना तो पीड़ित के साथ अत्याचार ही है। अतः रोग के बाहरी कारक को नकारा नहीं जाना चाहिए तथा यह भी ध्यान देना चाहिए कि सकारात्मक चिन्तन तथा आध्यात्मिक जीवन विपरीत परिस्थितियों और प्राकृतिक नियमों के पालन में जाने-अनजाने अथवा परिस्थितिवश हुई चूक के प्रभाव से भी बहुत कुछ बचा सकता है। किसी का अहित नहीं चाहेंगे तो अकारण हमारा अहित भी नहीं होगा, जटिल परिस्थितियों में भी ईश्वर की कृपा से रास्ता निकल आयेगा, यह विश्वास रखना चाहिए।

12. सदाचार की सम्पत्ति

सदाचार का अर्थ है सच्चा आचरण, अच्छा आचरण। यह मनुष्य की बहुत बड़ी पूँजी है। जिसके पास यह पूँजी है, उसके पास

बहुत अधिक धन, सम्पत्ति या पद-प्रतिष्ठा आदि भले न हों, परन्तु सुख-शान्ति तथा आत्म सन्तोष अवश्य होता है। सुख के लिए सुविधाएं नहीं चाहिए। सुविधाओं के साथ सुख होना आवश्यक नहीं है। चिन्ता रहित होना ही वास्तविक सुख है। यह सच है कि सभी लोग दूसरे से सदाचार की ही अपेक्षा करते हैं, भले ही वे सदाचारी न हों। चोर, ठग, धूर्त लोग भी सदाचारी को ही पसन्द करते हैं, सदाचारी से ही व्यवहार रखना चाहते हैं। अतः सदाचार का अपना महत्व है, यह स्पष्ट है। एक भ्रष्ट पूँजीपति भी अपने लिए एक ईमानदार प्रबन्धक चाहता है और बहुधा उसके पास जाता है जो उसके धन के लालच को ठुकरा चुका होता है, जो बिकाऊ नहीं होता है। अनुभवी महापुरुषों का कहना है कि उन्हें मत सराहो जिन्होंने अनीतिपूर्वक धन-सम्पत्ति कमायी और सफलता पायी। सदाचार के बिना ऐसी सम्पत्ति और सफलता अनेक समस्याओं को भी जन्म दे सकती है। इससे सच्चे मित्र आप से दूर हो सकते हैं तथा चाटुकार आपको घेर लेते हैं। स्वार्थी चाटुकार कभी भी उस समय धोखा दे सकते हैं जब आपको सच्चे मित्र की आवश्यकता होती है। कभी-कभी ऐसे लोग धन के लालच में आपको काफी नुकसान भी पहुँचा सकते हैं। धन-सम्पत्ति सुविधाएं जुटाने के लिए महत्वपूर्ण हो सकती है पर सदाचार न होने पर वह सुख-शान्ति नहीं दे सकती है। कभी–कभी तो वह सुख-शान्ति में बाधक भी बन जाती है। सदाचार हो तो धन के अभाव में भी काम चल सकता है। बहुधा देखा जाता है कि धनी लोगों को नींद नहीं आती है और धनहीन गहरी नींद में सो जाता है। निर्धन के पास सदाचार का अभाव प्रायः नहीं होता है। वह स्वभावतः सदाचारी होता है। चाहें तो कह सकते हैं उसके पास भ्रष्टाचार के

लिए अवसर ही नहीं होता है। परन्तु सुख-सन्तोष का धन तो होता ही है। इसके सामने वास्तव में धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य़ सभी तुच्छ हैं।

13. आचरण की पवित्रता

बहुधा हमें ऐसे लोग मिलते हैं जो येन-केन-प्रकारेण अनुचित मार्ग से भी हमको लाभ दिलाने तथा हमारे लिए दूसरों को मूर्ख बनाने और फँसाने का भरोसा दिलाते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसे लोग पहले तो हमें ही मूर्ख बनाने और फँसाने का प्रयास कर रहे होते हैं। उनकी बातों में अधिकतर लोग फँस ही जाते हैं और जब उन्हें वास्तविकता का अनुभव होता है तो पछतावे के अतिरिक्त़ कुछ शेष नहीं रहता है। अतः उचित यही है कि उचित न्यायसंगत मार्ग से जो कुछ सम्भव है, उससे सन्तुष्ट रहें। सत्य के मार्ग से जो कुछ मिलता है, वह विश्वसनीय तनावमुक्त तथा प्रसन्नतादायक होता है। अनुचित मार्ग से शीघ्र ही बहुत कुछ पा लेने का लालच बहुधा हमें चिन्ता, तनाव तथा असन्तोष ही दे पाता है।

हमें समझना चाहिए कि जो व्यक्ति़ हमारे लिए असत्य बोलने तथा अनुचित मार्ग अपनाने को तैयार है, वह अपने हित में हमारे साथ अनुचित व्यवहार करने में क्यों संकोच करेगा? सच्चे मित्र को पहचानना ही महत्वपूर्ण है। वह असम्भव और अनुचित आश्व़ासन नहीं देगा, अनुचित कार्य में साथ नहीं दे सकेगा, परन्तु वह हमारा वास्तविक हित करने का प्रयास अवश्य करेगा। जो अपने स्वार्थ के लिए हमारे लिए उचित-अनुचित सबकुछ करने को तैयार है, वह अपना स्वार्थ सिद्ध न होने पर हमारे विरुद्ध भी सबकुछ करने को

तैयार रहेगा। ऐसे लोगों से बचने में ही हमारा हित है।

14. शालीनता-शिष्टाचार

हमारे जीवन में शालीनता तथा शिष्टाचार का बहुत अधिक महत्व है। अतः यह यह भी आवश्यक है कि हम यह भी समझें कि वास्तविक शालीनता तथा शिष्टाचार क्या है। कुछ विशेष अवसरों पर सभी लोग शिष्ट तथा शालीन बन जाते हैं, इसी प्रकार किसी अन्य अवसर पर वे ही अशिष्ट तथा अशालीन दिखने लगते हैं। ऐसे में हम किसी व्यक्ति का स्वभाव शिष्ट-शालीन मानें अथवा नहीं, यह प्रश्न स्वाभाविक है।

वास्तव में होता यह है कि लोग अवसर के अनुसार स्वभाव अपनाते हैं तथा दूसरों को शिष्टता शालीनता का महत्व भी इसी तरह बताते हैं। यदि हमें किसी से सहायता की आवश्यकता है तो हम उसके प्रति बहुत ही विनम्र, शिष्ट और शालीन बनें रहते हैं। इसके विपरीत अवसर पर हमारा स्वभाव भी परिवर्तित हो जाता है। यदि किसी को हमारी सहायता की आवश्यकता है तो हम उसके प्रति शिष्ट और शालीन नहीं रह पाते हैं तथा उससे ही शालीनता की अपेक्षा करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर अपनायी गयी शालीनता वास्तव में स्वार्थ तथा निर्बलता ही है। इसी प्रकार किसी शक्तिशाली के समक्ष हम विनम्र बन जाते हैं तथा अपने से निर्बल-निर्धन के प्रति कठोर व्यवहार करने लगते हैं। यह स्थिति हम लोक व्यवहार में बहुधा देखते हैं।

वास्तविक शालीनता तो वही है जो हम अपने से छोटे स्तर के

लोगों के प्रति अपनाते हैं। जो लोग निर्बल हैं, निर्धन हैं उनको हमारी सहायता की आवश्यकता है, यदि हम उनके प्रति विनम्र, शिष्ट और शालीन आचरण कर पाते हैं, तभी हम सच्चे अर्थों में शिष्ट-शालीन कहलाने के अधिकारी हैं, अन्यथा नहीं। जो हमारे अधीन हैं, हम उनका सम्मान करते हैं या नहीं, हम उनके प्रति शालीनता का आचरण कर पाते हैं या नहीं, यही मानवीय आचरण का मानदण्ड है। धन, पद, प्रतिष्ठा, आदि होने पर तो सभी आपके प्रति विनम्र हो जाते हैं, भले हो जाते हैं, वास्तविक सज्जन तो उनको ही मानिये जो अपने से छोटों तथा निर्धनों, निर्बलों के प्रति सज्जनता का व्यवहार करते हैं।

15. नूतन ऊर्जा : नूतन संकल्प

इस अंक के साथ पत्रिका तृतीय वर्ष में पदार्पण कर रही है। मकर संक्रान्ति पर्व की उत्तरायणी ऊर्जा के साथ नवीन आशा-अपेक्षाओं के साथ नूतन कलेवर तथा नूतन संकल्प भी है। इस वर्ष वेद संहिताओं का क्रमशः प्रकाशन तथा भाष्य का कार्य प्रमुख रूप से किया जाना है। सीमित संसाधनों में वेद-प्रभु की उपासना जो कुछ भी बन पड़ा है, वह परम पिता परमात्मा की कृपा तथा उदारमना परिजनों के सहयोग से ही सम्भव हो पा रहा है।

यह पवित्र कार्य प्रारम्भ ही न हो पाता यदि डॉ. उमेश पालीवाल जी ने वेदकार्य को सरल रूप में जन सामान्य तक पहुँचाने में उदार सहयोग का यह पवित्र संकल्प न लिया होता। उन्होंने पालीवाल प्रकाशन के रूप में आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न कार्यालय उपलब्ध

कराया तथा समय - समय पर आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया। यह सम्पूर्ण कार्य इसी से हो पा रहा है। यह कार्य जितना कुछ भी बन सकेगा, मेरे जीवन काल में अथवा उसके पश्चात् हमारे सहयोगी युवा देवमण्डल के माध्यम से, उसका श्रेय डॉ. उमेश पालीवाल जी को मिलना ही चाहिए। इस वेदसेवा तथा शोधकार्य के प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार की सामर्थ्य भी उनमें ही है, अतः इसका दायित्व तथा अधिकार स्वाभाविक रूप से उनका है ही। सहयोगी युवा देवमण्डल उनके संरक्षण में कार्य करने में सक्षम है। हम तो स्वयम् को उनका धन्यवाद कर पाने की स्थिति में भी नहीं पा रहे हैं। डॉ. कृष्णदत्त जी तथा श्री राजेश भास्कर जी ने भी कठिन समय में महत्वपूर्ण सहयोग देकर हमारा मनोबल बनाये रखने का कार्य किया है, इसके लिए हम उनके अतीव आभारी हैं। हम अपने अन्य सभी उदारमना सहयोगियों के प्रति भी आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

हमारे वेद तथा संस्कृत भाषा को सरल एवम् जन साधारण के लिए बोधगम्य बनाने के इस प्रयास में श्री अमित गुप्त जी, श्री गौरव श्रीवास्तव जी, श्री राहुल सिंह जी तथा सुश्री हर्षिता अवस्थी जी का योगदान अविस्मरणीय है। श्री अमित गुप्त जी उनमें वरिष्ठ हैं। इस कार्य की व्यवस्था बनाने में उनका महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। परिस्थितिवश उनको प्रबन्धन तथा मुद्रण व्यवस्था का कार्य देखना पड़ा, भविष्य में लेखन-सम्पादन का कार्य भी मुख्यतः उनको ही करना है। परम पिता परमात्मा इस कार्य के लिए उनको आवश्यक संसाधन, मनोबल तथा योग्यता-क्षमता प्रदान करें, यही प्रार्थना है।

युवा सहयोगी श्री गौरव श्रीवास्तव जी ने निष्ठा, समर्पण तथा

परिश्रम पूर्वक इस अमृत विद्या को सीखा - समझा तथा कार्य किया, उससे हमारी आशा - अपेक्षा बढ़ी है। हमें पूर्ण विश्वास है कि श्री गौरव जी इस देवकार्य को आगे बढ़ायेंगे तथा चारो वेदों का निष्पक्ष एवम् प्रामणिक भाष्य प्रस्तुत करेंगे। श्री राहुल सिंह जी साहित्य तथा संगठन के प्रचार-प्रसार का कार्य कर रहे हैं। पूरे प्रयास की सफलता का दायित्व व्यावहारिक रूप से उनके ऊपर ही है। सुश्री हर्षिता अवस्थी जी वेदपाठ करने में अप्रतिम हैं। उनको इस क्षेत्र में नैसर्गिक प्रतिभा के साथ ही सुमधुर स्वर का ईश्वरीय वरदान प्राप्त है। इस दिशा में उनसे नेतृत्वकारी भूमिका की अपेक्षा है। देवत्रयी के साथ देवी शक्ति का सुयोग इस दिव्य कार्य की सफलता के लिए पूर्ण ईश्वरीय आश्वासन ही प्रतीत होता है।

यह देवमण्डल इस देवकार्य को सफल करे, पूर्णता प्रदान करे हमारी यही शुभकामना है। भविष्य में हमारे समस्त लेखन- सम्पादन कार्य के प्रकाशन तथा प्रचार - प्रसार का दायित्व तथा अधिकार हमारे सहयोगी देवमण्डल को समान रूप से है। संशोधन - परिवर्तन में श्री अमित जी तथा श्री गौरव जी की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जानी चाहिए। आशा है, आप सभी का सहयोग हमारे युवा देवमण्डल को इस वेदकार्य को पूर्णता प्रदान करने के लिए प्राप्त होता रहेगा।

16. विशेष निवेदन

वेद तथा संस्कृत भाषा को सरल एवम् जन साधारण के लिए बोधगम्य बनाने के हमारे इस पवित्र प्रयास में हमारे अग्रज डॉ. कृष्णदत्त जी (अस्मिता, लखनऊ) तथा अनुज श्री अमित गुप्त जी

(त्र्यम्बक प्रकाशन, कानपुर) का सहयोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। आप दोनों महानुभावों के सहयोग से ही वर्तमान समय में यह कार्य चल पा रहा है। हमें आशा है कि आप दोनों ही भविष्य में हमारे बाद भी इस कार्य को आगे बढ़ाते रहेंगे। हमारा सम्पूर्ण साहित्य त्र्यम्बक प्रकाशन तथा अस्मिता के माध्यम से समाज को निरन्तर प्राप्त होता रहेगा। युवा सहयोगी श्री अनिल प्रजापति जी भी हमारे प्रमुख सहयोगी हैं। आशा है कि वे भविष्य में महत्त्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन कर सकेंगे।

पुस्तकों के प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार का दायित्व तथा अधिकार इन सभी सहयोगियों को समान रूप से है तथा भविष्य में मेरे न रहने पर भी रहेगा। महत्त्वपूर्ण यह है कि कार्य आगे बढ़ता रहना चाहिए। यथासम्भव मिलकर कार्य करना उत्तम है, परन्तु आवश्यक प्रतीत हो तो सभी सहयोगी स्वतन्त्र रूप से भी संगठन, प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार का कार्य कर सकते हैं। आशा है, हमारे युवा देवमण्डल को इस वेदकार्य को पूर्णता प्रदान करने के लिए आप सभी का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

डॉ. उमेश पालीवाल जी तथा श्री राजेश भास्कर जी ने भी कठिन समय में सहयोग दिया है। हम अन्य सभी उदारमना सहयोगियों के प्रति भी आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

17. श्रावणी पर्व

हमारे लिए श्रावणी पर्व का विशेष महत्व है। श्रावण मास में वेद के पठन-पाठन की विशेष परम्परा है। प्राचीन काल में वर्षा ऋतु

में आवागमन कठिन हो जाता था, अतः विद्वान् संन्यासी एक स्थान पर वर्षा-वास करते थे। इस प्रकार वेदव्यास जयन्ती आषाढ पूर्णिमा पर गुरुपूर्णिमा महोत्सव के साथ ही वेदस्थापना कर वेदपाठ के आयोजन प्रारम्भ किये जाते रहे हैं। आगामी भाद्रपद मास में कृष्ण जन्माष्टमी तक वेदपाठ तथा वेदचर्चा की विशेष परम्परा स्थापित हो गयी। श्रावण पूर्णिमा से श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तक वेद-सप्ताह मनाने की परम्परा भी प्रचलित है। इस अवसर पर हमारा प्रयास वैदिक पारिवारिक सत्संग के माध्यम से अधिक से अधिक परिवारों को वेदपाठ तथा वेद स्वाध्याय से जोड़ने का होना चाहिए।

हम आशा कर सकते हैं कि गुरुपूर्णिमा पर्व से पूर्व आप हमारे इस आग्रह को पढ़ चुके होंगे। अतः गुरुपूर्णिमा पर तो विशेष आयोजन करेंगे ही, प्रयास करेंगे कि पूरे श्रावण मास में तथा श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तक वैदिक पारिवारिक सत्संग का विशेष अभियान चलायेंगे, ऐसी अपेक्षा करना स्वाभाविक है। परिवार में प्रतिदिन ओम्-स्तुति प्रातः-सायम् करेंगे, सामूहिक सत्संग में वेदायन का पाठ होना चाहिए। सम्पूर्ण वेद-पाठ के आयोजन भी सम्भव हो सके तो अति उत्तम है। श्रीकृष्ण जन्मोत्सव पर सामवेद का पाठ होना ही चाहिए। गीता में वेदानाम् सामवेदो अहम् कहकर हमसे यही अपेक्षा की गयी है। हमें इस कर्तव्य का निर्वहन करना चाहिए। प्रयास करना चाहिए कि सत्संगों में वेदतत्व के मर्मज्ञ विद्वान् आमन्त्रित किये जायें। ऐसे वक्ताओं से बचना चाहिए जो वेद सप्ताह के नाम पर आत्मप्रशंसा तथा परनिन्दा पर ही अधिक विद्वता प्रदर्शित करते हैं। ऐसे लोगों के पास यदि उपयोगी ज्ञान है तो व्यक्तिगत रूप से उनका सम्मान करते हुए उसे प्राप्त करना तो उचित है, परन्तु सत्संग में

उपस्थित जन-समुदाय की भावनाओं तथा मूल्यवान् समय का भी ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

18. आश्विन नवरात्र : साधना तथा संकल्प

आश्विन नवरात्र में इस वर्ष व्यक्तिगत जीवन में ओम् साधना को प्रखर करते हुए वेद-पाठ तथा ओम् साधना सत्संग कार्यक्रमों को व्यापक तथा व्यवस्थित करने का प्रयास करना है। सभी प्रमुख परिजनों को सत्संग कराने में समर्थ बनना है तथा कार्यक्रमों को शुद्ध वैदिक स्वरूप में सम्पन्न करते हुए उनमें एकरूपता बनाये रखने पर भी ध्यान देना है। वेदायन का पाठ तो सभी परिजन करें ही, प्रयास होना चाहिए कि सामूहिक रूप से सम्पूर्ण वेद-पाठ के आयोजन में भी समर्थ टोलियाँ अधिक संख्या में तैयार हों जिससे आवश्यकता होने पर एक साथ अनेक आयोजन भी संचालित किये जा सकें।

पत्रिका हमारे लिए परिजनों के मध्य सम्पर्क – संवाद का माध्यम मात्र है। इसलिए प्रयास किया जाना चाहिए कि अधिक से अधिक पाठक इससे सक्रिय रूप से जुड़ें। प्रारम्भ से ही हमारे परिजन तथा पाठक हमारे लिए महत्वपूर्ण लेखक हैं। व्यावसायिक लेखकों से हमने कभी कोई अपेक्षा नहीं की। जो पाठक-परिजन लेख नहीं दे सकते अथवा कहें कि पत्रिका के सीमित पृष्ठों में उनकी रचनाओं को स्थान देना व्यावहारिक कारणों से सम्भव नहीं हो पा रहा है, वे भी पाठकों के पत्र के रूप में अपने विचार दे सकते हैं। इस प्रकार अधिक पाठकों की भागीदारी पत्रिका में हो सकती है। इस दिशा में पाठकों

को व्यक्तिगत रूप से जागरूक किया जाना चाहिए। पाठकों के पत्र नियमित रूप से प्रकाशित किये जा सकते हैं, अधिक से अधिक संख्या में पत्रों को स्थान दिया जा सकता है।

19. अन्त्येष्टि संस्कार : हमारा संकल्प

शरीर को एक दिन समाप्त होना ही है। मृत देह को समाप्त करने के लिए दहन, भूमिगत करना, जल प्रवाह करना तथा जीवों का भोजन बना देने की परम्परा विभिन्न संस्कृतियों में प्रचलित रही है। वेद में कहा गया है – भस्मान्तम् शरीरम्। इस शरीर को अन्त में भस्म होना होता है। भस् धातु का अर्थ भक्षण करना, चमकना, दोष लगाना, निन्दा करना है। मृत शरीर का भक्षण करना ही सम्भव है। उसे चमकाने, दोष लगाने, निन्दा करने का कोई औचित्य नहीं है। अतः भस्मान्तम् शरीरम् का एकमात्र उचित अर्थ भक्षण करना, खाना ही हो सकता है। मृत शरीर यदि किसी का भोजन बन जाये, किसी जीवित प्राणी की प्राण-रक्षा में उपयोग हो जाये तो उसकी सार्थकता है। मृत शरीर को समाप्त करने के लिए उसे जलाने का अर्थ है वृक्षों का हनन करना, वायु को प्रदूषित करना। वृक्षों का जीवन समाप्त करना स्वयम् ही अनुचित है तथा उसे जलाने से वायु में प्रदूषण बढ़ता है, वह और भी हानिकारक है। अतः मृत शरीर को जलाना अनुचित है। भूमिगत करने से उपयोगी भूमि व्यर्थ होती है, यह भी अव्यवहारिक है। अतः मृत शरीर को जीवों का भोजन बना देना, उनको भक्षण के लिए दे देना ही उचित है। यदि शरीर का कोई भाग किसी जीव, विशेष रूप से मानव की जीवन रक्षा के लिए उपयोग हो

सके तो कर सकते हैं, शेष शरीर को भोजन बना दिया जाये। प्राचीनकाल में सम्भवतः ऐसी परम्परा रही है, पारसी समुदाय में यह परम्परा है। वे मृत शरीर को ऊँचे स्थान पर जीवों के भोजन के लिए रख देते हैं। कुछ समय के पश्चात् जो भाग भोजन के रूप में उपयोग नहीं हो पाता है, उसे भूमिगत कर दिया जाता है। मेरे शरीर के लिए तो इस भावना का सम्मान करें ही, दाह करने के स्थान पर उसे जीवों के भोजन के लिए दे दिया जाये। जल प्रवाह भी उचित नहीं है, प्रदूषण का कारण बन सकता है। धन-लोभी व्यावसायिक चिकित्सक तैयार करने के लिए चिकित्सा महाविद्यालयो को देह-दान करना भी हम उचित नहीं मानते हैं। यह तो अपराधी तैयार करने में सहयोग करने के समान है।

20. धैर्य : अनमोल हार का मोती

धैर्य मनुष्य की सबसे महत्त्वपूर्ण पूँजी है। जिसके पास यह पूँजी है, उसके पास बहुत अधिक धन, सम्पत्ति या पद-प्रतिष्ठा आदि भले न हों, परन्तु सुख-शान्ति तथा आत्म सन्तोष अवश्य होता है। वर्तमान समय में इस पूँजी की कमी नजर आती दिखायी दे रही है। मनुष्य चिन्ताओं और समस्याओं से ज्यादा घिरता जा रहा है। धैर्य, वह है जो आपके कार्य को सकारात्मक रूप से समाप्ति की ओर ले जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण वह मनुष्य है जो कुआँ खोदते समय ये कतई नहीं सोचता, कि पानी नहीं निकला, हमें जगह बदलनी चाहिए। जब तक पानी नहीं निकलता है, तब तक वह धैर्यपूर्वक अपने कर्म में लीन रहता है, उसके लिए उसे चाहे कितनी

भी गहराई तक खोदना क्यों न पड़े। इसी प्रकार पपीहा (चातक पक्षी) स्वांति नक्षत्र की एक बूँद के लिए कई महीनों आसमान की तरफ धैर्यपूर्वक निहारता रहता है, जब तक उसके मुख में एक बूँद नहीं आ जाती।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लोग परिणाम की इच्छा, कर्म करने से पहले ही करने लगते हैं। इसी कारण फल उनकी इच्छा के अनुरूप नहीं मिलता है। यह सच है कि सभी लोग अन्यों से धैर्य की ही अपेक्षा करते हैं, भले ही वे धैर्यवान न हों। अनुभवी महापुरुषों का कहना है कि गर्म वस्तु को ठण्डा होने पर ही लेना चाहिए, धैर्यहीनता की स्थिति में वह वस्तु हानि भी पहुँचा सकती है। धैर्य होना तो सभी में आवश्यक है, लेकिन इसको धारण करने वाले बहुत ही कम लोग होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जिन्दगी के अनमोल हार में धैर्य जैसे मोतियों की अत्यन्त जरूरत है।

21. गुरु-पूर्णिमा - वेदव्यास जयन्ती

वेदव्यास के रूप में प्रतिष्ठित महर्षि कृष्ण द्वैपायन का जन्मदिवस गुरुपूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। वैदिक संस्कृति में यह महान् पर्व है। साधारण ग्राणीण मत्स्यजीवी परिवार की गुणवती तथा रूपवती कन्या सत्यवती के गर्भ से विवाहपूर्व जन्मे भगवान् कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी 28वें तथा अन्तिम वेदव्यास थे। उन्होंने 27वें वेदव्यास के रूप में अपने पिता महर्षि पराशर का उल्लेख भी किया है। उनके पश्चात् कोई वेदव्यास नहीं हुआ, परन्तु अभी तक सन्तों, विद्वानों, प्रवचनकर्ताओं के आसन को व्यासपीठ कहकर

सम्मानित किया जाता है। हमारी मान्यता है कि वेद भगवान् ही हमारे गुरु हैं। वेद ही परमात्मा का शब्द-शरीर तथा प्रत्यक्ष रूप है। वेद तथा वेदव्यास को इतना सम्मान देने के कारण है कि वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा भारतीय धर्म-संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद का पाठ तथा स्वाध्याय करना हमारा परम धर्म है। हमारी मान्यताएँ, चिन्तन तथा आचार-विचार वेद के अनुकूल होना चाहिए।

सविता पाठ में मूलतः यजुर्वेद के प्रारम्भिक पाँच अध्याय हैं। इसी प्रकार शिव-पर्व में यजुर्वेद के अन्तिम सात अध्याय हैं। हम वसु पर्व के रूप में यजुर्वेद के अध्याय तीस से तैंतीस तक चार अध्याय भी प्रस्तुत कर चुके हैं। इस प्रकार यजुर्वेद के प्रथम पाँच अध्याय सविता पाठ के रूप में तथा अन्तिम ग्यारह अध्याय वसु पर्व तथा शिव पर्व के रूप में प्रकाशित हो गये हैं। यह यजुर्वेद षोडषी ही लघु यजुर्वेद के रूप में जन सामान्य की सेवा में प्रस्तुत हैं। सरल पाठ देने के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ भी प्रस्तुत किया है।सरल पाठ में मन्त्र का सन्धियों से मुक्त पाठ किया जाता है। इसका अर्थ है कि पदान्त में अन्य पद की सन्धि नहीं होती है। सरल पाठ में क्रिया विभक्ति अथवा नामिक विभक्ति के पश्चात् कोई शब्द या पद सन्धि के द्वारा नहीं मिलाया जाता है। इसी प्रकार अव्यय आदि शब्दों में जहाँ विभक्ति का लोप होता है, उनके अन्त में भी किसी पद या शब्द या शब्दांश की सन्धि नहीं होती है। इस प्रकार सरल पाठ में सभी पद पृथक् तथा स्पष्ट होते हैं।

इसका स्वाध्याय कर लें तो धात्वादि कोश, सरल संस्कृत व्याकरण तथा वैदिक शब्दकोश का उपयोग कर विचारशील परिजन सम्पूर्ण वेद का इसी रूप में प्रामाणिक अर्थ करने में समर्थ हो सकते

हैं। आशा है कि हमारे सहयोगी इस कार्य को पूर्ण करेंगे। शेष जीवन काल में हमसे जो कुछ बन पड़ेगा, सेवा करने का प्रयास करते रहेंगे।

22. सेवा में एक वर्ष और

इस अंक के साथ पत्रिका का चतुर्थ वर्ष पूर्ण हो रहा है। जिन परिस्थितियों में यह कार्य हो रहा है, उसे देखते हुए यह उपलब्धि मात्र सन्तोषप्रद ही नहीं, उल्लासप्रद तथा उत्साहप्रद मानी जानी चाहिए। इस वर्ष चारो वेदों का सरल पाठ प्रकाशित हो गया, इस प्रकार वेद-स्थापना अभियान भी वास्तविक रूप में प्रारम्भ किया गया। इस अभियान में नेतृत्वकारी भूमिका के साथ जुड़े डॉ. अखण्ड प्रकाश जी को इस वर्ष के संगठन विस्तार संकल्प तथा वेद स्थापना अभियान की प्रमुख उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। वेदार्थ, वैदिक शब्दकोश तथा वेदायन का कार्य भी आगे बढ़ा है। यह कार्य भविष्य में अनवरत चलता रहेगा, कार्य को पूर्णता प्राप्त होने तक। श्री अमित गुप्त जी ने ऋग्वेद तथा डॉ. अखण्ड प्रकाश जी ने अथर्ववेद का दायित्व स्वीकार किया है। यह भी हमारे लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है। परमात्मा उनको इस महान् कार्य में सफलता प्रदान करे।

अब वेदभाष्य तथा वैदिक शब्दकोश का कार्य पूर्ण करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है। भविष्य में डॉ. अखण्ड प्रकाश जी तथा श्री अमित गुप्त जी के नेतृत्व में हमारे युवा सहयोगी इस कार्य को पूर्ण करें, परमात्मा से यही प्रार्थना है। आगामी वर्ष एक वेद का भाष्य तथा शब्दकोश का कार्य पूर्ण हो सके तो हमारे प्रयासों की सार्थकता मानी

जा सकती है। इसके साथ ही वेदस्थापना तथा वेदपाठ करने वाले परिजनों को अधिक संख्या में तैयार करना भी हमारा लक्ष्य होना चाहिए। यही आगामी वर्ष का हमारा संकल्प है। इस प्रकार आगामी वर्ष वेद-स्थापना तथा वेद-पाठ प्रसार एवम् विस्तार वर्ष के रूप में माना जाना चाहिए। इसमें सफलता मिलने पर हमारे आगामी प्रकाशन संकल्प भी पूर्ण हो सकते हैं।

23. व्रत

व्रतम् कृणुत, अग्निः ब्रह्म, अग्निः यज्ञः, वनस्पतिः यज्ञियः।
दैवीम् धियम् मनामहे, सुमृडीकाम् अभिष्टये,
वर्चोधाम् यज्ञ-वाहसम् सुतीर्था नो असत् वशे।
ये देवाः मनोजाता मनोयुजे दक्षक्रतवः,
ते नो अवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा।।

व्रत का अर्थ है वरण करना, अपनाना, स्वीकार करना, चुनना। हम किसी उत्तम कार्य को करते हैं, स्वीकार करते हैं, उसे व्रत करना कहते हैं। अग्नि अर्थात् अग्रणी विद्वान् साकार प्रत्यक्ष ब्रह्म स्वरूप होता है। ब्रह्म का अर्थ है बड़ा सबसे बड़ा परमेश्वर। अतः वह ब्रह्म है। वेदवाणी भी ब्रह्म है तथा विद्वान् भी ब्रह्म हैं। यजन अग्नि अर्थात् अग्रणी विद्वान् के लिए है, यजन उसके मार्गदर्शन तथा संरक्षण में ही सम्भव है। अतः अग्नि ही यजनस्वरूप है। वनस्पति का अर्थ है वाणी का अधिपति अर्थात् विद्वान्। वही यजनकर्ता हो सकता है। बिना विद्वान् के यजन सम्भव नहीं है। ये देवगण अर्थात् तेजस्वी विद्वान् मनन से उत्पन्न तथा मनन से

युक्त होते हैं। वे ही समाज को विद्या का प्रकाश तथा मार्गदर्शन एवं संरक्षण प्रदान करते हैं। उनके लिए सर्वव्यापी परमेश्वर है, परमेश्वर ही उनका संरक्षक है।

24. मन

पुनः मनः पुनः आयुः मे आ अगन्,
पुनः प्राणः पुनः आत्मा मे आ अगन्,
पुनः चक्षुः पुनः श्रोत्रम् मे आ अगन्.
वैश्वानरो अदब्धः तनूपा अग्निः,
नः पातु दुरितात् अवद्यात्।। (यजुर्वेद - 4/4/15)

परमेश्वर से दूर होकर हम अपना सब कुछ खो देते हैं। उपासना से हमें सब कुछ पुनः प्राप्त होता है। मन, आयु, प्राण, आत्मा का पृथक् उल्लेख होने से स्पष्ट है कि ये सभी पृथक् तत्त्व हैं। इनके पुनः प्राप्त होने से यह भी स्पष्ट है कि आत्मा को मन, प्राण, आयु, देह नहीं प्राप्त होता है। आत्मा के भी पुनः प्राप्त होने का स्पष्ट उल्लेख होने से स्पष्ट है कि आत्मा को मन, प्राण, आयु, देह नहीं प्राप्त होता है, अपितु आत्मा भी जीव को प्राप्त होने वाले तत्त्वों में एक है। इससे स्पष्ट है कि जीव या प्राणी की सत्ता या अस्तित्व आत्मा से पृथक् है। यह सम्भव है कि जीव या प्राणी इन सभी का समूह, संयोग, समवाय हो। मन, आत्मा, प्राण, शरीर, आयु ये सभी जीव के अंग या भाग हो सकते हैं। शरीर भौतिक पदार्थ है यद्यपि वह भी जैविक द्रव्य है, तथा निर्जीव वस्तुओं से भिन्न हैं। आत्मा परमेश्वर की चेतना शक्ति है। आत्मा की चेतन शक्ति जीव

में सक्रिय होकर आत्मा कही जाती है। मन भी आत्मा की चेतन शक्ति से कार्य करता है। मन ही शरीर तथा जीवन का संचालन करता है।

25. जीवन पथ

हमारा जीवन पथ वेद से प्रेरित, प्रदर्शित है। वेद हमारा जीवन-दर्शन है, आधार ग्रन्थ है, पथ प्रदर्शक है। वेद का मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए वेद का स्वाध्याय आवश्यक है। इसके लिए वेद की भाषा का ज्ञान आवश्यक है। अतः सरल संस्कृत भाषा तथा व्याकरण का ज्ञान भी अनिवार्य है। इसके साथ ही वैदिक संस्कृति का इतिहास तथा वैदिक सम्वत् युगाब्द का ज्ञान तथा प्रयोग भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार वेद, वैदिक भाषा संस्कृत, युगाब्द तथा वैदिक इतिहास हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं तथा हमारे सम्पूर्ण प्रयासों के मूल में हैं। वेद, संस्कृत, युगाब्द, वैदिक इतिहास के साथ ही व्यापक जनहित की भावना भी हमारे लिए मूल सिद्धान्त है। हमारा जीवन, हमारी साधना-उपासना, हमारा सम्पूर्ण अभियान, हमारा सम्पूर्ण आचार-विचार इन पाँच मूल सिद्धान्तों से प्रेरित है।

ये सैद्धान्तिक तथा बौद्धिक प्रयास मात्र नहीं हैं। ये व्यावहारिक सामाजिक जीवन में भी महत्वपूर्ण हैं। जनहित का सिद्धान्त हमें सिखाता है कि ऐसा कोई भी कार्य या निर्णय जो व्यापक रूप से जनहित को हानि पहुँचाये, समाज के अधिकतर लोगों को कष्ट दे, उसे उचित नहीं कहा जा सकता है। स्वार्थी, धूर्त, ठग हमें भविष्य में लाभ होने का लालच देकर ठगते हैं और बहुधा लोग इस जाल में

फँस जाते हैं। वरम् अद्य कपोतः न श्वो मयूरः। इसका अर्थ है कि आज मिलने वाला कबूतर अच्छा है, कल मोर मिलेगा, यह लालच उचित नहीं है। विचार-पूर्वक भविष्य की योजनाओं के लिए निवेश करना, प्रयास करना अच्छा है, परन्तु दूसरों के लालच में आकर वर्तमान को नष्ट करना उचित नहीं है।

व्यापक समाज के परिप्रेक्ष्य में कहें तो जिससे अधिकतम लोगों को सुविधा हो, लाभ हो, वह कार्य उचित है तथा जिससे अधिकतम लोगों को कष्ट हो, हानि हो, असुविधा हो, वह कार्य अनुचित है। चूहों को मारने के लिए घर में आग लगा देना उचित नहीं है। पूरा घर जल जाने पर भी चूहे तो बचकर भाग भी सकते हैं। कुछ दुष्टों को दण्डित करने के लिए पूरे ग्राम या नगर को नष्ट नहीं किया जा सकता है। सज्जनों की रक्षा के लिए दुष्टों का दमन आवश्यक है, परन्तु दुष्टों को दण्डित करने के नाम पर अनेक सज्जनों को कष्ट देना अनुचित है। एक सज्जन की रक्षा के लिए सौ दुष्टों का अन्त करना उचित है, एक सज्जन को बचाने के लिए सौ दुष्टों को जीवन-दान देना भी रणनीति की दृष्टि से स्वीकार्य हो सकता है, परन्तु एक दुष्ट को दण्डित करने के नाम पर सौ सज्जनों को कष्ट देना पाप है, अन्याय है, अस्वीकार्य है। समाज तथा राष्ट्र का नेतृत्व करते समय इस बात का ध्यान रखना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

26. प्रकृति और हम

प्रकृति की हिंसा न करें, उसे नष्ट न करें। प्रकृति जीवनदायी है, अतः अघ्न्या है, अहिंसनीय है। हम स्वार्थवश कभी-कभी यह भूल

कर देते हैं, अहिंसनीय को शापित-निन्दित करने लगते हैं, अतः प्रार्थना करते हैं कि हे वरुण, वरणीय परमात्मन, हमें इस पाप-भावना से मुक्त करो। जीवन-दायिनी, आरोग्य कारी प्रकृति हमारे लिए अच्छी मित्र बनकर रहे। जो द्वेष-भाव रखते हैं, उनके लिए वे दुर्मित्र हो सकते हैं। ध्यान देने योग्य है कि प्रकृति स्वभावतः मित्र है, वह कभी किसी की शत्रु तो हो ही नहीं सकती है। इतना ही हो सकता है कि किसी के लिए सुमित्र हो, अच्छा मित्र हो तथा किसी के लिए दुर्मित्र हो सकती है, अर्थात् बहुत सहायक न हो, परन्तु रहेगी मित्र ही, शत्रु नहीं होगी। इसमें कहा गया है कि जो हमसे द्वेष करता है तथा जिससे हम द्वेष करते हैं, यह सन्देश भी ध्यान देने योग्य है। व्यावहारिक जीवन में ऐसा सम्भव नहीं है कि कोई हमसे द्वेष न करे। इसी प्रकार यह भी सम्भव नहीं है कि हमको किसी से कभी द्वेष हो ही नहीं। परन्तु महत्त्वपूर्ण यह है कि जो हमसे द्वेष करता है, उसके लिए यो अर्थात् जो शब्द एकवचन में आया है तथा वह हमसे अर्थात् हम सबसे अर्थात् हम बहुत लोगों से द्वेष करता है। इसी प्रकार कहा गया है कि हम सब जिसे अर्थात् किसी एक से द्वेष करते हैं। स्वाभाविक है कि हम वैदिक संस्कृति के अनुयायी उपासक हैं, हम सामान्यतः किसी एक से द्वेष नहीं करते हैं। जो एक व्यक्ति हम सभी से द्वेष करता है, स्वाभाविक रूप से उसके विचार दूषित होंगे। इसी प्रकार यदि हम सब लोग किसी एक व्यक्ति से द्वेष करते हैं, तो स्वाभाविक रूप से माना जाना चाहिए कि उसके विचारों में ही द्वेष-भाव होगा। हम सभी लोग किसी एक से अकारण तो द्वेष नहीं करेंगे।

27. हमारे कर्म व्यापक हों

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे,
अश्विनोः बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्
आददे नारी असि इदम् अहम्,
रक्षसाम् ग्रीवा अपि कृन्तामि।
बृहन् असि बृहद्रवा बृहतीम् इन्द्राय वाचम् वद।।

देव का जनक (परमात्मा) तुमको व्यापक भुजाओं के लिए, पोषक हाथों के लिए उत्पन्न करता है। वह तुमको भी इन्हीं गुणों से युक्त उत्पन्न करे। परमात्मा देवों को उत्पन्न करने वाला है। परमात्मा ने देव शक्तियों, सूर्य आदि दिव्यताओं को उत्पन्न किया है। इस बात का स्मरण कराते हुए कहा गया है कि हमारा जीवन व्यापक भुजाओं तथा पोषक हाथों के लिए है। अर्थात् हमारे कार्यों में व्यापकता होनी चाहिए। कर्म समाज का पोषण करने वाले होने चाहिए। नारी का अर्थ है ले जाने वाली। रक्ष् धातु का अर्थ है रक्षा करना। समाज के रक्षक तो रक्षणीय हैं। यदि कोई अपने स्वार्थों की रक्षा की चिन्ता करे और स्वार्थ के लिए दूसरों का अहित करे तो वह रक्षक नहीं कहा जा सकता है। ऐसे रक्षक तो दण्डनीय हैं, उनका गला काटने का भी साहस समाज हित में करें। इन्द्र अर्थात् परम् ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए महान् वाणी बोलो, स्तुति करो।

28. सुनने का धैर्य, कहने का साहस

व्यावहारिक जीवन में इस बात का बहुत महत्व है कि हम सुनने का धैर्य बनाये रहें तथा कहने का साहस भी। ऐसा न करने का अर्थ

है कि हमारा मन निर्मल नहीं है। कुछ ऐसा है जिसे हम छिपाना चाहते हैं। किसी की बात नहीं सुनने का अधैर्य दिखाने का अर्थ है कि हम उस सत्य का सामना नहीं करना चाहते हैं जो कोई व्यक्ति हमसे कहना चाहता है। बहुधा ऐसा करने वालों को ज्ञात होता है कि सामने वाला व्यक्ति क्या कहना चाहता है। ऐसी स्थिति में पद, धन या किसी अन्य विशेषाधिकार का प्रयोग करते हुए सामने वाले की बात सुनने को अस्वीकार कर देते हैं, उसे अपनी बात कहने का अवसर नहीं देते हैं। इसके लिए समयाभाव, व्यस्तता को आवरण बनाने के साथ ही कभी-कभी कठोर व्यवहार दर्शाकर सामने वाले को बोलने से रोका जाता है। स्वाभाविक है कि ऐसा करने वाले उच्च स्थिति में होते हैं। उचित यही होगा कि सत्य को सहजता से स्वीकार कर लें कि इन परिस्थितियों में यही करना सम्भव है। इस प्रकार थोड़ा सा साहस कर सत्य तथा लोक-व्यवहार की रक्षा कर सकते हैं।

इसके विपरीत किसी बात को जानते हुए तथा अनुभव करते हुए भी उसे व्यक्त न करना भी इसी के समान है। किसी की पूरी बात सुन तो लेते हैं, पर उस पर कोई स्पष्ट बात कहते नहीं हैं, चुप रह जाते हैं या टाल देते हैं। यह भी बात न सुनने जैसा ही तो है। इस व्यवहार के पीछे मुख्य बात है भ्रम बनाये रखने का प्रयास। स्थिति स्पष्ट नहीं करने के पीछे भाव होता है कि भ्रम बना रहे जिससे किसी भी परिस्थिति में अपनी सुविधा के अनुसार बात को घुमाया जा सके। कभी-कभी इससे सामने वाले को गम्भीर हानि हो सकती है, किसी का जीवन नष्ट हो सकता है। अतः प्रयास करना चाहिए कि जो कुछ भी हम उचित समझते हैं, उसे यथाशीघ्र उचित समय पर ही स्पष्ट कर दें। इससे किसी को क्षणिक दुःख हो सकता है,

परन्तु वह उससे तो अत्यल्प ही होगा जो लम्बे समय तक भ्रम में रहने के कारण भारी हानि होने से उसे हो सकता है। अतः ध्यान रखें कि सुनने का धैर्य तथा कहने का साहस दोनो ही महत्वपूर्ण हैं। हमे इस सूत्र को सदैव ध्यान रखना है।

29. क्या बात हुई कि खतरे में है हस्ती हमारी

स्वाधीनता के बाद भारत ने अनेक दिशाओं में भौतिक प्रगति की है। आज देश में सुविस्तृत औद्योगिक ढाँचा है, आधुनिक जीवन की अनेक सुविधाएँ हैं, शिक्षा संस्थाओं का जाल है और हमारे पास है सुस्थापित, सपरीक्षित तथा विश्वमान्य सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का गौरव। लेकिन इन सबके बावजूद हर दिल में असन्तोष है, अविश्वास है, असुरक्षा की भावना है और है कहीं कुछ खो देने की आत्मग्लानि। इन सबसे ऊपर है चारो ओर छा गयी निराशा की भावना।

इससे यह सोचने के लिए विवश होना पड़ता है कि कहीं मूल में भूल हुई है। हमने विकास का जो मॉडल चुना, प्रगति के लिए जो मार्ग निर्धारित किया, उसमें कहीं न कहीं चूक गये। यही कारण है भौतिक प्रगति की चकाचौंध के पीछे विध्वंसकारी प्रवृत्ति लगातार फैलती जा रही है। हिंसा, अराजकता और अलगाववाद अब केवल पंजाब व कश्मीर तक ही सीमित नहीं रह गये हैं। असम, उड़ीसा, तमिलनाडु तथा पूर्वोत्तर भारत के छोटे-छोटे राज्यों में भी यह महामारी छूत की तरह फैल गयी है। इसे कलियुग का प्रभाव, विश्व में अराजकता का दौर या विकास की अनिवार्य कीमत कह कर नहीं टाला जा सकता। प्रगति के हमारे मूल ढाँचे में ही कहीं न कहीं कोई

कमी अवश्य है। अन्यथा हमारी प्रगति इतनी मँहगी नहीं साबित होती और परिणाम कुछ और ही होते।

वास्तव में आधारभूत गलती तो प्राथमिकताएँ चुनने में ही कर दी गयी। आधुनिक भारत का महल खड़ा करने के लिए जो नक्शा तैयार किया गया, उसमें जमीन ही भारत की नहीं थी। अल्पकालिक या दीर्घकालिक योजनाएँ बनाते समय भारतीय परिवेश, सामाजिक-आर्थिक ढाँचा तथा उपलब्ध संसाधनों का विचार ही नहीं किया गया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गांवों पर ध्यान देने तथा लघु व कुटीर उद्योगों पर जोर दिया था। लेकिन यूरोप की तर्ज पर औद्योगीकरण की अंधी दौड़ में हम अपनी जमीन को ही भूल गये। रक्षा सामग्री, रेल, विमान, जलयान बनाने के लिए तो बड़े उद्योग आवश्यक भी थे और उपयुक्त भी। लेकिन जूते-चप्पल, साबुन-तेल व मंजन जैसी वस्तुएँ भी बड़े उद्योगपति बनाने लगे। इससे छोटे कारीगर बेरोजगार हो गये और रोटी के लिए तरसने लगे। दूसरी ओर रक्षा सामग्री तथा बड़े उद्योगों में बनने वाली अनेक वस्तुओं के आयात पर हम भारी धनराशि खर्च करे लगे और करते जा रहे हैं।

बड़े उद्योगों में बड़ी पूँजी लगानी पड़ती है। देश में पूंजी की काफी कमी है। इसीलिए अपनी अर्थनीति ऐसी बनानी पड़ रही है जिससे विदेशी पूंजी अधिक से अधिक आकर्षित की जा सके। इससे देश के अपने औद्योगिक ढाँचे या आम आदमी की अर्थ व्यवस्था पर कितना ही प्रतिकूल प्रभाव क्यों न पड़े। लेकिन आज हमारे लिए यह मजबूरी हो गयी है।

देश की सीमित पूँजी से सीमित संख्या में बड़े उद्योग ही

लगाये जा सकते हैं। इस सीमित संसाधन का बहुत सोच-समझकर उपयोग किया जाना चाहिए था। छोटी पूँजी वाले लघु उद्योगों में हर वस्तु का उत्पादन सम्भव नहीं है। हवाई जहाज, टैंक, तोप, जलयान, रेल डिब्बे, बसें, ट्रकें आदि का निर्माण तो बड़े उद्योगों में ही सम्भव है। लेकिन चाकू भी बड़े उद्योगों में बने तो इसे पूँजी का दुरुपयोग ही कहना पड़ेगा। यदि बड़े उद्योगों के लिए यह निर्धारित कर दिया जाता कि ये गिनी चुनी वस्तुएँ ही उनमें बन सकती हैं, तो प्रत्येक पूँजीपति केवल उन्हीं का उत्पादन करता।

इस परिसीमन का दो तरफा लाभ है। एक तो जहाँ भी बड़ी उपलब्धि है, उसका पूर्ण सदुपयोग होगा, जिससे बड़े उत्पादों के मामले में देश आत्म-निर्भर बनेगा और आयात पर भारी धनराशि नहीं खर्च करनी पड़ेगी। दूसरी ओर छोटी-छोटी वस्तुओं का उत्पादन लघु और कुटीर उद्योगों में प्रचुर मात्रा में होने लगेगा। इससे अधिक से अधिक लोग उत्पादन से जुड़ेंगे और बेरोजगारी समाप्त हो जायेगी।

आज देश में लगभग चार करोड़ बेरोजगार हैं, जो भारत के राज्यों की औसत जनसंख्या तथा विश्व के देशों की औसत जनसंख्या से भी कहीं अधिक हैं। यह बेरोजगार सेना केवल एक वर्ष में ही उत्पादक रोजगार में लग सकती है। इसके लिए इतना ही करना होगा कि बड़े उद्योगों को छोटी वस्तुओं के उत्पादन से अलग कर दिया जाए। यदि बड़े उद्योगों की विशाल पूँजी और विज्ञापन तंत्र से प्रतिस्पर्धा न करनी पड़े तो घर-घर में कुटीर-उद्योग फल-फूल सकते हैं। इसमें कोई समस्या आड़े नहीं आएगी।

राष्ट्रीयकरण अर्थात् सरकारीकरण से वर्तमान सरकार भी तंग

आ गयी है और स्वयं ही निजीकरण की ओर बढ़ रही है।

औद्योगीकरण की गलत दिशा की तरह ही हमारी अर्थनीति और कर ढाँचा भी गलत दिशा की ओर मुड़ गया है। इसका परिणाम है विराट काला धन। एक अनुमान के अनुसार देश की कुल पूँजी का आधा तो काला धन ही है। वित्त मंत्रालय के अनुमान के अनुसार इस समय देश में आठ से दस अरब रुपये का काला धन है। विदेशी बैंकों में जो काला धन जमा है, वह इसके अतिरिक्त है। काले धन के बारे में पहला अधिकृत अनुमान 1961-62 में लगाया गया था। सरकार द्वारा नियुक्त वांचू समिति के अनुसार उस समय देश में सात अरब रुपये का काला धन प्रचलन में था।

काला धन उत्पन्न होने के तरीकों में मकान व दुकानों की पगड़ी, तस्करी, रिश्वत, विदेशी व्यापार में हेराफेरी आदि है। लेकिन ये आर्थिक अपराध उतने जिम्मेदार नहीं हैं, जितना जिम्मेदार है अकेले कर चोरी। विभिन्न करों की दरें और सम्बन्धित प्रक्रिया इतनी जटिल तथा परेशान कर देने वाली है कि कर चोरी करना ही अधिक आसान लगता है। आयकर अपने आपमें एक समस्या है। मध्यम वर्ग का व्यक्ति भी इस झंझट से बचना चाहता है और कर चोरी करने पर मजबूर है। सकल राष्ट्रीय आय में आयकर का योगदान अधिकतम पाँच प्रतिशत होता है। इसका भी अधिकांश भाग इसे वसूल करने की प्रक्रिया पर ही खर्च हो जाता है। यदि आयकर समाप्त कर दिया जाये तो काले धन की समस्या काफी कुछ हल हो सकती है।

काला धन रोकने के अब तक अपनाये गये सभी तरीके असफल सिद्ध हुए हैं। आयकर छापे, विमुद्रीकरण तथा स्वैच्छिक

घोषणा को अब तक आजमाया गया है। एक हजार रुपये के नोटों का प्रचलन बन्द करने से 29 करोड़ रुपये के नोटों का ही प्रचलन बन्द हो सका। इसके अलावा 1951, 1956, 1965, 1975 व 1985 में स्वैच्छिक घोषणा की योजनायें पेश की गयीं। लेकिन कोई विशेष सफलता नहीं मिल पायी।

इसी तरह की स्वैच्छिक घोषणा अभी वर्तमान वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने पेश की है। नयी योजना में निर्धारित तिथि तक कितनी भी धनराशि राष्ट्रीय आवास बैंक में जमा करायी जा सकती है। धन के बारे में कोई पूछताछ नहीं होगी। लेकिन चालीस प्रतिशत तो बैंक में ही जमा रह जाएगा और शेष 60 प्रतिशत पर भी आयकर देना पड़ेगा। इस तरह कई मामलों में तो केवल तीस से चालीस प्रतिशत धन ही वापस मिल पायेगा। अतः यह योजना भी अव्यवहारिक होने से सफल नहीं होने वाली। यदि बिना किसी कर कटौती के साठ प्रतिशत धन वापस मिलता है तो भी शायद कुछ सफलता की आशा की जा सकती थी। लेकिन इस योजना से भी काले धन के समुद्र से कुछ घड़े पानी कम होने की ही आशा की जानी चाहिए।

यदि बड़े उद्योगों को गरीब की जेब साफ कर मुनाफा कमाने से रोका जा सके और काले धन पर अंकुश लगा दिया जाये तो हमारी अर्थव्यवस्था पटरी पर आ सकती है और विदेशी कर्ज के जाल से बचा जा सकता है। आज भारत के हर नागरिक पर डेढ़ हजार रुपये का विदेशी कर्ज है जबकि औसत प्रति व्यक्ति वार्षिक आय लगभग तीन सौ रुपये ही है।

हमारा सारा ध्यान नगरों में सारी सुविधाएँ जुटने में लगा रहा

और गाँव उजड़ते गये। बड़े उद्योगों ने गाँव के कारीगरों का रोजगार छीन लिया और वे नगरों की गन्दी बस्तियों में रहकर मजदूरी करने के लिए विवश हुए। गाँव में जीवन की मूलभूत सुविधाएँ न होने से भी शहरों की ओर पलायन हुआ। नगरों की चमक बढ़ती गयी और गाँवों से वे सदियों आगे निकल गये। बापू का सपना था कि विकास की इकाई गाँव बनेंगे। लेकिन हुआ इसका विपरीत।

यदि सही दिशा में नियोजन किया जाता तो गाँवों में भी आवागमन के साधन, शिक्षा व चिकित्सा की मौलिक सुविधाएँ जुटाई जा सकती थीं। स्थानीय स्वशासन, ग्राम पंचायत से न्याय तथा ग्रामीण शिल्प को अवसर देकर स्थानीय रोजगार सम्भव था। इससे इतना फर्क अवश्य पड़ता है कि महानगरों की सड़कों के डिवाइडरों तथा चौराहों पर लटकते हुए गमलों और भव्य फौव्वारे नहीं लग पाते। आँखों को चकाचौंध कर देने वाली चमक नहीं होती। लेकिन तब गाँवों से शहरों की ओर पलायन भी नहीं होता, शहरों पर जनसंख्या का इतना दबाव भी नहीं होता। यदि गाँव में पढ़ने और बढ़ने का मौका मिल जाता तो हम अपना घर और खेत-खलिहान छोड़कर शहर में किराये की छत तलाशने नहीं आते।

देश के बड़े महानगरों की बात छोड़िए, उत्तर प्रदेश के शहरों में भी लोग घर से दस-बारह किलोमीटर दूर पढ़ने और जीविका के लिए काम करने जाते हैं। यदि शिक्षा और रोजगार बड़े शहरों में केन्द्रित न किये जाते तो गाँवों में भी इतनी दूरी पर कालेज और लघु उद्योग हो सकते थे। तब लोग अपना गाँव और चौपाल नहीं छोड़ते। यदि गाँव के लोगों को गंवई और गंवार का नाम न मिलता और भारत के सम्मानित 'ग्रामीण' कहलाने का अधिकार पा जाते तो

शहरी बनने के लिए अंधेरी गन्दी गलियों में भटकने के लिए भाग कर नगरों में नहीं आते।

अर्थव्यवस्था की ही तरह शिक्षा प्रणाली भी पूरी तरह से प्रतिगामी साबित हुई है। महानगरों में शिक्षा संस्थानों का जाल बिछ गया है लेकिन गांवों में शिक्षा के प्रति चेतना तक नहीं है। शिक्षा तो बहुत बड़ी बात है, अभी तो हम साक्षर भी नहीं हो पाये हैं। तमाम प्रयासों के बावजूद आधे से अधिक जनसंख्या अशिक्षित है। स्नातक या उच्च शिक्षित लोगों का प्रतिशत तो दहाई का अंक भी पार नहीं कर पाता। लेकिन हम उन्हें भी जीविका का साधन नहीं दे पा रहे हैं। इस देश में तो डाक्टर व इंजीनियर भी बेरोजगारों में शामिल होते हैं।

शिक्षा प्रणाली की खामी का दूसरा भयावह पहलू यह है कि उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों में भी नागरिकता, मानवता व राष्ट्रीयता का वह बोध नहीं है जिसकी आवश्यकता है। वास्तव में हमारी शिक्षा प्रणाली अच्छा नागरिक तैयार करने में पूरी तरह से असफल साबित हुई है। नगरों में शिक्षा एक व्यापार बनकर रह गयी है और गाँवों में एक बेकार का अनुपयोगी बोझ। शिक्षा के प्रति न शिक्षक गंभीर है, न अभिभावक और न छात्र। क्योंकि किसी को भी इस शिक्षा में कोई उपयोगिता नजर नहीं आती। शिक्षक के लिए यह आजीविका का साधन है और छात्र व अभिभावक के लिए डिग्री और रोजगार का माध्यम।

शिक्षित वर्ग संस्कारवान नागरिक होने के स्थान पर अपनी जमीन से कटता जा रहा है। विदेशी भाषा, विदेशी जीवन शैली के साथ ही विदेशी वस्तुओं को अनिवार्य मानता है। गलत शिक्षा नीति का ही नतीजा है कि विश्व के प्राचीनतम राष्ट्र और सबसे बड़े

लोकतंत्र भारत के पास अपनी कोई भाषा तक नहीं है। अंग्रेजी हमारी पहचान बन गयी है। वही हमारे राजकाज की भाषा है और आपस में मिलने का माध्यम भी। कभी ईरान से वियतनाम तक संस्कृत भाषा से काम चल जाता था और आज दो पड़ोसी राज्यों के लोगों के बीच सम्पर्क भाषा अंग्रेजी की जरूरत पड़ती है। हिन्दी फिल्में तो पूरे देश में समझी जा सकती है, मुशायरे में तो आन्ध्र व कश्मीर का व्यक्ति एक साथ आनन्द ले सकता है, जन्म, विवाह व मृतक संस्कार तो एक ही भाषा संस्कृत में पूरे देश में हो सकते हैं, लेकिन देश के दो नागरिक जब मिलेंगे तो अंग्रेजी के बिना बात नहीं हो सकती। इस राष्ट्र की संसद और विधायिकाएँ अंग्रेजी के बिना नहीं चल सकतीं।

यह दयनीय स्थिति वर्तमान शिक्षा प्रणाली की ही देन है। शिक्षा व प्रशिक्षण का माध्यम अंग्रेजी है। रोजगार का माध्यम अंग्रेजी है। दूरदर्शन का ब्रेक फास्ट ही आधा से ज्यादा अंग्रेजी है। इससे ऐसा लगता है कि श्रेष्ठ लोगों की भाषा अंग्रेजी है।

अंग्रेजी को सम्भ्रान्त वर्ग की भाषा बना देने और संस्कारों से शिक्षा के दूर हो जाने से शिक्षा का सारा ढांचा ही घातक बनकर रह गया है। शिक्षित व्यक्ति काला अंग्रेज ही होता है जो एक बार यूरोप की तीर्थयात्रा के लिए सपना संजोता है और वहाँ की नागरिकता पा जाने को परम सौभाग्य। अंग्रेजी के भरोसे शिक्षित कहलाने वाले मैकाले के मानस पुत्र भारतीय नागरिक रह ही नहीं जाते। शिक्षा का इतना प्रसार पूरी तरह राष्ट्र व समाज विरोधी ही साबित हुआ है। भ्रष्टाचार मूलतः इसकी ही देन है।

प्राथमिकताएँ व दिशा गलत होने के कारण सारी प्रगति बेमानी होकर रह गयी है। बांध बने, सड़कें बनीं, रेल-पटरियाँ बिछीं,

उद्योग लगे, जिनमें सब कुछ बना, लेकिन हम भारतीय नागरिक ही तैयार नहीं कर सके। परिणामस्वरूप राष्ट्र खोखला होता गया। भुगतान सन्तुलन बिगड़ता गया, विदेशी मुद्रा का भण्डार कम होता गया और भारत विश्व में सबसे बड़ा भिखारी बन गया। हम कर्ज का ब्याज अदा करने के लिए भी कर्ज मांगते हैं, सभ्य कहलाने के लिए पश्चिम से जीवन शैली मांगते हैं।

30. प्राचीन इमारतों की रक्षा की जाये

प्राचीन इमारतों की सुरक्षा हर कीमत पर की जानी चाहिए क्योंकि यह हमारी संस्कृति और अस्मिता की पहचान हैं। ये हमारी प्राचीन स्थापत्य कला का नमूना है जिसको नष्ट करने की इजाजत किसी को नहीं दी जा सकती। धर्म व्यक्ति को संस्कार सिखाते हैं। कोई भी धर्म अपनी संस्कृति को नष्ट करने की अनुमति नहीं देता। किसी भी समस्या का समाधान स्थायी रूप से तभी संभव है जब हम विकास की सीधी और धीमी गति से सभी को साथ लेकर चलें।

विवादित स्थलों को पुरातत्व विभाग को सौंप कर उसकी सुरक्षा की जानी चाहिए। विकासवाद, विकास की एक क्रमिक प्रक्रिया है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसके स्थान से चरणों के आधार पर बढ़ने के अवसर दिये जायेंगे। विकासवाद इस तथ्य का खण्डन करता है कि किसी भी दशा में समाज को धार्मिक, आर्थिक या किसी अन्य आधार पर समानता पर लाया जा सकता है। उन्होंने कहा कि धार्मिक भिन्नताएँ समाज को आहत नहीं करतीं अपितु धार्मिक संकीर्णताएँ समाज को कमजोर बनाती हैं। वेद, गीता, कुरान बाइबिल सभी धर्म

एक हैं केवल उनके रास्ते अलग हैं।

31. रविवार को कोसें या कोसें सात बजने को

उस दिन मैंने जनता दल की खुली सरकार को जितना कोसा उतना कभी इंदिरा सरकार की क्रूर इमरजेंसी को भी नहीं कोसा था। जमाने की कोशिशों और पता नहीं किनके पुण्य प्रताप से एक अदद महबूबा इस रेगिस्तानी चौखटे के साथ आउटिंग पर जाने को तैयार हो गयी थीं, लेकिन घर से निकलते ही अपनी खटारा दुपहिया का इंजन किस्मत के दरवाजे की तरह बन्द हो गया। गरीब के आटे की तरह पेट्रोल खत्म हो गया था और उस दिन कुछ और नहीं सिर्फ रविवार था।

नयी सरकार के नये फरमान के तहत अब पेट्रोल कहीं-कहीं ब्लैक में ही मिल सकता था और वह भी जुगाड़ से। और न अपने पास ब्लैक में खरीदने के लिए 'ब्लैकमनी' थी और न ही कोई जुगाड़, अगर होता ही तो क्या इस तरह कलम घिसते, कोई अच्छा काम कर रहे होते। खैर एक अर्से के बाद खुद किस्मती की तरह साथ आयी महबूबा मेरे देखते-देखते एक रिक्शे पर बैठकर मुस्कराती हुई चली गयी और मैं बदकिस्मती के बोझ की तरह अपनी दुपहिया को घसीटता हुआ लौट कर बुद्धू घर को ....।

और उस दिन तो रविवार भी नहीं तथा, खासा शनिवार था। कुरुक्षेत्र के मैदान में सूर्यास्त की तरह सात बजने में कुछ मिनट शेष थे। मैंने उसे फिर एक रिक्शे पर तेजी से जाते हुए देखा। एक्सीलेटर बढ़ाया और ऐसे बढ़े जैसे महारथी कर्ण अपने परम लक्ष्य अर्जुन की

ओर अपना दिग्विजयी रथ बढ़ा रहा हो, लेकिन जैसे धर्म क्षेत्र, कुरुक्षेत्र में कर्ण के रथ का पहिया फंस गया था और रथ आगे नहीं बढ़ सका था, उसी तरह फिर पेट्रोल खत्म हो गया और ....।

पेट्रोल पम्प पास ही था, लेकिन वहाँ खासी भीड़ भी थी। धीरे -धीरे अपना नम्बर भी आ गया, परन्तु पेट्रोल देवता ने मीटर डाउन तो किया, लेकिन फिर पाइप वापस रख दिया। मेरी खिसियाहट भरी झुंझलाहट पर वह अर्जुन के सारथी की तरह मुस्कराते हुए बोला, हे अभागे, यह व्यापार क्षेत्र भी धर्मक्षेत्र है। मुझे ज्ञात है कि यदि मैं चाहता तो भी पेट्रोल आपके द्विचक्र वाहन की टंकी तक सूर्यास्त अर्थात् सात बजने से पूर्व नहीं पहुँच सकता था। अतः धर्म व्यापार की यही मांग थी। यदि मैं इस नियम का उल्लंघन करता तो पुलिस प्रभु को रिश्वत देने का कलंक सहन करना पड़ता। ऐसा लगा मानो कोई शकुनि कह रहा हो कि आज तो घड़ी की सुइयों ने बचा लिया। सात बज जाने के कारण बच गये। अब कल और उसके बाद फिर पता नहीं कब क्या हो.....।

32. हाथ नीले करने की समस्या

जिस तरह कैंसर जैसे नये शक्तिशाली रोगों के आ जाने से अब यक्ष्मा (टी. बी.) राज रोग नहीं रहा, उसी तरह इस बीसवीं सदी के अन्त में बच्चों के प्रवेश की मुसीबत के आगे दहेज कोई समस्या नहीं रही। हो सकता है कि जवान बेटी के हाथ बिना दहेज के पीले हो जायें, बेरोजगार बेटे को बिना सिफारिश नौकरी मिल जाये और महानगर में खोजबीन कर सिर छिपाने की एक छत भी नसीब हो

जाये, लेकिन एक बच्चे को किसी कान्वेन्ट में भर्ती करा लीजिए तो जाने कि आप कितने बड़े शूरमा हैं।

अभी पिछले दिनों चार बुजुर्ग अपनी जवान बेटियों के विवाह को लेकर परेशान थे और मुई दहेज की प्रथा को कोसे जा रहे थे। हमने कहा कि हे बुजुर्गवार, जमाना आगे बढ़ गया है और आप अभी तक पुराने जमाने की समस्या पर बहस किये जा रहे हैं। समय के साथ चलिए और माडर्न समस्याओं पर बहस कीजिए।

उन्होंने हमें फाड़कर खा-जाने वाली नजरों से घूरकर देखा और बोले हे माडर्न अवतार पुरुष अब तुम्हीं बताओ कि अपनी चार-चार बेटियों का विवाह करने के लिए मुँहमांगा दहेज कहाँ से लाऊँ और इन मुसीबतों से कैसे छुटकारा पाऊँ। और बरखुरदार, प्रगतिशील माडर्नावतार, समाज सुधार के पुरोधा और दहेज की महाभारत के योद्धा, क्या तुम खुद बिना दहेज एक बेटी स्वीकार कर सकोगे। मैंने धीरे से कहा ज्यादा मारेगी तो नहीं? वे जोर से बिलबिलाये और बोले वह तो नारी का जन्मसिद्ध अधिकार है, बेलन उसका रजिस्टर्ड हथियार है, उस पर रोक लगाने वाले आप कहाँ से आये?

मैंने कहा, खैर छोड़िये कोई बात नहीं। यह कानून-व्यवस्था का मामला है, पुलिस देखेगी। मैं आपसे दहेज के नाम पर कुछ नहीं मांगूगा। सिर्फ एक बांड भरना होगा। आपको अपनी लड़की की पहली सन्तान का दाखिला किसी कान्वेन्ट में कराना होगा।

इतना सुनते ही वे बगलें झांकने लगे, सूखे पत्ते की तरह कांपने लगे। बोले दहेज का प्रबन्ध तो किसी तरह से एक बार कर भी सकता हूँ। जमीन जायदाद गिरवी रख सकता हूँ, लेकिन यह जिम्मेदारी अपने सर नहीं ले सकता। बाप की जिम्मेदारी बेटी की

परवरिश और शादी तक है। उसके बाद बच्चे पैदा करने से लेकर एडमिशन कराने तक की समस्या आपकी अपनी है। इसमें कोई मदद नहीं देंगे। अगर इतनी हिम्मत नहीं है तो सिर्फ आपको परिवार नियोजन की ही सलाह देंगे।

हमने कहा फिर हम बिना दहेज मुफ्त में आपकी मुसीबत अपने गले क्यों मढ़ेंगे? वैसे दूसरे उपाय भी हैं, यदि आपको पसन्द आयें। बिना दहेज शादी के तो कुछ तरीके हैं जैसे प्रेम विवाह और जबर्दस्ती के विवाह अपनायें। अपनी बेटियों को फिल्मी अभिनय सिखायें। 'मैंने प्यार किया' का रिहर्सल उससे करायें। मोहब्बत के जाल में कोई मोटी मछली भी फंस सकती है और आपकी मुसीबत आपके गले से उतर सकती है।

इतने झंझट में न पड़ना चाहे तो और भी उपाय है किसी योग्य घर-वर को देखकर थोड़ी-सी मुलाकात बढ़ाइये, खानदान के बारे में जानकारी और परिचय भी जुटाइये। उसके बाद बहुत आसान है। अदालत में दावा कर दीजिए कि आपकी बेटी चामुण्डा का विवाह सुकोमल किशोर से दो वर्ष पहले ही हो चुका है। डेढ़ वर्ष तक साथ रखने के बाद आपकी बेटी को उसने छोड़ दिया है। अदालत उजड़ा हुआ घर बसाये और मासूम चामुण्डा की जिन्दगी तबाह होने से बचाये। मजबूती के लिए कहीं से छः माह का बच्चा झटक लायें और उसे अपनी बेटी चामुण्डा और सुकोमल किशोर की सन्तान बतायें। अदालत के साथ-साथ समाज को भी यकीन आ जायेगा और बेचारा सुकोमल बड़ी आसानी से चामुण्डा की गिरफ्त में आ जायेगा। बोलिए हमने बेटी के हाथ पीले करने के तो इतने उपाये बताये। क्या आपके पास भी मेरे भतीजे के हाथ नीले करने का कोई उपाय है?

33. मुशायरा बनाम दर्शक सम्मेलन

कवि सम्मेलन और मुशायरा अपने शहर के लिए कोई खास बात नहीं है। बरेली में खुद इतने बड़े-बड़े शायर और कवि पाये जाते हैं कि कवितायें झेलना शहर वालों की नियति बन गयी है। शहर आदी भी हो चुका है। लेकिन इस बार महापालिका का मुशायरा और कवि सम्मेलन अपने आप में यादगार बन गया।

यह मुशायरा केवल अच्छे शायरों और उम्दा कलामों के लिए ही याद नहीं किया जायेगा बल्कि अति उत्साही दर्शकों और उनके द्वारा दिये गये सम्मान के लिए भी याद किया जायेगा। शायरों से ज्यादा मनोरंजन उत्साही दर्शकों ने किया। वाह-वाह करने में लोग इतने ज्यादा उत्साही थे कि एक शायर को तो कहना पड़ा कि भाई, एक लाइन तो पूरी कर लेने दिया करो, तब दाद दो। लेकिन श्रोता नहीं मानते थे। इसे शायरों के लिए यादगार श्रोता बनाम दर्शक सम्मेलन कहा जा सकता है।

शायरों का उत्साह बढ़ाने के लिए केवल वाह-वाह करना ही काफी नहीं समझा गया। लोगों ने फूल बरसाये और फूलों के हार भी पहनाये। जब एक शायर को अति उत्साही श्रोता ने हार पहना दिया तो कुछ लोगों को मामला बड़ा अजीबो गरीब और गम्भीर लगा। जब वयोवृद्ध वरिष्ठ शायर ने अपनी महबूबा के लिए बहुत कुछ पढ़ा तो उनके बाद के शायर ने कहा कि पार उतर जायेंगे यह बात खयाली है। जिस नाव पे बैठे हैं वह डूबने वाली है। तमाम श्रोताओं ने इसका सन्दर्भ उम्र से जोड़ लिया।

इसी तरह एक बार मंच पर वरिष्ठ कवि ने इश्क की कविता पढ़ते हुए एक शायरा की ओर संकेत करते हुए कहा कि मैं उनके लिए नहीं उनकी मां के लिए लिखता रहा हूँ तो श्रोताओं का तो मनोरंजन हुआ, लेकिन शायरा को नागवार ही गुजरा।

कवि सम्मेलन में हास्य कवि अपने आप में एक अलग विद्या होती है। लेकिन हास्य के नाम पर चुटकले बाजी और भद्दे मजाक भले कुछ लोगों को अच्छे लगते हों लेकिन तमाम लोगों को यह बर्दाश्त नहीं होते। एक कवि ने अब तक की सबसे अच्छी कविता का दावा करते हुए सुनाया -

तेरे इश्क में सितमगर सब कुछ लुटा दिया है,
एक भैंस बच गयी थी, वो आज बेच दी है।।

ऐसे कवियों का तमाशा कवि सम्मेलन के बाद भी जारी रहा। नशे में चूर एक बड़े कवि भुन्नाये हुए मिल गये। बोले लिख देना कि मेरे जीते महाकवि बिना पैसे लिये चले। मुझे पारिश्रमिक नहीं दिया गया। नशे में चूर महाकवि की बात वाकई बड़ी गम्भीर थी। बाद में पता चला कि कविवर अपने साथ एक पिछलग्गू कवि ले आये थे। लेकिन उन्हें भी भुगतान किया गया या भुगता गया। लेकिन महाकवि खुद अपने लिए तयशुदा रकम से दो सौ रुपये ज्यादा मांग रहे थे और आयोजक इसके लिए तैयार नहीं थे।

34. गरमी आयी पानी गया

गरमी आ गयी है, पानी चला गया है। यहाँ तक कि अधिकारियों की आंखों में भी नहीं रहा। लेकिन उनके लिए चिन्ता का

विषय नहीं है। क्योंकि उनके खास उपयोग के लिए चुल्लू भर भले ही न मिले लेकिन लान की सिंचाई और बंगले की तरावट के लिए खूब मिलता है।

यदि पुराने शहर में पानी दवा के लिए भी न मिले तो भी परेशान होने की कोई बात नहीं है। अभी भी शहर में पानी दुर्लभ नहीं हुआ है। आप चाहें सिविल लाइन्स आफीसर्स हाउस और व पुराने रईसों की संभ्रान्त बस्तियों में जाकर 'पानी' देख सकते हैं। अभी भी शहर में ऐसे कुछ क्षेत्र है और वहाँ नलों में गर्मी में भी पानी आता है।

हमारे यहाँ माना जाता है कि पुराने शहर में पानी की जरूरत नहीं होती। पुराना शहर है, पुराने लोग हैं, महापालिका द्वारा मिलने वाली तमाम असुविधाओं के आदी हैं। उन्हें तो काफी पानी पिला चुके हैं महापालिका वाले। अब महापालिका ने उन दकियानूसी लोगों का, ठेका तो ले नहीं रखा है जो नहा-नहा कर पानी बरबाद करना ही अपना धर्म समझते हैं। हमारे एक पुराने मित्र ने बाकायदा एक संस्था बना ली है और न नहाने की संस्कृति का धुआंधार प्रचार कर रहे हैं। महापालिका को चाहिए कि उन्हें बरेली रत्न देकर सम्मानित करें। न नहाने के पक्षधर विद्वान् इस विषय पर भी शोध कर रहे हैं कि सबसे पहले यह गलत परम्परा किसने डाली।

एक मित्र की समस्या है कि वे गरमी शुरू होने के बाद से इसलिए नहीं नहा पाये क्योंकि घर में पानी नहीं आता। यहां यह बता देना भी जरूरी है कि उससे पहले इसलिए नहीं नहा पाये, क्योंकि जाड़ा बहुत पड़ रहा था। महापालिका से निवेदन है कि ऐसे लोगों पर तरस खाते हुए अगला जाड़ा शुरू होने से पहले और गरमी के रहते

हुए एक बार तो नहाने का अनुभव उन्हें करा ही दे। कहीं ऐसा न हो कि ऐसा कोई बदनसीब भाई लू के थपेड़ों से न सही, सरकारी अस्पताल की दवा खाकर ही चल बसे और यह अरमान दिल के दिल में ही न रह जाये, काश! एक बार तो नहाकर देख लेते कि कैसा लगता है।

नहाने पर एक मामला याद आया। न नहाने की संस्था के अध्यक्ष की शादी होनी थी। काफी कोशिशों के बाद तय हो पायी थी। हमारे साथ आप सब लोग भी उस वीर बाला को प्रणाम करें, जिसने पूरा जीवन उनके साथ बिताने का साहस जुटा लिया। खैर, दहेज की समस्या थी, मरता क्या न करता। लेकिन ठीक शादी के दिन मामला बिगड़ गया। रस्म के अनुसार दूल्हे को नहलाया जाना था। उन्होंने साफ इंकार कर दिया। बोले, सुना है, जब मैं पैदा हुआ था, तब भी नर्स ने नहला दिया था। मजबूर था कुछ कर नहीं सका। केवल अपनी बेबसी पर रोता रहा। अब ऐसा नहीं हो सकता। अब जीते जी मुझे कोई नहीं नहला सकता। लेकिन बुजुर्ग महिलायें अड़ गयीं। दूल्हे को बिना नहलाये बारात नहीं जा सकती। सो आज तक कुंआरे हैं।

पुराने शहर के लोगों को पानी नहीं मिल रहा है। सोकर उठते ही पानी नहीं होता। एक बार पता चला कि सो चुकने के बाद एक बार रात में पानी आया था। अब अगर किसी तरह रमजान के महीने में अफ़्तार सहरी की तरह गरमी के महीनों में नहाने व मुंह धोने के लिए पानी आने का समय भी अखबारों में छप जाये तो शायद कुछ लोग लाभ उठा सकें।

एक बार मैं पुराने शहर में एक मित्र के घर मिलने गया था। अचानक एक बच्चा चिल्लाता हुआ आया - आ गया, आ गया, आ

गया। मैं चौंका आखिर कौन आ गया। हाथ से कप नीचे गिरा और टूट गया। मित्र को बहुत बुरा लगा और नाराजगी भी जाहिर कर दी। जब गुस्सा कुछ कम हुआ तो उन्होंने बताया कि कप तो दूसरा खरीदा जा सकता है लेकिन चाय बनने में प्रयुक्त एक कप पानी जो आपने बर्बाद कर दिया, वह कहां से आयेगा। उस बच्चे ने इतना कहा जरूर कि आ गया, आ गया, पानी। लेकिन जरूरी नहीं कि पूरा एक कप पानी नल में आया ही हो।

35. रंगारंग वी. आई. पी. मेला सम्पन्न

गत सप्ताह शहर में नेताओं का जमघट रहा, वी.आई.पी. मेला लगा। ऐसा लगा कि बरेली भी वी. आई. पी. शहर है। भूतपूर्व मुख्यमंत्री से वर्तमान मुख्यमंत्री तक तमाम मंत्री, संत्री यहां आये और शहर का राजनीतिक प्रदूषण बढ़ा गये। उनके आने से शहर कितना गौरवान्वित हुआ, यह तो पता नहीं, लेकिन उनके विदा होते ही जिला व पुलिस प्रशासन ने ऐसे राहत की सांस ली जैसे बेटियों की संख्या से गरीब और काले धन से धनी बाप अपनी बेटियों की विदाई के बाद चैन की सांस लेता है। वी. आई. पी. का आना प्रशासन के लिए बेटी की बारात से कम तो नहीं होता। फर्क इतना है कि बेटी का बाप तो बारात बुलाने की जी तोड़ कोशिश करता है, लेकिन ये वी. आई. पी. काश, ऐसी मुशीबत रोज-रोज न आये।

वी. आई. पी. आने से शहर के तमाम लोगों को खास होने या खुद को खास दिखाने का मौका मिला। खास दलों के बीच तो अहमियत जताने की खुली प्रतियोगिता थी ही। एक दल के तमाम

लोग भी अपने बड़े नेता के सामने खुद को ज्यादा प्रभावशाली दिखाने में लगे रहे।

भूतपूर्व सत्ता दल के सक्रिय नेताओं ने अपने नेता को चप्पलों की माला से सुशोभित कर अपनी अहमियत जताने की कोशिश की। मुकाबला इस बीच था कि 'जिन्दाबाद' का स्वर तेज है या 'मुर्दाबाद' का नारा ज्यादा तेज गूंज रहा है। पार्टी में संगठनात्मक चुनाव कराना भले दल के आंतरिक लोकतंत्र की गरिमा के प्रतिकूल हो लेकिन, सत्ता से बाहर आने के बाद नेता का सार्वजनिक विरोध उनके भीड़तंत्र का हिस्सा जरूर है।

वर्तमान सत्ता दल के लोगों को अपने विरोधियों की कर्तव्यनिष्ठा पर पूरा भरोसा था और उन्होंने अपने नेता के विरोध का काम उन्हीं पर छोड़ दिया था। उन्होंने विरोध करने का सफल मोर्चा संभाला। पहली बार लगा कि सरकार अल्पमत की हो या बहुमत की, लेकिन सत्ता दल का रुतबा कुछ और ही होता है। काफी शक्तिशाली माने जाने वाले दो बड़े दल (एक कैडर के भरोसे दूसरे ....) मिलकर भी विरोध को कायदे से दर्ज भी नहीं करा सके।

लेकिन सबसे खास बात रही अपने को वी. आई. पी. साबित करने की तमाम लोगों की कोशिश काफी काबिल और चौराहे पर भी मजबूत माने जाने वाले विधायक पूरे दल-बल के साथ मौजूद थे, लेकिन प्रभावजमाऊ दौड़ में भी पीछे रह गये। पुलिस लाइन में हैलीकाप्टर उतरने से दुबारा उड़ जाने तक वह विधायक और उनके समर्थकों के नारे गूंजते रहे जो देखने में भोले-भाले ही लगते हैं।

जब आप इन पंक्तियों को पढ़कर बोर हो रहे होंगे तब तमाम चुने हुए प्रतिनिधि एक अपना प्रतिनिधि चुन रहे होंगे।

उम्मीदवारों को उम्मीद है उनको वोट मिलेंगे। कह तो सभी रहे हैं कि उनको जीतने लायक वोट मिलेंगे। लेकिन उनके समर्थकों की समस्या है कि वोट उस प्रत्याशी को मिल जाये, इतना ही काफी नहीं है। प्रत्याशी को और पार्टी हाईकमान को यह भी लगना चाहिए कि उम्मीदवार की सारी उम्मीदें उनके खेमे के वोटों पर ही टिकी है।

36. तेरी गलियों में न रखेंगे कदम, आज के बाद

आज बरेली क्लब मैदान में रोटरी क्लब बरेली वेस्ट का बसंत मेला शुरू हो गया और बसन्त ऋतु समाप्त हो गयी। ऐसा इसलिए कि रोटरी क्लब का दशहरा मेला भी दशहरा समाप्त हो जाने के बाद शुरू होता है। वैसे तो रोटरी दीवाली मेला दीपावली पर्व शुरू होने से पहले समाप्त हो जाता है लेकिन हम ऐसा नहीं मान सकते कि बसंत मेला इसी तरह बसंत शुरू होने से पूर्व हो रहा है क्योंकि रोटरी क्लब में समाज का उच्च सम्भ्रान्त वर्ग ही होता है।

लाखों रुपये खर्च कर सजाया गया भव्य मेला मैदान जगमगा रहा है। आई.जी. से सिपाही जी तक पधारे हैं, रौनक बढ़ा रहे हैं। परिवार नियोजन से लेकर गर्भपात और वृक्षारोपण तक जन जागरण के सजे हुए स्टाल लगे हैं। नशे के दुष्परिणामों के प्रति सचेत करने के लिए नाटक भी खेला जा रहा है। ऐसा नाटक खेल रहे लोगों का कहना था कि संवाद साथ के पात्रों के भी समझ में नहीं आ रहे हैं। बार-बार माइक उठाकर पात्रों के मुंह के पास लगाने का प्रयास होता है, कभी कभी कुछ शब्द सुनाई भी पड़ जाते हैं।

पता चला इस नाटक मण्डली को तीनों दिन मेले में अलग-

अलग नाटक खेलना था। लेकिन ऐसा तो बाकायदा 'स्टेज' पर होना था। ऐन मौके पर आयोजकों ने समझाया कि खुले मैदान में नाटक होने से उसका 'संदेश' अधिक लोगों तक पहुँचेगा। साथ आए लोगों तक भी नहीं पहुँच सका, यह अलग बात है।

अंत में नाटक के निर्देशक ने मेला आयोजक से बात की तो जवाब मिला कि कोई स्टेज विस्टेज नहीं मिलेगा। अंत में नाटक मण्डली के सरपरस्त मुखिया ने फैसला सुनाया कि कल से कोई 'नाटक' नहीं होगा। नाटक के मंचन की व्यवस्था के नाम पर आयोजकों ने जो नाटक किया कलाकारों को प्रेरणा देने के लिए वही बहुत है। कुल मिलाकर कुछ यूँ कहा कि 'तेरी गलियों में न रखेंगे कदम, आज के बाद .....'।

मेले में बस उसी की कमी सबसे ज्यादा अखरी, जिसके लिए मेला होता है। बसंत मेले में जो लोग खास 'फूलों' की बहार देखने गये थे, उन्हें बड़ी निराशा हुई। न भीड़ थी और न आंखें सेंकने या दिल बहलाने का माहौल। जो लोग आते भी, वे टिकट के लिए खर्च हुए रुपयों को कोसते और या तो मेले से बाहर चले जाते या फिर संगीत का खुला मुकाबला देखने की कोशिश करते। खुला पाण्डाल, खुले दरवाजे और खुला मुकाबला।

मेले में आइसक्रीम थी, डोसे थे, चाट थी और तमाम कुछ तामझाम। लेकिन किसके साथ आइसक्रीम खाकर दिल ठण्डा करें, कौन-सा कोल्ड ड्रिंक दिल की आग ठण्डी कर सकेगा? आखिर इस मेले का उद्देश्य आयोजकों के लिए भले ही पैसा कमाना हो, लेकिन दिलजलों के लिए तो और ही कुछ होता है न।

37. बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले

पिछले सप्ताह विधान परिषद के लिए मतदान निपट गये। पिछले काफी दिनों से नेतागण चुनावों में व्यस्त थे। कुछ लोगों को चिन्ता थी कि ऐसा न हो कि चुनाव के बाद ये नेता बेरोजगार हो जायें। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

बरेली रामपुर स्थानीय निकाय सीट की मतगणना भी अपने ही शहर को झेलनी पड़ी। सत्ता दल के एक प्रत्याशी थे, जीत गये। सत्ता विहीन कई दलों के कई प्रत्याशी थे, हार गये। सत्ता की ही महत्ता है।

बाबा तुलसी दास ने भी कहा था कि 'सत्ता पाई काहि मद नाहीं' सो चुनाव जीतते ही तेज नशा चढ़ा और विजय मालाओं से लदे विजयी ने अपनी पार्टी के राष्ट्रीय सहयोगी दल की तुलना उस जानवर की पूंछ से कर दी जिसके बारे में कहा जाता है कि 12 वर्ष तक नली में रखने के बाद भी उसकी पूँछ सीधी नहीं हो सकती। लेकिन अनुशासन और स्वाभिमान वाले उस दल के लोगों को यह तुलना पसंद नहीं आयी। उस जानवर से अपनी तुलना वह एक मामले में तो कर सकते हैं कि वह जानवर विशेष अपने पालने वाले के प्रति जितना वफादार होता है। उतने ही वफादार वे खुद को अयोध्या के एक खास मंदिर के प्रति मानते हैं।

एक मंदिर मस्जिद में तब्दील कर दिया गया। वे चाहते हैं कि उसे फिर मंदिर बना दिया जाये और उससे बहुत अच्छा होता कि जिन लोगों को सामाजिक भेदभाव ने मंदिर में आरती करने वाले से बदलकर मस्जिद में नमाज पढ़ने वाला बना दिया। उन्हें भी फिर से

हिन्दू बना दिया जाये और पहले से बहुत बड़ा अर्थात् अगर वह पहले शूद्र था तो अब ब्राह्मण बना दें और यदि पहले वह गरीब था तो अब उसे कुबेर बना दें।

एक बड़े नेता को कांग्रेस से निकाला गया था। उनके समर्थन में कुछ लोगों ने पार्टी के एक बड़े नेता के बरेली आने पर उनका विरोध कर दिया। बेचारे पार्टी से निकाल दिये गये। अब बड़े नेता जी तो पार्टी में फिर से वापस आ ही जायेंगे। देर सवेर। बड़ों के आपसी मतभेद तो बनते मिटते रहते हैं। लेकिन इन बेचारों का क्या होगा। शायद मिर्जा गालिब को याद करते रह जायेंगे कि 'बड़े बे आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले।'

खैर, अच्छा यह हुआ कि जीते हुए सत्तादली नेता के तीखे बयान और उस पर हारे हुए सत्ता से वंचित नेताओं की भारी भरकम प्रतिक्रियाओं ने ऐसा माहौल बना दिया है जिसमें अभी काफी दिनों तक तमाम नेता कोई न कोई जोड़-तोड़ का उपाय खोजते हुए सक्रिय रहेंगे।

इससे तमाम दलों के बीच तमाम गुटों में एकता भी स्थापित हो रही है, नकली ही सही। इसके अलावा निजी सम्बन्धों और निहित स्वार्थों की नैतिकता के तहत दलीय सीमाओं से ऊपर उठकर अन्य दलों में घुसपैठ कर चुके अपने सगे सम्बन्धियों का भी साथ दिया जा रहा है।

उनका मानना है कि राष्ट्रीय सरकार तो केवल उनके सहारे पर ही टिकी है। लेकिन उधर से जवाब है कि बैसाखी बनना तो मजबूरी है, वरना समर्थन वापस लेकर देख लें।

38. हुक्म मिल जाये तो हम शहर को चौपट कर दें

आजादी से पहले हमारा नारा था कि स्वतन्त्रता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है आजादी के बाद सबका नारा हो गया कि हड़ताल हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। कुल मिलाकर हड़ताल हमारा राष्ट्रीय धर्म है और किसी न किसी बहाने हमें हड़ताल करते ही रहना चाहिए।

वकीलों की हड़ताल, डाक्टरों की हड़ताल, राज्य कर्मचारियों की हड़ताल, और कभी-कभी ही ऐसा होता है कि जरा चार दिन हड़तालियों की हड़ताल। आजकल निकायों में हड़ताल का दौर है। प्रदेश की तमाम महापालिकाओं व विकास प्राधिकरणों में हड़ताल है।

कानपुर, लखनऊ, बनारस गंदगी का साम्राज्य फैला रहे, तो बरेली ही पीछे क्यों रहे। विकास प्राधिकरण वालों ने तो इसकी शुरूआत कर भी दी है। इसे देखकर तो ऐसा लगता है, जरा कमजोर किस्म के हड़ताली है। ये लोग हड़ताली भी कानून व्यवस्था के तरीके से करना चाहते हैं। वैसे यह तरीका ठीक तो नहीं लगता। कहीं हड़ताल और व्यवस्था का भी कोई मेल है। लेकिन साहब, महापालिका है। हड़ताल होगी, जरूर होगी लेकिन होगी पूरे कानून कायदे के साथ।

तो इस प्रक्रिया के तहत एक सदस्यीय जांच दल बाकायदा लखनऊ-कानपुर के दौरे पर गया। लौटने में किसी कारण से या अकारण विलम्ब हो गया। हड़ताल करने के लिए व्याकुल हड़ताल महारथियों ने पुनः दूसरा दल भेजा। अब प्रतीक्षा है उसके लौटने की।

महारथी पूरे साजो सामान के साथ तैयार हैं, अपने शस्त्रों पर

धार रख रहे हैं। पता नहीं कब हड़ताल का बिगुल बज जाये। लेकिन स्टैण्डर्ड हड़ताल के लिए विधिवत् नोटिस देने का भी एक अदद कानून है। लेकिन यह सब तो बेकार की बात है, गये-बीते जमाने की चीज़ हो गयी है। अब आधुनिक हड़ताल माडर्न कानून है।

हड़ताल करने से पहले विशेषज्ञ इतना जरूर चाहते हैं कि हड़ताल के केन्द्रीय कर्णधारों का आदर्श मिल जाये। लक्ष्मण की तरह ताल ठोंकते ये वीर पुरोधा कह रहे हैं कि बस एक बार हड़ताल वीर राम की आज्ञा मिल भी जाये हम पूरे महानगर को पदाकर रख दें।

अपने शहर के एक प्रमुख हड़ताली ने कहा कि बस देखते रहिए, एक बार केन्द्रीय संगठन से आदेश भर मिल जाये, हम पूरे शहर को कूड़े का ढेर बनाकर रख देंगे। लोग बूँद-बूँद पानी को न तरस जायें तो हमारा नाम नहीं। चंद दिनों में लोग भूल जायेंगे कि कहां सड़क थी और कहां पार्क। चारो तरफ केवल गंदगी ही गंदगी दिखेगी। केवल कूड़े के ही ढेर यत्र-तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होंगे। बस, एक बार अनुशासन पावो। महानगर यह शहर बनावो।

शहर के हड़तालियों की अखबार से भी बहुत शिकायत है। हड़ताल सेना के तमाम सेनानायकों ने बताया कि बरेली के अखबारों ने भी अन्य शहरों की हड़तालों व उससे उत्पन्न हुई दुर्दशा की कोई जानकारी नहीं दी। एक बार आप छाप भर देवें कि कितनी गन्दी हड़ताल है, कानपुर, लखनऊ या बनारस में, हम उसी दिन पूरे शहर की ऐसी-तैसी कर के रख दें। लेकिन अखबार अखबार है, कोई हड़ताल वीरों का भीष्म पितामह तो नहीं, जो हड़ताल करा कर अपना पानी बन्द करा लें।

39. अब मुफ्त में मरना हुआ मुश्किल

हे बीमारियों, सच्चे योद्धा की तरह इस समय तुम नागरिकों पर आक्रमण मत करो। धर्मयुद्ध की यही मांग है, क्योंकि डाक्टर हड़ताल पर हैं। धर्मयुद्ध का नियम है कि किसी निहत्थे, निराश्रित और असहाय पर वार नहीं करते। अतः हे महारथी रोगों, हम धर्म की ओर आह्वान करते हैं कि डाक्टरों की प्रतिपक्ष। डाक्टरों के मोर्चे पर न होने की स्थिति में युद्ध करना तुम्हारे यश को बढ़ायेगा नहीं। तुम्हारे किसी हमले से यदि कोई रोगी मारा गया तो इतिहास तुम्हें क्षमा नहीं करेगा। इतिहास में तुम वैसे ही कलंकित होओगे जैसे अर्जुन की अनुपस्थिति में चक्रव्यूह की रचना करने वाले द्रोण और अकेले निहत्थे अभिमन्यु का वध करने वाले सात कौरव महारथी।

मैं समय हूँ। मैं देख रहा हूँ कि नागरिकों की प्रार्थना और आह्वान का कोई असर रोग महारथी पर नहीं पड़ रहा है। अब मैं जो कथा सुनाने जा रहा हूँ वह अस्पताल क्षेत्र की है। यह दृश्य तो उस समय का है जब डाक्टर हड़ताल पर नहीं थे। तब वे हाजिरी रजिस्टर पर हस्ताक्षर करते थे। जब भी कोई युवा सुपुत्र या सुपौत्र अपने पिताश्री या तातश्री पितामह के बीमे की लम्बी रकम हड़पना चाहता था अथवा उनके भारी बैंक बैलेंस या जायदाद पर हाथ साफ करना चाहता था तो उन्हें सरकारी अस्पताल ले जाता था।

एक नानाश्री की आयु बहुत अधिक हो गयी। ईश्वर ने जीवन में सारे दुःख दिये लेकिन गरीबी और पुत्र नहीं दिया। निरन्तर प्रार्थनाओं के बाद भी जब भीष्म पितामह की तरह उन्होंने इच्छामृत्यु का कवच नहीं छोड़ा और किसी भी तरह से मरना स्वीकार नहीं

किया तो नातियों ने भरपूर 'सेवा' शुरू कर दी। पूरी श्रद्धा व लगन के साथ हृदय से की गयी सेवा फलीभूत हुई और नानाश्री बीमार पड़े। लेकिन शरशैय्या की तरह रोग शैय्या पर पड़े हुए नानाश्री ने भी शीघ्र मरने से इंकार कर दिया।

इस समस्या से पाण्डवों की तरह त्रस्त उस महापुरुष के वंशजों ने वैद्यरूपी श्री कृष्ण का आह्वान किया और पूछा कि हे महाराज सहोदर वैद्यराज हमें नानाश्री की मृत्यु का कोई अचूक उपाय बताइए। क्योंकि बड़े ही धर्म संकट में हैं। वह देखिए नानाश्री को भूमि पर लिटाया जा चुका है तमाम मित्र परिचितों गांववालों को उनकी मृत्यु का संदेश भेजा जा चुका है। थोड़ी देर में सभी लोग रोते कलपते आ जायेंगे और पूछेंगे कि नानाश्री का शव कहां है तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा। अतः हे भोगीराज हे भोगेश्वर हमें इस समस्या से उबारिये अब आप के अलावा हमारा उद्धार और कौन कर सकता है।

वैद्य ने कहा हे महारथी तुम्हारी नानाश्री में अटूट श्रद्धा है। तुम्हारे पिताश्री भी अपने ससुरश्री को शीघ्र ही स्वर्गारोहण करते हुए देखने के इच्छुक हैं। तुम्हारी माताश्री भी अपने पिताश्री को शीघ्र ही इस भवसागर मृत्युलोक से छुटकारा दिलाना चाहती हैं। तुम सबकी भावना वन्दनीय है लेकिन हे मित्र हमें भगवान धन्वन्तरि की सौगन्ध है हम तो केवल रोगों को दूर कर मानव की काया को उसकी आत्मा के निवास योग्य बनाने का ही प्रयास करते हैं। मृत्युदान करना हमारे धर्म के विरुद्ध है हम तो अपने वचनों से बंधे हैं। अतः यदि तुम शीघ्र ही अपने पिताश्री व बान्धव सहित नानाश्री के शव को कंधा देने के लिए उत्सुक हो तो उन्हें सरकारी अस्पताल

ले जाओ तुम्हारी मनोकामना शीघ्र पूरी होगी।

उन दिनों सरकारी डाक्टर हड़ताल पर नहीं थे। अतः उनकी मनोकामना पूरी हो गयी। इस एपिसोड को देखने के बाद समस्त डाक्टरों ने इस स्तर से प्रार्थना की कि हे महारोगाधिराज, मुफ्त की नकली दवायें खाकर मरने के इच्छुक गरीबों पर तरस खाओ। जब तक हम हड़ताल पर हैं तब तक गरीबों पर हमला मत करो। अन्यथा ये लोग अपने पसीने की कमाई से असली दवायें खाकर रोगमुक्त हो जायेंगे फिर नकली दवाओं के बदले हमें देने के लिए मोटी फीस कहां से लायेंगे।

40. दिखावा ही सही कुछ तो भलाई आप ने कर दी

किसी ने कहा है कि बड़े आदमियों के रोग भी बड़े होते है, वह बड़ा आदमी, क्या जिसे छोटे रोग होते हों। हम जैसे छोटे लोगों को जुकाम-बुखार हुआ, उसी में कर्रा झेल गये और टायफाइड या निमोनिया हो गया तो चल बसे। न मर्ज रहा, न मरीज। लेकिन बड़े लोगों की बात और है। बडे-बड़े महारोग भी उनकी इज्जत करते हैं। उन्हें होता है तो ब्लड कैंसर, हार्ट अटैक वगैरह-वगैरह। आखिर रोगों का भी कोई स्टेटस है।

ऐसे ही बड़े लोगों का एक महारोग है समाज सेवा। यह रोग बड़े अधिकारियों नेताओं व धन्ना सेठों के परिवार की विवाहित महिलाओं को ज्यादा होता है। इस रोग का प्रमुख कारण उनके पतियों की व्यस्तता के कारण जन्मा अकेलापन है। समाज सेवा का बुखार जिसे तेजी से चढ़ता है उसे सोशल वर्कर कहा जाता है। इस

रोग के इलाज के लिए कुछ गरीब, लाचार और अनाथ लोगों की जरूरत होती है। ऐसे दीन-हीन फटेहाल लोगों को देखने मात्र से सोशल वर्कर के अन्दर जिजीविषा जगती है। और ज्वर की तरह बढ़ा हुआ अहं भाव संतुष्टि पाकर कुछ शान्त होता है।

सोशल वर्कर अपने साथ कैमरामैन भी उसी तरह रखता है जैसे डायबिटीज का गंभीर मरीज श्रैष्टों के बिस्कुट या डाइनल की टिकिया रखते हैं और ब्लड प्रेशर के रोगी, तमाम दवायें जेब में डाले बिना घर से बाहर नहीं निकलते हैं।

जब पता चलता है कि कहीं कोई अनाथालय या सुदामा के सगे-सम्बन्धियों की बस्ती है तो ये लोग वहां वैसे ही पहुंचते हैं जैसे भक्तों के बुलाने पर भगवान, सेठों के तिजोरी छिपाने पर डाकू, मतदाताओं के पास चुनाव के दौरान नेता लपकते हैं।

पिछले दिनों ऐसे ही एक महिला क्लब को पता चला कि बरेली महानगर के एक कोने में कहीं महिला अनाथालय भी है। अनाथालय में सबसे बड़ा गुण था कि वहां पर अनाथों की संख्या बहुत कम शायद कुल 16 थी और मौके पर केवल आठ-दस अनाथ बालिकायें ही थीं, तो इस सुअवसर का लाभ उठाते हुए क्लब की महिलाओं ने अनाथों के नाथ की भूमिका निभाने का मौका न चूकने का पक्का इरादा बना दिया।

कई दर्जन 'अन्नपूर्णा देवियां' मिलकर अनाथालय पहुंची। अनाथों को सनाथ करने के लिए, भले ही कुछ क्षणों के लिए ही सही उनके पास भरपूर सामग्री थी। सबको देने के लिए पूरा एक पैकेट था, जिसमें एक अदद अमरूद पालीथीन के अन्दर से झांक रहा था। उसमें और भी थोड़ा बहुत ऐसा ही कुछ था। साबुन, पेंसिल और कापी

भी थी। इस सारी सामग्री पर समाज सेवा का बुखार उतारने के लिए क्लब को कम से कम इतना जरूर खर्च करना पड़ा जितने में किसी महिला की एक चाय हो जाती। किस महादेवी को एक समय की चाय कुर्बान करनी पड़ी उसका नाम तो पता नही चल सका, लेकिन उस बलिदानी को शत-शत प्रणाम है बारम्बार नमस्कार है भले ही दूर से।

अनाथों को दिल डुबाकर और हाथ सिकोड़ कर दिये गये इस महादान समारोह के तमाम रंगीन फोटो खींचे गये। कुछ फोटो तो अखबारों में भी छपवाये गये, भले ही सफेद काला करके। तमाम कारें - जीपें दौड़ती रही, इन अप्सराओं को ढोने के लिए। इस भार को ढोने का वाहनों पर क्या असर पड़ा यह तो वाहनों का दिल, नहीं भाई, इंजन ही जानता होगा। लेकिन उनका खून, जो पेट्रोल की शक्ल में जल गया, उसका हिसाब जरूर लगाया जा सकता है। कारों व जीपों की आत्माओं की तरह उनके ड्राइवरों पर क्या गुजरी इसका अंदाजा भी लगाने की कोशिश कर सकते हैं।

वैसे इस सारे आयोजन में जो भी धनराशि व्यय हुई, वह सरकारी अनुदान न था। इसका दुख वैरागी को भी हुआ। यदि रकम बोफोर्स दलाली की होती या सरकारी खजाने से आयी हो तो और बात थी क्योंकि जनता का पैसा, तो पानी की तरह बहाने के लिए होता ही है, लेकिन जब धनी लोग के तिकड़म से गरीबो का खून चूसकर कमाया गया, पैसा इस तरह खर्च करते हैं, तो इस पर दर्द होना और उन बेचारी तितलियों पर तरस आना स्वाभाविक है। इस आयोजन पर हजारों रूपये पानी की तरह बह गये। खैर उसका भी कोई गम नहीं। लेकिन चन्द रुपये जो उनकी संगमरमरी कोठियों पर बदनुमा दाग की तरह बने हुए लाचार अनाथों को बांटने में खर्च

करने पड़े, उसका दर्द तो नहीं भुलाया जा सकता।

हमें महिला क्लब की उदारमना, भले ही अहं तुष्टि या छपास की मजबूरी से सदस्याओं से पूरी सहानुभूति है। वे धन्य हैं।

41. ओ जाने वाले लौट के फिर मत आना

जिन लोगों को सौभाग्यवश साहित्य का बोझ नहीं ढोना पड़ा ऐसे भाग्यशाली लोग कवि सम्मेलन और उसके आयोजन की तकनीक से भली-भांति वाकिफ हैं। ऐसे लोगों का एक अच्छा खासा विराटकाय वर्ग है लेकिन उसे मजहब, समुदाय या धर्म जैसा कुछ कहकर हम उन्हें मानहानि का दावा करने के लिए उत्तेजित करने का खतरा मोल लेने की हिम्मत नहीं जुटा सकते और न ही किसी दंगे में बेमौत मरने का अपना कोई इरादा है।

ऐसे लोगों को दीवाली से होली तक का मौसम खासतौर से सूट करता है। कड़कड़ाती ठंड में जब बड़े-बड़े सूरमा भी दर्जनों गरम कपड़ों का बोझ लादे लिहाफ के अंदर कुल्फी की तरह जमें रहते हैं, तब इस वर्ग के लोग खासतौर से सक्रिय होते हैं और पढ़ास व छपास के रोगी स्वयंभू कवि नामधारी लोग केवल माइक के सामने मंच पर जमने की कोशिश में ही सारा जोड़तोड़ करने में लगे रहते हैं।

अभी पिछले दिनों अपने महानगर में एक महापुरुष की याद में कुछ लोगों ने ऐसा ही कवि सम्मेलन करना चाहा। वैसे उनका इरादा नेक था। आयोजकों का ख्याल था कि ऐसे मुबारक मौके पर कविता न सही, लेकिन कवि सम्मेलन मे कविता के नाम पर कम से

कम अच्छी बातें हो ही जायेंगी, लेकिन ऐन मौके पर आयोजकों को पता चला कि वास्तव में उनके सितारे उतने बुलंद नहीं थे। बृहस्पति के खाने पर अचानक शनि ने अधिकार कर लिया था। आयोजकों का भ्रम आयोजन शुरू होने से पहले ही दूर हो गया। हुआ कुछ यूं कि शहर के कुछ स्वनाम धन्य कवियों ने कवि सम्मेलन की गंध सूंघ ली थी।

काबिले गौर और काबिले तारीफ बात यह है कि जैसे भौंरे फूल पर, मच्छर और खटमल खून पर और सिने सितारों के सर्वव्यापी खूबसूरत छात्राओं पर मरते हैं, उसी तरह ऐसे तथाकथित कवि कहीं से गंध पाते ही कवि सम्मेलन पर झपट पड़ते हैं। यह सिद्धान्त सर आइजन न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की तरह ध्रुव सत्य है।

तो इसी नियम का पालन करते हुए कुछ अकवि (क्योंकि वे अकविता ही ज्यादा पढ़ते और लिखते हैं) गंध सूंघकर आ धमके। आयोजकों के सामने मजबूरी थी। उनको अपने आयोजन की ऐसी-तैसी या छीछा-लेदर नहीं करानी थी। अतः इन अकवियों को भी पढ़वाया गया और उनकी पढ़ास निकाली गयी। अंत में बतौर जुर्माना आयोजकों ने इक्यावन रूपये की दक्षिणा देकर उनसे पीछा छुड़ाया और विदा करते समय गुनगुनाया- ओ जाने वाले कहीं लौट के फिर मत आना। वैसे सारे कवि-अकवि ऐसे नहीं होते। कुछ इतने बेशरम नहीं होते (कुछ कम, कुछ ज्यादा) और कुछ लोगों को पढ़ास के साथ -साथ छपास रोग भी लगता है। देखें एक दृश्य-

एक कवि-यार, बहुत दिनों से अखबार में नाम नहीं छपा। दूसरा- नेता तो नहीं जो बयान जारी करने से छप जायेगा। तीसरा–

और न इतनी दम है कि भरे बाजार गोली चलाकर या बम फेंककर ही नाम छपा लिया जाए। चौथा- बकवास बंद करो। पांचवा- सवाल यह है कि नाम अखबार में कैसे छपे। छठां- एक कवि गोष्ठी बुला लो। गोष्ठी की खबर कभी-कभी गलती से छाप देते हैं। सातवां- लेकिन अपने घर में इतने कवियों को एक साथ बैठने कौन देगा? आठवां- नाम छापने के लिए किसी को तो हिम्मत दिखानी पड़ेगी। नौवां- हां भाई कहो तो मैं ही अपनी पत्नी व बच्चों को मायके छोड़ आता हूं। दसवां- यही ठीक रहेगा, लेकिन कुछ श्रोता भी बुलाने पड़ेंगे और उनको कम से कम चाय तो पिलानी ही पड़ेगी। ग्यारहवां– हां, हां यह तो जरूरी है। क्या मुफ्त में कविता सुनाओगे। चाय, दालमोंठ का इंतजाम हम सबको मिलकर करना चाहिए। और कवि गोष्ठी तय हो गयी।

बाद में पता चला कि कवि नम्बर चौदह कवि नम्बर नौ के घर जाने को तैयार नहीं है और कवि नम्बर अठारह कवि नम्बर दो के साथ नहीं बैठना चाहता लेकिन नाम छपाने के एक सूत्री कार्यक्रम पर सभी नम्बरों के कवि उसी तरह सहमत थे जैसे कांग्रेस को हराने के लिए सभी विपक्षी दल। अतः अन्त में कवियों के दल से निष्कासित एक पत्रकार का घर इस खास काम के लिए चुना गया और तमाम मिन्नतों व आश्वासनों के जाल में उसे फंसाया गया फिर निश्चित तिथि पर सारे कवि उस पत्रकार औऱ श्रोताओं के लिए सिरदर्द की दवाएं लेकर जा पहुंचे। यह बात अलग है कि चाय नाश्ते का इंतजाम बेचारे मजबूरी में बने या फंसे मेजबान को करना ही पड़ा।

इससे कवियों को दो लाभ हुआ एक तो चाय नाश्ते के लिए

जमा किया गया चंदा बच गया और दूसरे पत्रकार को सारे कवियों के नाम लिहाजवश छापने ही पड़े। शायद इसी को कहते हैं कि दसो उंगलियां घी में और सर कढ़ाई में।

42. कृपया दान मत दीजिये

अति प्राचीन काल से दान का महत्व प्रतिपादित किया जाता रहा है। दान करना अतिशय पुण्य का कार्य माना गया है। किन्तु फिर भी अब आपसे दान न देने का अनुरोध किया जा रहा है। इसका क्या कारण है।

दान आजकल पुण्य के स्थान पर एक जघन्य पाप कर्म बन गया है। दान का भीषण दुरुपयोग हो रहा है। दान की पवित्र परम्परा आज आलसियों तथा कर्महीनों की जीविका का सहज-सुलभ साधन बन गयी है। जनता की धार्मिक भावनाओं से खिलवाड़ किया जा रहा है, उसे ठगा जा रहा है। आलसी, चरित्रहीन तथा अयोग्य नरपशु गेरुये वस्त्र धारण कर अपना पेट भरने के लिये दान की सम्पदा उठा ले जाते हैं। इन पर 'न काम के न काज के, दुश्मन अनाज के' की कहावत अक्षरशः चरितार्थ होती है।

प्राचीन काल में दान की महान परम्परा रही है। उस समय दान में प्राप्त वस्तु या धन का निजी स्वार्थ के लिये उपयोग नहीं होता था। एक पर्व के अवसर पर किया गया दान, एक पड़ोसी ब्राह्मण को देने पर उसने बताया कि दुबारा उसे दान न दें। कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि यह नियम है कि पाया हुआ दान वापस नहीं करना चाहिये तथा उसे रखना भी नहीं चाहिए। यह है वास्तविक

दान की परम्परा का रहस्य।

दान कोई पुरस्कार नहीं, अपितु एक उत्तर-दायित्व है। दान लेने पर अपने ऊपर एक कार्यभार आ जाता है कि उस सामग्री-साधन को सदुपयोग सामाजिक उत्थान के किसी कार्य में करना है किसी ऐसे कार्य का आयोजन करना अनिवार्य हो गया, जिससे वह दान नियोजित हो सके। स्वाभाविक है कि ऐसे आयोजन में दान लेने वाली की योग्यता तथा कुछ समय-श्रम अवश्य लगेगा। किन्तु आजकल यह झंझट कोई नहीं उठाता।

दान ब्राह्मण को ही क्यों दिया जाता है? इसलिए कि ब्राह्मण ही समाज के अग्रगण्य विद्वान तथा परोपकारी हुआ करते थे। वे वंश-परम्परा से नहीं, अपितु सत्कर्म तथा तपस्या के तेज से ब्राह्मण बनते थे। धर्म तथा समाज की उन्नति के लिये ही उनका जीवन समर्पित हुआ करता था।

आज स्थित बदल गयी है। आश्चर्य होगा आपको यह जानकर कि **भारत की विशाल जनसंख्या का एक प्रतिशत भाग धर्म जीवी है।** अर्थात् प्रत्येक सौ व्यक्तियों में एक व्यक्ति ऐसा है जिसकी जीविका या रोजी-रोटी जनता द्वारा धर्म के नाम पर दिये गये दान से आराम से चल रही है। यदि यह विशाल धर्मजीवी जनसंख्या अपने आपको वास्तव में धर्म के प्रचार-प्रचार में लगा दे तो भारत में किसी प्रकार का अभाव, दुःख या अशान्ति का नाम भी न रह जाये। सारी अनैतिकता क्षणमात्र में तिरोहित हो व पूर्णरूपेण धर्म तथा नैतिकता का साम्राज्य स्थापित हो जाये, किन्तु ऐसा नहीं हो पा रहा है, विपरीत ही हो रहा है; क्योंकि भारत की कुल जनसंख्या का एक प्रतिशत धर्म जीवी तो है किन्तु इन धर्मजीवियों की विशाल संख्या में

से एक हजार में एक व्यक्ति भी वास्तव में धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। यह विराट सेना केवल अपना पेट भरने के लिये ही भारत की धर्मभीरु निर्धन जनता का शोषण कर रही है।

अतः अब आप कृपया दान मत दीजिये; क्योंकि इन लाखों नकली बाबाओं में किसी एक असली सन्त की पहचान बहुत कठिन है। किसी विद्वान को बुलाकर उससे ज्ञान प्राप्त कीजिये। उस विद्वान व्यक्ति का मार्ग व्यय तथा भोजन के समय अधिक से अधिक एक वस्त्र दीजिये। उसके गन्तव्य स्थान तक जाने का समुचित मार्ग व्यय दे दीजिये। विद्वान मनीषियों द्वारा परिश्रम से लिखी हुई पुस्तकों को खरीदकर उनकी साधना का मूल्यांकन कीजिये। इसके अतिरिक्त यदि आप अपनी आय का एक निश्चिय अंश दान में लगाना चाहते हैं तो आपका विचार सराहनीय है। उस नियमित बचत को आप स्वयं एकत्र कीजिये। वर्ष के अन्त में उस धन का उपयोग पड़ोस के किसी प्रतिभावान निर्धन छात्र को आगामी अध्ययन करने हेतु पुस्तकें क्रय करके दे दीजिये। इस धन का प्रयोग आप सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार में कर सकते हैं। धार्मिक पुस्तकों को खरीदकर या छापकर घर में पहुंचाना वास्तव में पुण्य का कार्य है।

अन्त में, निष्कर्ष यह है कि दान का उद्देश्य आय का एक अंश सार्वजनिक हित में लगाना ही है। वर्तमान परिस्थितियों में किसी अन्य पर विश्वास करके उसे दान देना उचित नहीं। यह कार्य भी स्वयं को ही करना चाहिये। अन्नदान, वस्त्र दान आदि के साथ-साथ समय तथा श्रम का दान भी आप स्वीकार कीजिए। तभी आपका दान पूर्ण होगा। अपने युग की यही मांग है।

43. यथास्थिति, जातिवाद और हिंदुत्व के बीच चुनाव

आगामी चुनावों को देश की जर्जर अर्थव्यवस्था पर थोपा गया अनावश्यक बोझ माना जा रहा है। लोग इस मध्यावधि चुनाव को अधिक से अधिक एक मजबूती के रूप में ही स्वीकार कर रहे हैं। लेकिन भारतीय लोकतंत्र के लिए यह चुनाव सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भी है। यह पहला चुनाव है जिसमें किसी दल या नेता के पक्ष या विरोध में कोई लहर नहीं है। इस चुनाव में संसदीय लोकतंत्र की व्यवहारिक उपयोगिता और प्रासंगिकता तय होनी है। इसके अलावा पहली बार राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के बीच सोच की दिशा और मुद्दों के आधार पर स्पष्ट विभाजन रेखा भी दिखायी पड़ रही है।

यहां पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सोच की दिशा और चुनावी मुद्दों के पीछे कोई ठोस राजनीतिक दर्शन या सैद्धान्तिक आधार नहीं है। लेकिन दशकों से केवल व्यक्तियों पर आधारित चुनाव की अपेक्षा कम से कम कुछ तो आधार इस बार दिखायी पड़ रहा है।

उल्लेखनीय है कि जब हमने अपने नवनिर्मित राष्ट्र के लिए संसदीय लोकतंत्र ब्रिटेन से उधार लिया, उस समय देश में कांग्रेस, कम्युनिस्ट, धार्मिक तथा समाजवादी राजनीतिक विचारधारायें थीं। इन चारो विचारधाराओं का संक्षिप्त उल्लेख यहाँ आवश्यक है।

कांग्रेस की विचारधारा वास्तव में यथास्थिति वादी है। जो जहाँ है जैसा है उसे वैसा ही स्वीकार कर लिया गया। मौलिक परिवर्तन करना तो दूर सोचने का भी कष्ट कभी नहीं उठाया गया। जो जैसे खुश हो सकता था, उसे वैसे ही खुश करने का प्रयास किया

गया। कांग्रेस का दृष्टिकोण सदैव पूरी तरह से समझौतावादी और जैसा का तैसा स्वीकार कर लेने वाला रहा। इसीलिए ब्रिटेन का संसदीय लोकतंत्र भी ज्यों का त्यों अपना लिया गया और यह सोचने का कष्ट नहीं उठाया गया कि यह भारतीय वातावरण के अनुकूल है भी या नहीं।

इसी चिन्तनहीनता के कारण जातियों और समुदायों के कारण वोट बैंक बने और समझौतावादी प्रवृत्ति तुष्टीकरण में बदल गयी। पाकिस्तान बनाने के लिए दोषी कराया गया भारतीय मुसलमान डरा-सहमा सा था और इसीलिए थोड़ा संगठित भी। अतः यह सबसे अलग तथा बड़ा वोट-बैंक सिद्ध हुआ। मुसलमानों की धार्मिक और जातीय भावनाओं को भड़काकर उनका शोषण किया गया। मुसलमानों को पर्सनल लॉ मिला। अल्पसंख्यक के रूप में विशेष अधिकार, विशेष दर्जा मिला लेकिन शिक्षा और रोजी-रोटी नहीं। साम्प्रदायिक तुष्टीकरण की नीति ने समाज को पूरी तरह से दो भागों में बांट कर रख दिया।

मुस्लिम वोट बैंक बनने के बाद इसी तर्ज पर हरिजनों को मिले संवैधानिक आरक्षण की आड़ में हरिजन वोट बैंक बनाया गया। इससे विशाल हिंदू समाज भी दो टुकड़ों में बंट गया। और एक दूसरे से नफरत करने लगा।

कार्ल मार्क्स का साम्यवाद दूसरी सशक्त विचारधारा थी। मार्क्सवाद का तो आधार ही है वर्ग संघर्ष, कांग्रेसी यथास्थितिवादी विचारधारा ने साम्प्रदायिकता व जातीय विरोध खड़ा किया तो साम्यवाद ने पूंजीपति और सहकारिता के नाम पर कारखानों के प्रबन्ध तंत्र और कर्मचारियों के बीच संघर्ष को बढ़ावा दिया। देश के

उद्योगतन्त्र में बहुत बड़ा हिस्सा सार्वजनिक अथवा सरकारी उद्योगों का भी है। अतः इस संघर्ष से सरकार को या प्रकारान्तर में राष्ट्र को सीधे क्षति पहुँची। औद्योगिक अशांति, रोज-रोज की हड़तालों के कारण देश का उत्पादन ठप्प पड़ गया। बिना काम किये वेतन पाने के अधिकार और गैर जिम्मेदार की भावना के कारण काफी घटिया और महंगा उत्पादन हुआ। देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ ही टूट गयी। विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा कर्जदार भी है।

धर्म के नाम पर राजनीति तीसरी दिशा है जिसे साम्प्रदायिक राजनीति कहना ही अधिक अच्छा होगा। मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा और अकाली दल जैसी पार्टियां इस विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती हैं। ईश्वर की कृपा है कि भारतीय लोकतंत्र की राष्ट्रीय राजनीति में इन दलों का कभी कोई स्थान नहीं बन सका। साम्प्रदायिक भावनाएँ भड़काकर वोट मांगना इनका एक सूत्री कार्यक्रम होता है। इनको न राष्ट्र से कोई मतलब होता है न समाज से और न ही धर्म से।

चौथी दिशा लोकतांत्रिक समाजवाद की थी जो अब विलीन हो चुकी है। वैसे इस देश का हर राष्ट्रीय दल स्वयं को समाजवादी कहता है लेकिन सिद्धान्त या व्यवहार से किसी दल को समाजवाद से कोई मतलब नहीं होता। वास्तव में समाजवाद कोई पृथक और मौलिक विचारधारा है भी नहीं। यह तो केवल कार्लमार्क्स के एक दलीय रक्तरंजित कठोर शासन वाले साम्यवाद का लोकतांत्रिक आवरण चढ़ा हुआ रूप भर है। अतः जब भारत के साम्यवादी दलों ने लोकतंत्र को पूरी तरह से स्वीकार किया और पूजापाठ की भी मान्यता दे दी। तो लोकतांत्रिक समाजवाद के नाम पर लगाया गया

शिविर अपने आप खाली हो गया। पुराने समाजवादी नेता और कार्यकर्ता कांग्रेसी विचारधारा वाले विभिन्न दलों के बीच बिखर गये।

लेकिन इस मध्यावधि चुनाव ने स्थिति को बदला है। इस समय भी यथास्थितिवादी कांग्रेसी विचारधारा ही सबसे व्यापक प्रभावशाली शक्ति है। लेकिन प्रमुख राष्ट्रीय दलों में कांग्रेस (इ) इस बार इस विचारधारा की एकमात्र प्रतिनिधि दल है। जबकि पिछले चुनाव में अन्य मध्यमार्गी दल भी इस विचार के पोषक थे।

इस समय जनता दल साम्प्रदायिक तुष्टीकरण और यथास्थिति वाद से कुछ आगे बढ़कर जाति-संघर्ष को आधार बना रहा है। कम्युनिस्टों के सर्वहारा वर्ग के आधार की तरह से जनता दल पिछड़ी जातियों का एक अलग वर्ग तैयार कर रहा है। उसका मानना है कि सवर्ण अत्याचारी और शोषक है। पिछड़ी जातियों को अधिक शक्तिशाली बनाकर ही उनके मुकाबले में खड़ा किया जा सकता है। जनता दल जाति संघर्ष के रास्ते से सामाजिक न्याय लाने पर विश्वास करता है। जैसे साम्यवाद वर्ग संघर्ष और बंदूक की नली से क्रान्ति निकलने की बात करता है।

जनता दल (समाजवादी) ने तो स्वयं ही जनता दल का पूरा संविधान यथावत् स्वीकार कर लिया था। अतः उसे वैचारिक दृष्टि से जनता दल की ही विद्रोही शाखा कहना ही उचित होगा। अब जनता पार्टी से मिलकर बनी समाजवादी जनतापार्टी के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है।

भारतीय जनता पार्टी तीसरी बड़ी शक्ति है। यह पार्टी साम्प्रदायिक समानता और सबके लिए एक कानून की सैद्धान्तिक बात करती है। लेकिन इसके पीछे समानता और समरसता की भावना

न होकर अल्पसंख्यकों के विशेषाधिकार खत्म करके वोट बैंक तोड़ना मुख्य लक्ष्य है।

इस समय भाजपा हिंदू धर्म व समुदाय के पक्ष में पूरी तरह से मुखर है। लेकिन उसके पास हिंदू की कोई स्पष्ट परिभाषा उसी तरह से नहीं है जैसे कांग्रेसी विचारधारा के पास भारतीयता की कोई स्पष्ट अवधारणा नहीं है। कांग्रेस उस हर व्यक्ति को भारतीय मानती है जिसकी गिनती जनगणना में भारतीय के रूप में की जा सकती हो। उसी तरह से भाजपा हिंदू हर उस व्यक्ति को मानती है जो जनगणना में स्वयं को हिन्दू लिखा दे और जिस पर हिंदू पर्सनल ला लागू हो तो। ऐसी अस्पष्ट परिभाषा से न देश चल सकता है और न ही समाज।

भाजपा की दिशा अल्पसंख्यकों के मुकाबले हिन्दुओं को बढ़ावा देने और हिंदू के नाम पर अधिक से अधिक लोगों को वोट बैंक के रूप में संगठित रखने के लिए परस्पर विरोधी मान्यताओं वाले सम्प्रदायों का तुष्टीकरण करना है। मूर्तिपूजा के समर्थक और विरोधी, पुराणों को पूजने और जलाने व वेद के भक्त और निंदक यज्ञ करने वाले और नष्ट करने वाले वे सभी हिंदू माने गये हैं जो जनगणना में खुद को हिंदू लिखें और भाजपा के लिए वोट बैंक बन सकें। चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, बर्मा, लंका किसी भी देश का निवासी बौद्ध स्वयं को हिंदू नहीं मानता। लेकिन भाजपा जबरदस्ती बौद्धों को हिन्दू कहने पर तुली है। भाजपा की नजर में जिसकी कोई स्पष्ट विचारधारा न हो तो वह दिशाहीन समाज हिंदू है।

कुल मिलाकर हिन्दुओं की सामुदायिक भावनाओं का शोषण ही भाजपा का लक्ष्य है और राम के आदर्शों को छोड़कर ईंटों का

मंदिर बनाना एक मात्र मुद्दा।

अतः यह मध्यावधि चुनाव यथास्थितिवाद, जनता दल के जातिवाद और भाजपा के हिन्दूवाद के बीच ही होना है। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि इस चुनाव में तीन स्पष्ट दिशायें तो हैं लेकिन कोई भी दिशा व्यापक राष्ट्रीय सामाजिक समरसता की ओर नहीं जाती है। अतः मतदान का आधार जातीय और साम्प्रदायिक भावना ही रहेगी।

भारत राष्ट्र को जीवित रहने के लिए ऐसे राजनीतिक दर्शन की आवश्यकता है, जो जातियों, वर्गों और समुदायों के आधार पर समाज को बांटने के स्थान पर वास्तविक समरसता की स्थापना करे। सभी को विकास का अवसर प्रदान करे। तुष्टीकरण और नकली गठबंधन के स्थान पर खुले विचार विमर्श और चिन्तन का अवसर देकर वास्तविक समरसता लाये।

44. समाज को बांटकर सामाजिक न्याय संभव नहीं

मध्यावधि चुनाव 1991 में सामाजिक न्याय एक मुख्य मुद्दा है। यह मुख्यतः जनता दल का नारा है। लेकिन सभी दल अब स्वयं को सामाजिक न्याय का सच्चा राही बताने में जुटे हैं। परन्तु सभी दलों की सामाजिक न्याय की अवधारणा तथा लागू करने के तरीके अलग-अलग हैं। जनता दल पिछड़ी जातियों को आरक्षण देकर सामाजिक न्याय लाना चाहता है। कांग्रेस (इ) सबको उसकी इच्छा के अनुसार सन्तुष्ट करना सामाजिक न्याय मानती है और भारतीय जनता पार्टी अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण बन्द करके सबके लिए समान नागरिक कानून बनाकर सामाजिक न्याय दिलाना चाहती है।

खासबात यह है कि इन सभी दलों की नीतियों के पीछे किसी समुदाय या जाति विशेष का समर्थन जुटाना ही मुख्य उद्देश्य नजर आता है। स्पष्ट है कि ये सभी समाज को विभिन्न जातियों, वर्गों या समुदायों में बांटकर विकास करना चाहते हैं।

वास्तव में सच्चा सामाजिक न्याय वही हो सकता है जिसमें बिना किसी भेदभाव के सभी को विकास का समान अवसर मिले। एक स्थिति से क्रमिक विकास करना ही प्राकृतिक सत्य है और सभी को समान भाव से क्रमिक विकास प्रदान करना ही वास्तविक सामाजिक न्याय है।

विकास के लिए समान अवसर तभी सम्भव है जब शिक्षा, प्रशिक्षण व प्रतियोगिता के लिए आवश्यक संसाधन सभी को समान रूप से उपलब्ध हो। धन के अभाव में कोई भी शिक्षा या समुचित प्रशिक्षण से वंचित न रह जाये तथा प्रतियोगिताओं में भी आर्थिक संसाधनों सहित किसी तरह की बाधा या भेदभाव न हो।

इसके लिए पहली आवश्यकता है कि कम से कम हाई-स्कूल स्तर तक सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था सार्वजनिक व्यय से की जाये। सभी विद्यालयों के पाठ्यक्रम तथा शिक्षण स्तर व सुविधायें समान हों। हाईस्कूल तक के विद्यार्थी के आवास, वस्त्र, भोजन के साथ ही शिक्षण व्यय की पूरी व्यवस्था शासन की तरफ से हो तथा विद्यार्थी अपने माता-पिता पर निर्भर न हों। इससे शिक्षा पर माता-पिता के आर्थिक स्तर का प्रभाव नहीं पड़ेगा। अनिवार्य शिक्षा की उच्चतम सीमा इण्टरमीडिएट या स्नातक भी हो सकती है जो राष्ट्र के संसाधनों पर निर्भर करेगी। इसके लिए सभी नागरिकों से आय का एक अंश शिक्षा के रूप में लिया जा

सकता है।

अनिवार्य शिक्षा के बाद किसी भी पाठ्यक्रम को प्रवेश योग्यता और रुचि के आधार पर होना चाहिए, इसके साथ ही वह स्वावलम्बी शिक्षा भी हो। अर्थात् ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि छात्र उस शिक्षा का व्यय स्वयं ही वहन करे और वह माता-पिता या सरकार पर निर्भर न रहे।

ऐसी व्यवस्था में रोजगार में आरक्षण की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी। कोई न जातिगत आधार पर आरक्षण माँगेगा और न आर्थिक आधार पर।

इसके साथ ही सभी को रोजगार मिलना भी नितान्त आवश्यक है। इसके बिना सामाजिक न्याय और विकास की बात ही व्यर्थ है। सभी को उसकी इच्छा के अनुसार रोजगार देना भले ही संभव न हो, लेकिन इतना तो होना ही चाहिए कि वह आवास, भोजन, वस्त्र आदि की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी कर सके।

सामाजिक न्याय की अवधारणा में नारी की आर्थिक व सामाजिक स्वाधीनता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समाज का आधा भाग विकास की दौड़ में पीछे रह जाये तो सामाजिक न्याय विडम्बना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यद्यपि सभी को समान अवसर के अन्तर्गत बालिकाएँ भी स्वभावतः आ जाती हैं। लेकिन सामाजिक स्थिति के कारण इस ओर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। नारी को सामाजिक रूप से समानता के स्तर पर लाने के लिए उसका आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होना बहुत आवश्यक है। पुत्री को पिता की सम्पत्ति में बिना शर्त व बिना अपवाद अनिवार्य अधिकार तथा नारी प्रकृति के कार्यों में वरीयता के आधार पर रोजगार देने सहित सभी

संभव उपाय नारी को आर्थिक स्वाधीनता के लिए किये जाने चाहिए। नारी के लिए आरक्षण भी उचित है। किसी भी समुदाय से सम्बद्ध ऐतिहासिक धरोहर की रक्षा की जानी चाहिए। किसी भी प्राचीन भवन को तोड़फोड़ और उसके मूल ढांचे में परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए। यथा संभव जो निर्माण जहाँ है जैसा है उसे वहीं पर और वैसा ही सुरक्षित रखना चाहिए।

इस प्रकार प्राचीन भाषा, साहित्य, दर्शन और कला की धरोहर का भी संरक्षण दिया जाना चाहिए। इसमें जाति, वर्ग या समुदाय के आधार पर किसी तरह का कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

सामाजिक न्याय का लक्ष्य है वास्तविक एकता और समरसता। इसके लिए न तो हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तान जैसा कट्टर पंथी नारा उचित है और न ही सभी का तुष्टीकरण करके राजनीति का लक्ष्य पाने का प्रयास। वैज्ञानिक विकासवाद की दृष्टि से सम्पूर्ण मानव जाति जैव विकास का एक ही चरण है। अतः मानव जाति में प्राकृतिक एकता व समरसता है। भेदभाव तो कृत्रिम है, बनावटी है और नकली है।

समरसता के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार उस समाज के अनुसार हो, जिसमें वह रहता है। भाषा और रहन-सहन का सामान्य तरीका पूरी तरह से उसी समाज का अपनाया जाये। निजी जीवन प्रत्येक व्यक्ति का अपना होता है। जहाँ तक समाज प्रभावित न होता हो व्यक्ति को पूरी छूट है।

सामाजिक समरसता के लिए आवश्यकता है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कोई युवती मिनी स्कर्ट पहनकर खेतों में न घूमें। इसी तरह से न्यूयार्क में घूंघट निकालकर बाजार जाना हास्यास्पद

लगेगा। इसमें अपने समुदाय की मान्यताओं की दुहाई देकर डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग बनाने का प्रयास वास्तविक सामाजिक समरसता में बाधक है। अंग्रेजी में एक कहावत भी है कि यदि रोम में रहो तो वैसा ही करो जैसा रोमन करते हैं।

कोई व्यक्ति किस विचारधारा या दर्शन को मानता है या उसकी पूजा पद्धति क्या है, यह निजी विषय है। इसमें चाहे जितना अन्तर हो, सामाजिक समरसता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। लेकिन भाषा, वेशभूषा, शिष्टाचार के तरीके तथा सामाजिक व्यवहार तो समाज के अनुसार अपनाना ही चाहिए। रुचि के आधार पर व्यक्ति किसी भी भाषा का विद्वान् तो बन सकता है, लेकिन व्यवहार की भाषा तो वही रहेगी जो समाज की व्यापक भाषा है।

45. वर्तमान समस्याओं का हल

किसी भी समस्या का समाधान स्थायी रूप से तभी संभव है जब हम विकास सीधी और धीमी गति से सभी को साथ लेकर चलें। एकदम कोई महान परिवर्तन करने से अधिकतर स्थिति विस्फोटक बन जाती है। उन्होंने कहा कि अड़ियल रवैये से कभी कोई समाधान संभव नहीं होता। प्रगति के लिए सबसे बड़ी बात यह है कि यदि कोई नवीन विचार सामने आये और उससे लाभ संभव हो तो पुराने विचारों को उस सीमा तक परिवर्तित कर लेना चाहिए। इतिहास, वेद, उपनिषद्, गीता, कुरान, बाइबिल आदि सभी धर्म एक हैं, केवल उनके रास्ते अलग हो सकते हैं। यदि छोटे-छोटे उद्योगों को बड़े उद्योगपति न अपनायें तो इससे अनेक समस्याएँ हल हो जायेंगी। मध्यम और

निर्धन लोग उनको विकसित कर सकेंगे और रोजगार पा सकेंगे।

46. आरक्षण नहीं विकास का अवसर जरूरी

अनियमित पूंजीवाद तो घोर अराजकता की स्थिति और जंगल का कानून वाली व्यवस्था है। इसके विपरीत मार्क्स का साम्यवाद व्यक्ति व समाज के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध कर देने वाला कठोर अमानवीय नियन्त्रण है। इन दोनों अतिवादी व्यवस्थाओं का दुष्परिणाम यह विश्व भुगत चुका है। इन दोनों व्यवस्थाओं के नुकसान से बचने के लिए एक नयी व्यवस्था की आवश्यकता है। वर्षों के चिन्तन मनन से मैं स्वाभाविक विकास को सुनिश्चित कर पाने में सक्षम विकासवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर सका हूँ।

इस विकासवादी व्यवस्था के तहत प्रत्येक व्यक्ति को विकास का समुचित अवसर उपलब्ध होना चाहिए। किसी भी वर्ग में जन्मे बच्चे को शिक्षा का समुचित अवसर मिले। धन के अभाव में संसाधनों की कमी में कोई भी शिक्षा से वंचित न रह जाये, इसके लिए आवश्यक है कि प्रारम्भ से अन्त तक विद्यार्थी संसाधन या किसी प्रकार के व्यय के लिए अपने परिवार पर निर्भर न रहे। छात्र के निवास भोजन वस्त्र शिक्षा सामग्री तथा खेल मनोरंजन तक की सम्पूर्ण व्यवस्था एक समान स्तर की हो, जब प्रत्येक छात्र को सभी सुविधाएँ संसाधन और परिस्थितियाँ समान स्तर की उपलब्ध होगी तो प्रत्येक को अपनी प्रतिभा का समुचित विकास करने का अवसर मिलेगा। प्रत्येक छात्र अपनी रुचि व प्रतिभा के अनुसार विज्ञान, धर्म,

वाणिज्य व सैन्य आदि क्षेत्रों में आगे बढ़ सकेगा। शिक्षा के बाद वह जो भी कार्य क्षेत्र चुनेगा वही उसका वर्ण होगा। जन्म से जाति निर्धारण स्वतः समाप्त हो जायेगा। नाम में जाति सूचक शब्द लगाने पर प्रतिबन्ध होना चाहिए। ब्राह्मण का पुत्र यदि चमड़े का कार्य करे तो चर्मकार ही कहा जायेगा।

सभी छात्रों के लिए इतनी व्यवस्था करने में सरकार के पास संसाधनों की कमी हो सकती है। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति पर शिक्षाकर अनिवार्य रूप से लगाया जाना चाहिए। शिक्षा कर सब पर लागू होगा चाहे उसकी आय कितनी भी कम या अधिक हो अथवा उसके संतान हो या न हो। एक प्रतिशत कर तो न्यूनतम आय वाला व्यक्ति भी दे ही सकता है और यह उसकी सभी संतानों की सम्पूर्ण शिक्षा का बीमा भी तो होगा। संतान चाहे जब हो साथ ही संतान के सारे खर्चों से मुक्त हो जाने पर परिवार का खर्च भी काफी कम रह जायेगा। अतः शिक्षा कर देने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

इसके बाद न आरक्षण की जरूरत होगी और न मांग क्योंकि सामान्य शिक्षा तथा व्यावसायिक या तकनीकी शिक्षा के लिए समान अवसर व संसाधन होने पर प्रत्येक छात्र का विकास उसकी अपनी प्रतिभा व रुचि के अनुकूल स्वाभाविक रूप से ही होगा। अतः दलित या सम्पन्न अथवा अगड़े-पिछडे जैसी कोई बात व्यक्ति के उत्थान में प्रभावी नहीं हो सकेगी। यह भी सच है कि समान अवसर होने पर भी सभी छात्र समान स्तर नहीं पा सकेंगे, लेकिन तब वे अपने उच्च या निम्न स्तर के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे, उनकी पारिवारिक या सामाजिक पृष्ठभूमि नहीं। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि प्रत्येक का स्वाभाविक क्रमिक विकास ही सम्भव है। प्रत्येक को यह

अवसर दिया जाये कि वह जहाँ पर खड़ा है, उससे कम से कम एक सीढ़ी आगे अवश्य बढ़ जाये। यह सम्भव है, सत्य है और स्वाभाविक भी। लेकिन दलितों व पिछड़ों को आगे लाने के नाम पर यदि अशिक्षित व अयोग्य व्यक्ति को डाक्टर, इंजीनियर, न्यायाधीश और प्रशासक बना दिया जाये, तो इससे समाज व राष्ट्र का विनाश ही होगा।

47. विकासवादी व्यवस्था में बेकारी को कोई स्थान नहीं

विकासवादी जीवन दर्शन की मूल मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति को वर्तमान स्थिति से क्रमिक विकास के लिए अवसर मिलना ही चाहिए। इसी के अन्तर्गत मैंने प्रत्येक छात्र को प्रारम्भिक कक्षा से उच्च शिक्षा तक समान अवसर पर समान संसाधन उपलब्ध कराने की आवश्यकता भी प्रतिपादित की है। शिक्षा से व्यक्तित्व का विकास होता है तथा कुछ कर सकने की क्षमता विकसित होती है।

परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। क्षमता विकसित हो जाने के पश्चात् भी यदि उसके उपयोग का अवसर न मिले तो क्षमता विकसित करने में व्यय किया गया समय, श्रम व संसाधन व्यर्थ ही चला जायेगा। अतः विकासवाद में यह अनिवार्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके द्वारा अर्जित क्षमता के अनुकूल कार्य देकर उसका भरपूर उपयोग किया जाये। कार्य व्यक्ति की योग्यता व क्षमता के अनुसार ही दिया जायेगा तथा प्रतिफल भी उसके अपने कार्य के अनुपात में ही मिलेगा। सभी लोगों को प्रतिफल न तो समान दिया जा सकता है

और न ही राज्य द्वारा निर्धारित की गयी आवश्यकता के अनुसार। क्योंकि यदि ऐसा किया गया तो कोई भी न तो कठिन परिश्रम करके अधिक योग्यता अर्जित करना चाहेगा और न ही अधिक परिश्रम वाला कोई कठिन कार्य ही करना चाहेगा।

विशेष योग्यता, प्रतिभा व क्षमता की अपेक्षा रखने वाले उच्च पदों तथा चिकित्सा, अभियन्त्रण आदि विशिष्ट कुशलता की अपेक्षा वाले क्षेत्रों में विशेष प्रतिभा वाले छात्रों को ही स्थान दिया जा सकता है। यह सत्य है कि प्रशासनिक पदों तथा अन्य व्यापक प्रभाव वाले महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में कम प्रतिभा वाले लोगों को किसी भी कारण से स्थान नहीं दिया जाना चाहिए, भले ही उन्होंने या उनके माता-पिता ने कितना ही त्याग बलिदान अथवा महत्त्वपूर्ण कार्य क्यों न किया हो।

यहां पर मेरा उद्देश्य स्वतन्त्रता सेनानियों सैनिकों पर अन्य पूज्य महानुभावों की विशिष्टता या उनके त्याग की अवमानना नहीं है। उनके बलिदान को देखते हुए उन्हें कृषि भूमि या भवन तक दिये जा सकते हैं, जिसके सहारे वे पूरा जीवन आराम से गुजार सकें। व्यापार करना चाहें तो उनको नाम मात्र के ब्याज पर या सीमित अवधि के अन्दर धन वापस करने पर बिना ब्याज का भारी ऋण भी दिया जा सकता है। यही बात अक्षम व पीड़ित व्यक्तियों विकलांग या अन्य कमजोर लोगों पर भी लागू की जानी चाहिए। साथ ही सभी को विकास का अवसर देने के सिद्धान्तों के तहत यह आवश्यक है कि कार्य सभी को मिले तथा जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ सभी की पूरी हों। यहाँ पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि यदि किसी व्यक्ति की क्षमता तथा उसके द्वारा किया जाने वाला कार्य इतना

प्रतिफल न उत्पन्न कर सके, जिसके द्वारा जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी कर सकें, तो उस व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए संसाधन कहां से दिये जायें। बात उचित भी है। इस पर मेरा स्पष्ट विचार है कि यदि शिक्षा प्राप्त करने व अपनी क्षमता का विकास करने का समुचित अवसर मिले तो प्रत्येक व्यक्ति इतनी क्षमता तो अर्जित कर ही लेगा, जिसका उपयोग कर वह न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी कर सके। यदि क्षमता होने पर भी वे कार्य न करें तो उनसे कार्य कराना सामाजिक नेतृत्व का दायित्व भी बनता है। इसी नियन्त्रण तथा नियमन के लिए धर्म, राज्य तथा प्रशासन जैसी संस्थाएं होती हैं।

महत्त्वपूर्ण पदों व क्षेत्रों के लिए योग्यतम प्रतिभाओं का चयन किया जाना चाहिए। उसके बाद अन्य कार्य व्यवसायों के लिए भी रुचि व क्षमता के अनुकूल व्यक्ति को नियोजित किया जाना चाहिए। इस क्रम से चलते हुए प्रत्येक स्तर के कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चयन किया जायेगा।

यह भी हम जानते ही हैं कि प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता व क्षमता के अनुरूप कोई न कोई कार्य तो होता ही है। अब समस्या केवल तब उत्पन्न होती है जब किसी विशेष कार्य के लिए हमें दस व्यक्ति चाहिए लेकिन हमें केवल आठ ही उपलब्ध हैं। स्वाभाविक है कि हम दो ऐसे व्यक्ति भी ले लेंगे, जिनमें मानक से कुछ कम क्षमता होगी। उसके बाद हम उन दो को कड़ा प्रशिक्षण देकर उस कार्य के योग्य बनाने की व्यवस्था भी करेंगे।

समस्या का दूसरा स्वरूप यह होता है कि किसी कार्य के लिए हमें दस लोगों की आवश्यकता होती है तथा सौ लोग स्वयं को

उस कार्य के योग्य समझते हैं। चलिए हम चयन कर लेंगे कि कौन उस विशेष कार्य के योग्य हैं और कौन नहीं। लेकिन यदि चयन करने के बाद भी बीस व्यक्ति उपयुक्त पाये जायें तो समस्या खड़ी होगी। यहाँ पर भी हमें समझौता करना पड़ेगा। हम सर्वोत्तम दस को चुन लेंगे तथा शेष को अन्य अवसर की तलाश करने या उनके अन्दर पायी जाने वाली अन्य क्षमताओं के अनुसार अन्य कार्यों को नियोजित करने पर प्रयास करेंगे।

उदाहरण के लिए मान लीजिए कि एक व्यक्ति शिक्षक, पत्रकार, वकील तथा प्रशासन होने की योग्यताएँ रखता है। तो वह इनमें से किसी भी क्षेत्र में जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रशासक बनने के लिए कई वर्ष तक अपनी कार्य क्षमता को बिना किसी उपयोग के व्यर्थ जाने दे।

विकासवादी व्यवस्था में यह भी अनिवार्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ कार्य अवश्य मिले। बेकार व्यक्ति की क्षमता व्यर्थ जाती है तथा उसके विकास की सम्भावना ही समाप्त हो जाती है। अतः किसी भी व्यक्ति का बेकार रहना विकासवाद की मूल धारणा के ही विरुद्ध है।

रोजगार के अवसर उत्पन्न करने के लिए संसाधनों की कमी कोई स्वीकार्य बहाना नहीं है। अनुत्पादक कार्यों में नियोजित करना वास्तविक नियोजन नहीं है। उत्पादक कार्य में लगना संसाधन को बढ़ाना ही है। कम से कम भारत में वर्तमान स्थिति में भी इतना संसाधन है कि व्यक्ति कार्यशील व्यक्ति को उपयोगी कार्य दिया जा सके। आवश्यकता है केवल संसाधनों को उपयोग में लाने के लिए समुचित प्रयास करने की। प्रत्येक सक्षम व्यक्ति को रोजगार देना

सम्भव है।

वास्तव में विकासशील देश में कार्य की नहीं, अपितु कार्य करने वालों की ही कमी होती है। अनेक ऐसे कार्य हैं, जिन्हें बिना किसी विशेष संसाधन के ही किया जा सकता है। यदि सरकारी सेवाओं में बिना किसी उत्तरदायित्व के और कम से कम कार्य करके अधिक से अधिक अनुलाभ पाने की इच्छा से आगे बढ़ा जाये तो बेकारी आधी तो कम हो सकती है। बिना विशेष संसाधन के भी विकासवाद के सिद्धान्तों के ही बल पर अनेक लोगों को कार्य में लगा सकने का विश्वास मुझे है। भले ही उसमें कार्य दशायें काफी अच्छी न हों।

48. मूक 'गण' फंस गया विदेशी 'तंत्र' के जाल में

विश्व में प्राचीनतम सर्वश्रेष्ठ ज्ञान-विज्ञान और साहित्य भारत के पास है। भारत में पूर्ण वैज्ञानिक लिपि, सशक्त भाषा तथा सर्वांगपूर्ण व्याकरण का विकास हजारों वर्ष पूर्व उस समय हो गया था जब विश्व के अधिकांश भागों में मानक भाषा तक नहीं थी। आज भी भारत के अतिरिक्त किसी भी देश के पास कोई वैज्ञानिक लिपि और सशक्त व्याकरण नहीं है। लेकिन स्वार्थपूर्ण राजनीति के कारण आज वह देश गूंगा हो गया है, जिसने सबसे पहले इस संसार को बोलना सिखाया था। भारत राष्ट्र के पास आज अपनी कोई भाषा नहीं है, जिसमें प्रशासनिक कार्य चल सके, पारम्परिक सम्पर्क हो सके तथा जो भाषा शिक्षा और न्याय आदि की भाषा बन सके। इसके लिए हम विदेशी भाषा अंग्रेजी के मोहताज और गुलाम हैं, जो भारत की नवीनतम भाषा हिन्दू-उर्दू से भी नयी है। ऐसी भाषा, जिसकी लिपि

पूरी तरह से अवैज्ञानिक तथा भ्रमित करने वाली है।

अंग्रेजी के भारत पर लादे रहने का एक मात्र उद्देश्य भारतीयों के अन्दर हीन भावना को बढ़ावा देना तथा राष्ट्रीय स्वाभिमान उत्पन्न न होने देना है। मूलतः इसके पीछे पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों का स्वार्थ रहा है। लेकिन बाद में भारत के ही सत्तासीन उच्च वर्ग ने इसे अपना शिकंजा बनाये रखने का साधन समझा और आम नागरिकों में हीनता की भावना को बढ़ावा दिया। एक पूर्णतः अवैज्ञानिक लिपि वाली जबरन थोपी गयी भाषा को आधुनिकता और तथाकथित प्रगतिशीलता का प्रतीक बताया गया और देश को उसकी गुलामी में जकड़ दिया गया। अंग्रेजी को बनाये रखने के पक्षधर राजनेता भारतीय भाषाओं के बीच राजनीतिक विवाद खड़े करते हैं और समाधान के रूप में अंग्रेजी लादे रहते हैं। भारतीय नागरिकों को प्रगति वंचित रखना ही उनका एकमात्र उद्देश्य है।

अंग्रेजी को सरकारी कामकाज की भाषा बनाये रखने से केवल राष्ट्रीय स्वाभिमान की सैद्धान्तिक समस्या भर नहीं है। यदि इतना ही होता तो व्यावहारिकता के पक्षधर प्रत्यक्ष लाभ के तर्कों से काम चला सकते थे। लेकिन अंग्रेजी के कारण भारत का आर्थिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक, तकनीकी व सामाजिक, राजनीतिक विकास भी अवरुद्ध हुआ है। भारत के बाद स्वतन्त्र हुए राष्ट्र हमसे आगे निकल गये और मजबूत स्थिति में विश्व के समक्ष खड़े हैं, लेकिन हम अभी भारत को एक राष्ट्र के रूप में बनाये रखने के लिए ही सारी शक्ति लगा रहे हैं, जो हजारों वर्षों से राष्ट्र रहा है, उसे राष्ट्रीय एकता व अखण्डता बनाये रखने का प्रयास करना पड़ रहा है और केवल दो शताब्दी पूर्व अनेक राज्यों को मिलाकर जबरदस्ती बनाया गया

संयुक्त राज्य अमेरिका सशक्त एकताबद्ध अखण्ड 'राष्ट्र' कहा जाता है। उसे राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के लिए नारे नहीं लगाने पड़ते और विज्ञापन/प्रचार नहीं करना पड़ता है।

वास्तव में जिस भौगोलिक क्षेत्र का एक साझा इतिहास तथा साझी साहित्यिक व भाषाई पृष्ठभूमि हो, उसे ही एक राष्ट्र माना जा सकता है। भारत इसी परिभाषा के अनुसार एक राष्ट्र है। हजारों वर्ष प्राचीन इतिहास काल में सम्पूर्ण राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई तो शायद ही कभी रहा हो। लेकिन सम्पूर्ण भारत वर्ष के सभी निवासी और शासक स्वयं को भारतीय कहने में गर्व अनुभव करते थे। भले ही वे परस्पर शत्रु ही क्यों न हों। इसका कारण यही है कि अनादिकाल से संस्कृत इस राष्ट्र की राष्ट्रीय, सांस्कृतिक व राजभाषा रही है। संस्कृत के विभिन्न प्राकृत व अपभ्रंश रूपों से आधुनिक भारतीय प्रादेशिक भाषाओं का विकास हुआ। ये सभी प्रादेशिक भाषाएँ संस्कृत शब्दावली से ही पोषित और अनुप्राणित हैं। सभी भारतीय भाषाओं में सत्तर और नब्बे प्रतिशत तक संस्कृत के शब्द हैं, यह आन्तरिक ऐक्य सूत्र राष्ट्रीय एकता व समरसता का आधार है।

मध्यकाल में मुसलमानों के शासन में फारसी राजभाषा बनी। लेकिन सांस्कृतिक राष्ट्रीय भाषा संस्कृत ही बनी रही। स्थानीय बोलियों में भी साहित्य रचा जाता रहा। लेकिन संस्कृत अपने स्थान पर प्रतिष्ठित रही। इसी बीच खड़ी बोली में अरबी-फारसी के शब्दों को लेकर भाषा का विकास हुआ। मुसलमान शासक अपने साथ इस नयी भाषा को देश के कोने-कोने में ले गये और उर्दू को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया। इस भाषा में जब संस्कृत शब्द अधिक हुए तो हिन्दी कहलायी और जब अरबी-फारसी शब्दों की अधिकता

हुई तो उर्दू कहा गया।

अंग्रेजों की कूटनीति ने उर्दू को मुसलमानों की भाषा और हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा के रूप में प्रचारित किया। इसी प्रकार उन्होंने दक्षिण भारत की भाषाओं तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम को आर्येत्तर द्रविण भाषा कहा और उनमें हिन्दी उर्दू के प्रति विरोध की भावना फैलायी। अंग्रेजों ने उर्दू-हिन्दी विवाद और आर्य भाषा और अनार्य द्रविण भाषा विवाद इसीलिए खड़े किये, जिससे भारत की भाषाई-सांस्कृतिक एकता नष्ट हो जाये और भारत की राष्ट्रीय अस्मिता समाप्त हो जाये।

अपनी राजनीतिक शक्ति तथा तत्कालीन परिस्थितियों के कारण अंग्रेज अपनी कूटनीति में काफी सफल रहे। लेकिन इसके बावजूद धार्मिक आधार के कारण भारत के सभी भागों में संस्कृत का महत्त्व बना रहा। सभी पर्व-त्यौहार तथा धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों में संस्कृत भाषा पूरी तरह प्रतिष्ठित रही। स्वाधीनता संग्राम संस्कृत राष्ट्रगीत 'वन्देमातरम्' से ही अनुप्राणित रहा। भले ही स्वतन्त्रता के बाद संविधान में 'जनगणमन' बंगलागीत को उससे कुछ अधिक महत्त्व मिल गया हो। वैसे यह भी महत्वपूर्ण है कि दोनों ही राष्ट्रीय गीत बंकिमचन्द्र चटर्जी तथा कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर रचित 'जनगणमन' बंगाल ने ही हमें दिये।

दुर्भाग्य यह रहा कि स्वाधीनता आन्दोलन के बाद जैसे तुरन्त प्रतिक्रान्ति हो गयी। आजाद भारत का संविधान बनाते समय से ही धारा उलट गयी और स्वतन्त्र भारत के शासकों ने स्वाधीनता संग्राम के राष्ट्रीय मूल्यों को पूरी तरह कुचल डाला। नये शासकों ने भी पूर्णतः पूर्ववर्ती अंग्रेज शासकों की ही नीतियां और शासन प्रणाली

अपनायी। अंग्रेजी भाषा को इन नये शासकों ने अंग्रेजों से भी अधिक महत्व प्रदान किया और शासन-प्रशासन, शिक्षा-संचार, आकाशवाणी व दूरदर्शन पर पूरी तरह से अंग्रेजी का वर्चस्व कायम कर दिया। भारतीय भाषाओं को दूसरे दर्जे का ही स्थान दिया गया।

प्रारम्भिक कक्षाओं से ही बालकों पर अनिवार्य विषय के रूप में अंग्रेजी को थोपा गया। छोटी-से-छोटी नौकरी पाने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया। एक कनिष्ठ श्रेणी के लिपिक के लिए अंग्रेजी को आवश्यक बना दिया गया। प्रशासक तो अंग्रेजी में सांस लेने के लिए बाध्य हैं। उच्च शिक्षा, विज्ञान व प्रौद्योगिकी, चिकित्सा शास्त्र आदि में शिक्षा का माध्यम अनिवार्य रूप से अंग्रेजी को ही बनाया गया। किसी भी भारतीय भाषा का प्रयोग दण्डनीय अपराध बना दिया गया। इतनी बुरी दशा तो विदेशी शासनकाल में भी नहीं थी।

आज भी अंग्रेजी के समर्थन में निहित स्वार्थी तत्व तर्क देते हैं कि अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। अतः इसका ज्ञान आवश्यक है। पहली बात तो यह सही नहीं है। उन्नत फ्रांस, जर्मनी, जापान, इटली, चीन व सोवियत संघ में अंग्रेजी का कोई स्थान नहीं है। इसके अलावा पश्चिम एशिया के स्वाभिमानी अरब देशों में भी शिक्षा व प्रशासन की भाषा उनकी अपनी है। अंग्रेजी को वहां अछूत ही समझा जाता है।

अंग्रेजी केवल ब्रिटेन, अमेरिका व कनाडा जैसे देशों की अपनी भाषा है। अंग्रेजी उन देशों में ही है, जो पहले अंग्रेजों के उपनिवेश रह चुके हैं। चीन, जापान, सोवियत संघ, फ्रांस, जर्मनी व इटली जैसे राष्ट्रों ने सिद्ध कर दिया है कि विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास के

लिए अंग्रेजी आवश्यक बिल्कुल नहीं, केवल बाधक ही है।

यदि एक बार स्वीकार भी कर लिया जाये कि अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है तो भी यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी की आवश्यकता केवल उनको है, जिन्हें विदेश जाना हो। विदेश सेवा तथा आयात-निर्यात का कार्य करने वालों को विशेष प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में विदेशी भाषा के रूप में अंग्रेजी का ज्ञान कराया जा सकता है। भारत वर्ष के अन्दर कार्य करने वालों को अंग्रेजी का ज्ञान बिल्कुल आवश्यक नहीं है। सीखने के लिए अंग्रेजी ही क्यों, कोई भी विदेशी भाषा सीखी जा सकती है, लेकिन अनिवार्य रूप से थोपी नहीं जानी चाहिए। बालकों के कच्चे मन पर तो विदेशी भाषा का बोझ डालना ही नहीं चाहिए। विश्वविद्यालय स्तर पर अंग्रेजी सहित सभी विदेशी भाषाओं का अध्ययन हो सकता है, उससे पूर्व स्तर पर केवल भारतीय भाषायें ही पढ़ायी जानी चाहिए।

अंग्रेजी समर्थकों की दूसरी दलील तो 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे' जैसी है। उनका कहना है कि अंग्रेजी ही पूरे भारत में व्यापक सम्पर्क भाषा है। यह तर्क बचकाना तो है ही, हीनभावना का द्योतक भी है। भारत जैसे ज्ञान-विज्ञान के प्राचीन राष्ट्र की अपनी भाषा न हो, यह तो बड़े शर्म की ही बात कही जायेगी। यह कहना नितान्त असत्य और वास्तविकता से आँखें मूंदना है कि भारत के पास अपनी कोई राष्ट्रीय भाषा नहीं है। भारत के पास काफी सशक्त और सक्षम राष्ट्रीय भाषायें हैं।

साम्राज्यवादियों द्वारा थोपी गयी अंग्रेजी के अलावा भारत में तीन व्यापक राष्ट्रीय भाषायें और हैं। हिन्दी भारत की संवैधानिक राष्ट्रीय भाषा है। यह देश में सबसे बड़े क्षेत्र में और सबसे अधिक

लोगों द्वारा समझी जा सकने वाली भाषा है। भारत के आधे से अधिक क्षेत्र में हिन्दी जनता द्वारा स्वीकृत सम्पर्क भाषा है। भले ही अंग्रेजी के गुलाम राजनीतिज्ञों के कारण वह राजभाषा के रूप में व्यवहार में न लायी जाती हो।

हिन्दी के सम्बन्ध में एक कटु सत्य को हमें स्वीकार करना चाहिए। भले ही राजनीतिक कारणों से ऐसा प्रचार किया गया हो, लेकिन अहिन्दी भाषी लोगों के मन में यह शंका है कि यदि शासन व प्रशासन की भाषा हिन्दी हो गयी तो मातृभाषा होने के कारण हिन्दी भाषी लोगों को सुविधा होगी और वे आगे निकल जायेंगे। अंग्रेजी सभी के लिए परायी भाषा है। उसे सीखने में सभी को समान परिश्रम करना पड़ता है। अतः प्रतियोगी परीक्षाओं में अंग्रेजी माध्यम के कारण सभी के लिए अवसर समान होते हैं। इस तर्क में वास्तव में दम है। इसे एकदम अस्वीकार नहीं किया जा सकता है, लेकिन इस तर्क के आधार पर अंग्रेजी को लादे रहना स्वीकार नहीं किया जा सकता।

हमारे पास दो राष्ट्रीय भाषायें और हैं। प्राचीनकाल में संस्कृत तथा मध्यकाल में विकसित उर्दू-फारसी ने भी अखिल भारतीय स्वरूप पा लिया है। फारसी व अरबी विश्व की प्रसिद्ध समृद्ध भाषायें हैं और हमारे पड़ोसी राष्ट्रों से सम्पर्क के लिए उपयुक्त माध्यम भी हैं। इन राष्ट्रों से हमारे प्राचीन सांस्कृतिक व राजनीतिक सम्पर्क हैं। भारत के दूसरे सबसे बड़े समुदाय मुसलमानों की धार्मिक भाषा भी है। अतः भारत में अरबी-फारसी का तो महत्व हो सकता है। लेकिन सबसे नयी पूरी तरह अनुपयोगी, साम्राज्यवादियों द्वारा लादी गयी गुलामी की प्रतीक अंग्रेजी भाषा के लिए भारत में कोई स्थान नहीं हो

सकता।

संस्कृत भारत की प्राचीन धार्मिक, सांस्कृतिक व राजकीय भाषा है। भारत के किसी भी प्रान्त में इसका विरोध नहीं है। संस्कृत क्षेत्रीयता के दोष से पूरी तरह मुक्त है। भारत की सभी भाषाओं में शब्द संस्कृत के ही हैं। इसके अलावा उर्दू, अरबी व फारसी के अनेक शब्द अखिल भारतीय स्तर पर प्रयोग होने लगे हैं। इन्हें भी राष्ट्रीय भाषा के रूप में संस्कृत में अपनाया जा सकता है। अंग्रेजी के अतिरिक्त अनेक विदेशी भाषाओं के शब्द भी अपनाये जा सकते हैं, जो पूरे देश में समझे जा सकते हों।

इस प्रकार राष्ट्रीय भाषा संस्कृत और प्रान्तीय भाषाओं में केवल योग्यता का ही अन्तर रह जायेगा। दैनिक व्यवहार में प्रयोग करने योग्य मूल व्याकरण बहुत सरल होती है। आवश्यक संस्कृत व्याकरण केवल छह घण्टे में सीखी जा सकती है और एक सप्ताह के अभ्यास से ही उस पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। अतः यदि राजनीतिक इच्छाशक्ति हो और राष्ट्रीयता की भावना हो तो सरल और व्यावहारिक आधुनिक संस्कृत को सर्वमान्य सम्पर्क भाषा तथा राजकीय कामकाज की भाषा बनाया जा सकता है। यह भाषा अपने आप में इतनी समृद्ध और सशक्त है कि समस्त ज्ञान-विज्ञान को वहन करने में पूरी तरह सक्षम है। सरकार चाहे तो केवल एक वर्ष में इसे व्यावहारिक रूप से अंजाम दिया जा सकता है।

राजनीतिक रोटियां सेंकने वाले नेता संस्कृत को हिन्दुओं की धार्मिक भाषा बताकर विरोध कर सकते हैं। पहली तो मुसलमान कभी भी संस्कृत के विरोधी नहीं रहे, मुगलशासनकाल में भी नहीं, लेकिन वर्तमान समय में आग लगाने वाले नेताओं की कोई कमी नहीं है।

उनका भी इलाज है। संस्कृत के साथ ही मुसलमानों की धार्मिक भाषा अरबी को भी संस्कृत भाषा के ही समान महत्व मिलने से कोई कुछ कहने का अवसर ही नहीं पा सकेगा। प्रत्येक विद्यालय में अरबी के पठन-पाठन की व्यवस्था कर दी जाये। समस्या सिर नहीं उठा सकेगी।

अंग्रेजी न तो भारत की अपनी भाषा है और न ही किसी समुदाय की धार्मिक भाषा। यह केवल गुलामी की प्रतीक है। अतः अंग्रेजी को भारत से जाना ही चाहिए। अंग्रेजी के कारण संस्कृत उपेक्षित है और अन्य भाषायें फल, फूल नहीं पा रही हैं। यदि सावधानी से काम लिया जाये, तो अंग्रेजी के लिए ईसाइयों को भड़काया नहीं जा सकता। अंग्रेजी साम्राज्यवादी अंग्रेजों की भाषा है, शांति व अहिंसा के मसीहा प्रभु यीशु की नहीं। हम ईसा की पूजा करते हैं। मैकाले और डलहौजी की पूजा नहीं कर सकते।

जिस तरह दुनिया भर के यहूदियों ने अपनी मृतभाषा हिब्रू को पुनर्जीवित किया और उसे संचार माध्यमों तथा राजकाज की भी भाषा बना लिया। उसी तरह भारत भी संस्कृत को अपनाकर अपना राष्ट्रीय स्वाभिमान जगा सकता है और विज्ञान प्रौद्योगिकी व आर्थिक क्षेत्र में तेजी से प्रगति कर विश्व के अग्रणी राष्ट्रों में शामिल हो सकता है।

भारतीय राष्ट्र तथा संस्कृति को अंग्रेजी ने अपूर्णनीय क्षति पहुंचायी है। जीवन दर्शन, भाषा, साहित्य, कला तथा इतिहास ही संस्कृति का निर्माण करते हैं। भाषा की इसमें अहम् भूमिका है। भारतीय संस्कृति विश्व की दो सर्वाधिक समृद्ध भाषाओं संस्कृत तथा ईरानी या फारसी में ही सुरक्षित है। इन्हें जीवन्त रखना और दैनिक

व्यवहार में लाना राष्ट्रीय आवश्यकता है।

49. गरीबी और अधूरी शिक्षा ही विवादों की जड़

हिमालय से महासागर और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सुविस्तृत भारतीय राष्ट्र साम्प्रदायिक हिंसा की ज्वाला में एक साथ धधक उठा। एक हजार से अधिक लोगों की बलि लेकर और अरबों की सम्पदा भस्मीभूत कर भी यह आग बुझी नहीं है, केवल ढक-सी गयी है। 45 वर्ष पूर्व राष्ट्र के विभाजन के समय हुए राष्ट्रव्यापी साम्प्रदायिक दंगों के बाद यह सबसे बड़ी, सबसे व्यापक हिंसा थी। अयोध्या में शताब्दियों पुराने जर्जर ढांचे का ढह जाना तो एक चिंगारी का ही कार्य कर सका। काफी समय से भारतीय संस्कृति का वट वृक्ष सूखता जा रहा था और इस समय तक वह इतना सूख गया था कि एक छोटी-सी चिंगारी से ही धू-धू कर जल उठा। इसके बावजूद वह वट वृक्ष पूरी तरह राख नहीं हुआ। अपनी विराटता के कारण अभी भी वह अविचल है। ऊपर से सूखा दिखने के बावजूद जड़ें गहरी और हरी हैं, जीवित हैं। अतः महान 'विश्ववारा' संस्कृति को बचा लेने की गुंजाइश भी है और इसके लिए तत्काल उठ खड़े होने की आवश्यकता भी। इस कर्तव्य को अब प्रथम प्राथमिकता बनाना ही होगा।

साम्प्रदायिकता को राष्ट्र के लिए जहर माना जा रहा है, इसे सबसे अधिक घातक बताया जा रहा है। इससे इंकार भी नहीं किया जा सकता। लेकिन इससे लड़ने का जो तरीका अपनाया जा रहा है वह भी कम घातक नहीं है, यह तो चूहे मारने के लिए बिल्ली पालना हुआ। जब बिल्ली दूध पी गयी तो उसे मारने के लिए कुत्ता पाला

गया। एक दिन कुत्ते ने काट लिया तो उसे खत्म करने के लिए शेर पाल लिया और शेर कुत्ते के साथ-साथ पालने वाले को भी खा गया। कुछ ऐसा ही प्रयास हम साम्प्रदायिकता से लड़ने के लिए कर रहे हैं।

मुस्लिम साम्प्रदायिकता के कारण भारत का विभाजन हुआ, पाकिस्तान बना। फिर क्षेत्र और भाषा के नाम पर पाकिस्तान भी बंटा और बंगलादेश का जन्म हुआ। मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विरोध में हिन्दू साम्प्रदायिकता शुरू हुई। राष्ट्र का बहुसंख्यक वर्ग भी रोजी-रोटी की चिन्ता छोड़कर अयोध्या में एक ढांचा तोड़ने को ही परम धर्म मानने लगा। हिन्दुओं को कथित रूप से जागृत और संगठित करने का नया अभियान चला। करोड़ों रुपये एकत्र हो गये। पूरे देश में प्रचार हुआ। परिणामस्वरूप केरल में मुस्लिम लीग समर्थित सरकार के जवाब में उत्तर भारत के चार प्रमुख राज्यों हिन्दू साम्प्रदायिकता को समर्थन देने वाले दल की सरकारें बन गयीं। हिन्दुओं में धार्मिक-सामाजिक तो नहीं 'वोट बैंक' मार्का भेड़चाल राजनीतिक एकता उत्पन्न हुई, वह भी केवल बीस प्रतिशत।

पहले की तरह आज भी एक हिन्दू दूसरे हिन्दू को फलता-फूलता नहीं देख सकता। एक हिन्दू को फटे चीथड़ों में फुटपाथ पर जाड़े की रात काटते हुए देखकर हिन्दू एकता की भावना नहीं जगती। हर हिन्दू को दो वक्त सूखी रोटी ही मिल जाये, इसकी चिन्ता मंदिर भक्तों और मुस्लिम देशों के पेट्रोल से चलने वाले मोटर चालित रथयात्रियों को नहीं है। हिन्दू शिक्षित हो और अपना धर्म-ग्रन्थ पढ़ सकें, ऐसा तो वे चाहते ही नहीं। मुस्लिम विरोध के नाम पर हिन्दुओं में राजनीतिक एकता लाकर उसे वोट बैंक में बदलना और सत्ता प्राप्त करना ही परम लक्ष्य है।

हिन्दुत्व के नये ठेकेदार अभी तक 'हिन्दू' शब्द का अर्थ और हिन्दुत्व की एक निश्चित परिभाषा तक नहीं बता सके हैं। ये लोग हिन्दुत्व को थाली का बैगन बना देना चाहते हैं, जिससे राजनीतिक उद्देश्यों के लिए जब, जैसा चाहें, जितना चाहें, घुमा सकें। तर्क दिया जाता है कि हिन्दुत्व किसी एक व्यक्ति या एक ग्रन्थ पर आधारित पन्थ या सम्प्रदाय नहीं है। यह व्यापक धर्म है। मानवमात्र का धर्म है। अनेक विचारधाराएं, दर्शन व मत मतान्तर इसमें समाहित हैं। बिल्कुल सही है। तब तो किसी भी पन्थ को मानने वाले से विरोध होना ही नहीं चाहिए। साथ ही विशाल धार्मिक साहित्य-भण्डार में एक तो ग्रन्थ होगा ही, जिसकी हर बात सही हो, मानने योग्य हो। सैकड़ों -हजारों धर्म ग्रन्थ हैं, सभी पूज्य हैं, श्रद्धेय हैं। सभी में कुछ अच्छी बातें भी हैं। लेकिन हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों में विरोधाभास भी है। सभी को समान मानने से तो हिन्दू लोग आपस में ही लड़ते रहेंगे। सम्मान सभी ग्रन्थों का हो, लेकिन हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों में विरोधाभास भी है। सभी को समान मानने से तो हिन्दू लोग आपस में ही लड़ते रहेंगे। सम्मान सभी ग्रन्थों का हो, लेकिन एक तो तय करना ही पड़ेगा जिसे पढ़ना और उसकी बातों का पालन करना प्रत्येक हिन्दू का अनिवार्य कर्तव्य हो। जो उसका पालन न करे, उसे हिन्दू धर्म में रहने के लिए पालन करने को बाध्य किया जाये। उसके अतिरिक्त अन्य गुणों को अपनाये तो और अच्छी बात है।

यदि हिन्दुओं में धार्मिक गुणों के प्रति इतनी जाग्रति आ सके तो दृढ़ता से कहा जा सकता है कि उन मूलभूत गुणों के विपरीत कोई भी कानून या किसी भी अदालत का फैसला नहीं मानेंगे। लेकिन एक धार्मिक आचार संहिता का पालन तो स्वीकार करना ही होगा

और दृढ़ता से कहना होगा कि उसके अनुकूल हर कानून और निर्णय हर हिन्दू के लिए मान्य है, तथा उसके विपरीत कोई भी बात स्वीकार्य नहीं है। ऐसा कहने के पीछे मेरा विश्वास है कि हिन्दू धर्म के विपरीत कोई निर्णय संसद या अदालत दे ही नहीं सकती। यह अराजकता तो छोड़नी ही पड़ेगी कि जो निर्णय अपने अनुकूल हो, लाभदायक हो उसे मानेंगे और जो अपने प्रतिकूल हो उसे नहीं मानेंगे।

विभिन्न अलगाववादी मानसिकता, क्षेत्र, भाषा, प्रान्त, जाति व सम्प्रदायों के झगड़ों का कारण आर्थिक कमजोरी और गरीबी के साथ ही वास्तविक धर्म-चेतना का अभाव भी है। आर्थिक सम्पन्नता हो, शिक्षा हो तो राजनीति के ठेकेदार लोगों को अपने स्वार्थों के लिए भड़का नहीं सकेंगे। यदि वास्तविक धर्म का ज्ञान हो, सभी धर्मों का अध्ययन हो तो साम्प्रदायिक संकीर्णता अपने आप समाप्त हो जायेगी। अतः सभी को धर्म चेतना तथा प्राचीन विश्व इतिहास की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए। इससे लोग स्वयं का एक विश्वमानव परिवार का अंग, समझेंगे तथा संकीर्ण मान्यताओं में नहीं फसेंगे।

भारत की वर्तमान संसदीय प्रणाली, प्रशासनिक व्यवस्था तथा न्याय व्यवस्था पूरी तौर पर साम्राज्यवादी अंग्रेजों की देन है। यह सम्पूर्ण व्यवस्था तन्त्र ही राष्ट्र को आर्थिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक रूप से खोखला करने तथा लोगों को अकर्मण्य, कुण्ठित तथा अनुत्पादक बना देने के लिए उत्तरदायी है। इससे छुटकारा पाये बिना विकासवादी जीवन दर्शन प्रत्येक नागरिक को विकास का अवसर देने, शिक्षा व रोजगार देने की अवधारणा व्यावहारिक रूप नहीं ले सकेगी।

पहले हम 'न्याय प्रणाली' पर विचार करते हैं।

वर्तमान न्याय प्रणाली में जटिल और उबाऊ व्यवस्था-तंत्र तो है ही लेकिन न्याय की अवधारणा तक कहीं नहीं है। तथाकथित न्यायालय तथा न्याय प्रक्रिया में न्याय न मांगा जाता है न मिलता है। केवल मुकदमा 'लड़ा' जाता है, अर्थात् न्यायालय में न्याय के नाम पर जो कुछ भी मिलता है, वह केवल एक लक्ष्य है, प्रतिष्ठा का प्रतीक एक किला है, जिसे जीतने के लिए 'मुकदमा लड़ा' जाता है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि न्याय पाने की प्रक्रिया एक लड़ाई है, संघर्ष है, युद्ध है और सभी जानते हैं कि लड़ाई में वही जीतता है, जिसके पास अधिक शक्ति, संसाधन तथा रणनीति बनाने की कूटनीतिक बुद्धि होती है।

सभी लोग जानते और समझते हैं कि मुकदमा जीतने के लिए धनबल, जनबल, छल-प्रपंच, कूटनीति तथा अच्छा वकील व प्रतिपक्षी को थका देने वाली रणनीति जरूरी है। न्याय का पक्ष हो यह बिल्कुल भी जरूरी नहीं है।

सबसे प्रमुख उल्लेखनीय तथ्य यह है कि न्याय देने की जिम्मेदारी न्यायाधीश की नहीं है। न्यायाधीश तो केवल रेफरी होता है। मुकदमा लड़ने वाले दोनों पक्षों के सेनापति वकील होते हैं। न्यायाधीश केवल दोनों पक्षों के वकीलों की पैंतरेबाजी देखता है और मुक्केबाजी के रेफरी की तरह मुकदमेबाजी के पेशेवर खिलाड़ियों के दांवपेंच तटस्थ भाव से देखता रहता है। यदि मुकदमेबाजी खेल के किसी लिखित नियम अर्थात् कानून के विरुद्ध कोई वकील चाल चलता है तो वह टोक देते हैं। अन्त में वह विद्वान् न्यायाधीश केवल यह निर्णय दे पाता है कि किस पक्ष का वकील विजयी रहा।

मुकदमेबाजी में पेशेवर वकीलों की तरह ही पेशेवर गवाहों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण अथवा छिपी हुई नहीं है। व्यक्तिगत सम्बन्धों या धन के बल पर झूठी गवाही दिला देना या नकली प्रमाण या दस्तावेज पेश कर देना भी अनुभवी और सक्षम वकील के लिए जरा भी कठिन कार्य नहीं है।

ऐसी स्थिति तथा प्रणाली में न्यायाधीश चाहे जितना योग्य, न्यायकारी, ईमानदार और धर्मराज सा पवित्र विवेक वाला हो, लेकिन वह पूरी तरह से बाध्य होकर वही निर्णय देते हैं, जो वकीलों की रणनीति तथा पेश किये गये तथ्यों, प्रमाणों के आधार पर कथित रूप से सिद्ध हो पाता है, भले ही उस न्यायाधीश की दृष्टि से वह निर्णय पूरी तरह से न्याय विरुद्ध ही क्यों न हो। यदि न्यायाधीश ने किसी अपराध को घटित होते समय स्वयं देखा हो और अपराधी को प्रत्यक्ष रूप से स्वयं पहचानता हो, लेकिन वह अपनी प्रत्यक्ष जानकारी के आधार पर मुकदमे में निर्णय नहीं कर सकता। यदि वह अपनी प्रत्यक्ष और निर्भान्त जानकारी को प्रस्तुत करना चाहे तो उसे सामान्य गवाह की तरह अपनी बात कहनी पड़ेगी। अन्य सच्चे व झूठे गवाहों की तरह उसे भी झूठे गवाहों की तरह उसे भी वकीलों की तीखी जिरह का जवाब देना पड़ेगा, और हो सकता है कि वह अपनी सही बात को सिद्ध न कर सके और नकली गवाहों व नकली प्रमाणों के आधार पर उसे ही गलत सिद्ध कर दिया जाये।

यदि न्यायाधीश इस दांवपेच की उपेक्षा कर 'वास्तविक न्याय' करना चाहे तो उस पर भ्रष्टाचार का आरोप आसानी से लगाया जा सकता है और वकील यदि वास्तविकता का पता लगाकर सच न्याय के लिए कार्य करना चाहे तो उसकी आजीविका ही खतरे में पड़

जायेगी। वह तो दांवपेंच दिखाने का ही पैसा अपने मुवक्किल से पाता है।

अतः आवश्यकता है कि पूरी प्रणाली को बदलने की। प्राचीन भारत में सम्राट विक्रमादित्य का न्याय बहुत प्रसिद्ध है। उनके प्रमुख न्याय निर्णयों का विवरण देखने से भी स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में तथ्य क्या है। इस बीच वह अपने परिवार के साथ ही हो सकता है। समाज व राष्ट्र के लिए काफी उपयोगी व महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता था। लेकिन मुकदमेबाजी में उलझे होने के कारण मानसिक तनाव ने उसे अच्छे कार्य की ओर सोचने का अवसर ही नहीं दिया, और यह भी हो सकता है कि नकली प्रमाणों के आधार पर उस निर्दोष व्यक्ति को सजा हो जाये तथा कुण्ठा के कारण वह समाज का हित करने के स्थान पर वह अपराधी बन जाये।

इस प्रकार मुकदमेबाजी पर आधारित न्याय प्रणाली पूरी तरह से विकास में बाधक है। अतः विकासवाद की स्थापना में यह प्रमुख बाधा है। इसलिए यह अनिवार्य है कि निर्दोषों व सज्जन नागरिकों, समाज के लिए हितकर प्रतिभाओं का पता लगाने का दायित्व न्याय करने वाले का होता है। पक्षकारों की यह जिम्मेदारी नहीं थी कि वह अपने पक्ष के प्रमाण प्रस्तुत करें। न्यायपालिका स्वयं अपने तरीके से वास्तविकता का पता लगाने से लेकर न्याय दिलाने तक का दायित्व वहन करती थी।

वास्तव में मुकदमेबाजी किसी भी निर्दोष व्यक्ति को परेशान करने का साधन मात्र बनकर रह गयी है। यह अपराधी के आजाद घूमने का साधन भी है। किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध बिना किसी आधार के मुकदमा कायम कराया जा सकता है। अब मुकदमे का

निर्णय आने तक दस-बीस वर्ष वह सारे आवश्यक कार्य छोड़कर अदालत के चक्कर लगाये तथा अपने सीमित संसाधनों तथा बहुमूल्य समय को स्वयं को अकारण दण्डित होने से बचने के लिए, विकास के अवसर से वंचित होने से बचाने के लिए इस प्रणाली को पूरी तरह से बदला जाये। एक ऐसी न्याय व्यवस्था की स्थापना की जाये, जिसमें, सरल, सस्ता व वास्तविक न्याय मिल सके। वह न्याय भी निश्चित सीमित समय के अन्दर मिले तथा अभियोग लग जाने मात्र से किसी व्यक्ति को जरा भी कष्ट न हो। साथ ही अपराध सिद्ध हो जाने पर अपराधी को कड़ा से कड़ा दण्ड भी मिल सके।

अनिवार्य रोजगार के सिद्धान्त को लागू करना भी जरूरी है। पर इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि केवल ऊपरी तौर पर सबको रोजगार देकर श्रेय ही न लूटा जाये, वास्तविक अर्थों में लोगों को कार्यों से नियोजित कर राष्ट्र के विकास में भागीदार बनाया जाये। यदि अधिकांश लोगों को अनुपयोगी कार्यों में नियोजित कर दिया गया तो इससे अन्ततः राष्ट्र की अर्थव्यवस्था चरमरा जायेगी तथा बेकारी और बढ़ेगी। स्वतन्त्रता के बाद भारत में यही हुआ है। इसीलिए बेकारी दूर करने के जितने प्रयास किये गये, बेकारी उतनी ही बढ़ती गयी।

यदि राष्ट्र की जनशक्ति को उत्पादक कार्यों में नियोजित किया जाये तो समाज व राष्ट्र की समृद्धि बढ़ती है तथा रोजगार के अवसर भी उत्पन्न होते हैं। इसका उदाहरण एक ओर जापान है तथा दूसरी ओर अरब राष्ट्र। जापान ने कार्यकुशलता, लगन तथा परिश्रम से उत्पादक आजीविका उत्पन्न की। लेकिन अरब राष्ट्रों को तेल के रूप में प्रकृति का वरदान मिल गया, जिसका दोहन किया गया।

उत्पादक आजीविका उसे कहा जा सकता है जिससे संसाधन उत्पन्न हो। पृथ्वी के गर्भ में जो खनिज पड़ा है, वहां पर उसकी उपयोगिता शून्य है। भूगर्भ से निकालकर पृथ्वी पर लाने से उसको संसाधन का स्वरूप मिल पाता है। अतः खनिज को निकालना उत्पादन कार्य है। इसी प्रकार से खनिज का शोधन भी कहा जा सकता है।

लेकिन खनिज का परिवहन उत्पादन कार्य नहीं है। यदि खान के निकट ही शोधन का प्रबन्ध हो तथा आवश्यक वस्तुओं का निर्माण भी वहीं किया जाये, तो लागत कम होगी। लेकिन यदि खान से निकालकर लौह अयस्क, पांच सौ किलोमीटर दूर ले जाकर उसका शोधन किया जाये तथा फिर विपरीत दिशा में एक हजार किलोमीटर दूर ले जाकर कोई वस्तु बनायी जाये तो उसकी लागत कई गुना बढ़ जायेगी। अतः परिवहन अनुत्पादक कार्य है। फिर भी परिवहन उपयोगी है और अनिवार्य भी। अतः परिवहन तो करना पड़ेगा। लेकिन कम से कम परिवहन में उपभोक्ता तक पहुंच जाये तो उचित होगा।

उत्पादक आजीविका से मंहगाई कम होती है तथा अनुत्पादक आजीविका से मंहगाई बढ़ती है। जैसे यदि खान से लोहा अधिक निकाला जाता है तो आपूर्ति अधिक हो जाने से कीमतें घटेंगी। लेकिन यदि खान से लोहा न निकालकर उपलब्ध लोहे को ही बार-बार गलाकर या अन्य विधियों से रूप बदलकर बाजार में भेजा जायेगा तो प्रति इकाई मात्रा लोहे की कीमत बढ़ती जायेगी।

मान लीजिए कि खान से निकाले गये लोहे की 'छड़ें' बना ली गयीं। अब यदि लोहा कम है और उन्हीं छड़ों को गलाकर बाल्टी

बनानी पड़े तो लागत बढ़ जायेगी। यदि खान से और लोहा निकालकर बाल्टियां बनायी जायें तो लागत कम आयेगी।

विकास के लिए समान अवसर तभी सम्भव है, जब शिक्षा, प्रशिक्षण व प्रतियोगिता के लिए आवश्यक संसाधन सभी को समान रूप से उपलब्ध हो। धन के अभाव में कोई भी शिक्षा या समुचित प्रशिक्षण से वंचित न रह जाये तथा प्रतियोगियों में भी अधिक संसाधनों सहित किसी तरह की बाधा या भेदभाव न हो।

इसके लिए पहली आवश्यकता है कि कम से कम हाईस्कूल स्तर तक सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था सार्वजनिक व्यय से की जाये। सभी विद्यालयों के पाठ्यक्रम तथा शिक्षण स्तर व सुविधायें समान हों। हाईस्कूल तथा विद्यार्थी के आवास, वस्त्र, भोजन के साथ ही शिक्षण व्यय की पूरी व्यवस्था शासन की तरफ से हो तथा विद्यार्थी अपने माता-पिता पर निर्भर न हो। इससे शिक्षा पर माता-पिता के आर्थिक स्तर का प्रभाव नहीं पड़ेगा। अनिवार्य शिक्षा की उच्चतम सीमा इण्टरमीडिएट या स्नातक भी हो सकती है जो राज्य के संसाधनों पर निर्भर करेगी। इसके लिए सभी नागरिकों से आय का एक अंश शिक्षा कर के रूप में लिया जा सकता है।

अनिवार्य शिक्षा के बाद किसी भी पाठ्यक्रम में प्रवेश योग्यता और रुचि के आधार पर होना चाहिए। इसके साथ ही वह स्वावलम्बी शिक्षा भी हो। अर्थात् ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि छात्र उस शिक्षा का व्यय स्वयं ही वहन करें और वह माता-पिता या सरकार पर निर्भर न रहे।

ऐसी व्यवस्था में रोजगार में आरक्षण की कोई आवश्यकता

ही नहीं रह जायेगी। न कोई जातिगत आधार पर आरक्षण मांगेगा और न आर्थिक आधार पर।

इसके साथ ही सभी को रोजगार मिलना भी नितान्त आवश्यक है। इसके बिना सामाजिक न्याय और विकास की बात ही व्यर्थ है। सभी को उसकी इच्छा के अनुसार रोजगार देना भले ही सम्भव न हो, लेकिन इतना तो होना ही चाहिए, कि वह आवास, भोजन, वस्त्र आदि की अनिवार्य आवश्यकतायें पूरी कर सके।

सामाजिक न्याय की अवधारणा में नारी की आर्थिक व सामाजिक स्वाधीनता भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समाज का आधा भाग विकास की दौड़ में पीछे रह जाये तो सामाजिक न्याय विडम्बना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यद्यपि सभी को समान अवसर के अन्तर्गत बालिकाएँ भी स्वभावतः आ जाती हैं, लेकिन सामाजिक स्थिति के कारण इस ओर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। नारी को सामाजिक रूप से समानता के स्तर पर लाने के लिए उसका आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होना बहुत आवश्यक है। पुत्री को पिता की सम्पत्ति में बिना शर्त व बिना अपवाद अनिवार्य अधिकार तथा नारी प्रकृति के कार्यों में वरीयता के आधार पर रोजगार देने सहित सभी सम्भव उपाय नारी की आर्थिक स्वाधीनता के लिए किये जाने चाहिए। नारी के लिए आरक्षण भी उचित है।

किसी भी समुदाय से सम्बद्ध ऐतिहासिक धरोहर की रक्षा की जानी चाहिए। किसी भी प्राचीन भवन में तोड़फोड़ और उसके मूल ढांचे में परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए, यथासम्भव जो निर्माण जहां है, जैसा है, उसे वहीं पर और वैसा ही सुरक्षित रखना चाहिए।

इसी प्रकार प्राचीन भाषा, साहित्य, दर्शन और कला की

धरोहर को भी संरक्षण दिया जाना चाहिए। इसमें जाति, वर्ग या समुदाय के आधार पर किसी तरह का कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

सामाजिक न्याय का लक्ष्य है वास्तविक एकता और समरसता। इसके लिए न तो हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तान जैसा कट्टरपंथी नारा उचित है और न ही सभी का तुष्टीकरण करके राजनीतिक लक्ष्य पाने का प्रयास। वैज्ञानिक विकासवाद की दृष्टि से सम्पूर्ण मानव जैव विकास का एक ही चरण है। अतः मानव जाति में प्राकृतिक एकता व समरसता है। भेद-भाव तो कृत्रिम है, बनावटी है और नकली है।

समरसता के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार उस समाज के अनुसार हो, जिसमें वह रहता है। भाषा और रहन-सहन का सामान्य तरीका पूरी तरह से उसी समाज का अपनाया जाये। निजी जीवन प्रत्येक व्यक्ति का अपना होता है। जहां तक समाज प्रभावित न होता हो, व्यक्ति को पूरी छूट है।

सामाजिक समरसता के लिए आवश्यक है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कोई युवती मिनी स्कर्ट पहनकर खेतों में न घूमें। इसी तरह से न्यूयार्क में घूंघट निकालकर बाजार जाना हास्यास्पद लगेगा। इसमें अपने समुदाय की मान्यताओं की दुहाई देकर डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग बनाने का प्रयास वास्तविक सामाजिक समरसता में बाधक है। अंग्रेजी में एक कहावत भी है कि यदि रोम में रहो तो वैसा ही करो जैसा रोमन करते हैं।

कोई व्यक्ति किस विचारधारा या दर्शन को मानता है या उसकी पूजा पद्धति क्या है, यह निजी विषय है। इसमें चाहे जितना

अन्तर हो, सामाजिक समरसता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। लेकिन भाषा, वेशभूषा, शिष्टाचार के तरीके तथा सामाजिक व्यवहार तो समाज के अनुसार अपनाना ही चाहिए। रुचि के आधार पर व्यक्ति किसी भी भाषा का विद्वान् तो बन सकता है, लेकिन व्यवहार की भाषा तो वही रहेगी जो समाज की भाषा है।

50. विकासवाद ही साम्प्रदायिक विद्वेष का समाधान

इस सृष्टि या अनन्त ब्रह्माण्ड का क्रमिक विकास ही हुआ है कोई इकाई पूर्ण विकसित रूप में अचानक प्रकट नहीं हो गयी। करोड़ो वर्षों में एक कोशीय जन्तु अमीबा क्रमशः विकसित होकर आज मानव के रूप में आ सका है। संभव है कि लाखों वर्षों पश्चात् मानव से भी अधिक विकसित कोई प्रजाति अस्तित्व में आये। गर्भ में आने के समय भ्रूण भी एक कोशीय जीव ही होता है जो 9 माह मे विकसित होकर मानव शिशु के रूप में आ पाता है जन्म के पश्चात् भी कई वर्षों में वह पूर्ण रूपेण युवा मानव बन पाता है।

अतः मुझे नहीं लगता की सभी को अचानक समान स्तर पर लाया जा सकता है। आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, वैचारिक व धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से एकदम सभी को एक स्तर पर नहीं लाया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र का क्रमशः विकास ही संभव है। इस विचार को विकासवाद कहा जा सकता है। इस सिद्धान्त के तहत मेरी मान्यता है कि सभी को विकास का अवसर उपलब्ध कराया जाना चाहिए। प्रत्येक अपने स्तर से कुछ ऊपर उठ सकता है।

इसी प्रकार से धार्मिक चेतना या अध्यात्म का भी क्रमिक विकास हुआ है। इस विकास को जड़ नहीं बनाया जाना चाहिए। लाखों वर्ष पहले विचारशील मनुष्य को प्रकृति के पीछे की किसी अदृश्य चेतन सत्ता का आभास हुआ, उसके बाद उस अज्ञात शक्ति को समझने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया गया। धर्म या अध्यात्म का यह प्रारम्भिक स्वरूप था। प्रकृति के पीछे पिछले रहस्य की खोज में यहीं से विज्ञान का जन्म तथा दर्शन का आदि भी माना जा सकता है अर्थात् आदि में तो विज्ञान, धर्म व दर्शन एक ही बिन्दु पर हैं।

बाद में धर्म आस्था प्रधान बना, दर्शन चिन्तन प्रधान हुआ तथा विज्ञान प्रमाण आधारित हो गया जिससे तीनों विधायें अलग हो गयीं। आस्था प्रधान होने से धर्म के स्वाभाविक विकास में बाधा पड़ी और वह सम्प्रदायों के बीच उलझ गया। यदि विकासवाद को स्वीकार कर लिया जाये तो मानव का शत्रु बनाने वाली कट्टरपंथी साम्प्रदायिकता स्वतः नष्ट हो जायेगी।

विज्ञान ने विकासवाद सहज स्वीकार किया है। अतः विज्ञान का तीव्र विकास हो रहा है और उसमें कहीं विवाद की संभावना नहीं है। सबसे पहले कणाद ने खोज कर बताया कि द्रव्य छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है। उसे परमाणु कहते हैं। डाल्टन ने कहा कि परमाणु को विभाजित नहीं किया जा सकता। बाद में रदरफोर्ड ने बताया कि परमाणु को भी विभाजित किया जा सकता है और वह स्वयं प्रोट्रान, न्यूट्रान व इलेक्ट्रान आदि सूक्ष्म कणों से मिलकर बना है।

अब यदि विज्ञान में विकासवाद को स्वीकार न किया गया होता तो डाल्टन को मानने वाले सम्प्रदाय के लोग रदरफोर्ड को

मानने वाले सम्प्रदाय के लोगों से लड़ते लेकिन विज्ञान ने दोनों को महान् वैज्ञानिक का सम्मान देते हुए आगे खोज जारी रखी।

इसी प्रकार धर्म के क्षेत्र में भी है। अदृश्य चेतन सत्ता की अनुभूति के बाद मनीषियों ने चिन्तन, ध्यान आदि के माध्यम से उस चेतना को समझने का प्रयास किया। इस दिशा में मानव जाति के पास उपलब्ध प्राचीनतम साहित्य वेद हैं उसके बाद उपनिषद आरण्यक, सूत्र, दर्शन, श्रीकृष्ण की गीता बौद्धों का धम्मपद इसाईयों की बाईबिल, मुसलमानो की कुरआन, व सिखों का गुरुग्रन्थ साहिब आदि प्रमुख ग्रन्थ क्रमशः सामने आते गये।

अब यदि वेद को मानने वाले कृष्ण को मानने वालों को गाली देने लगें और बुद्ध को मानने वाले वेद के अनुयाईयों को बुरा-भला कहें तो इसे विवेकहीनता ही कही जा सकती है। हजरत मोहम्मद साहब, गुरुनानक देव, गौतम बुद्ध व कृष्ण के अनुयायी यदि आपस में एक दूसरे से घृणा करें तो इससे धर्म के स्वाभाविक विकास में बाधा पड़ती है। धर्म विद्या के विभिन्न मनीषियों व तत्ववेत्ताओं के सम्प्रदायों को मानने वालों में आपसी विवाद का एकमात्र कारण धर्म के क्षेत्र में विकासवाद को स्वीकार न किया जाना है।

यदि हम धर्म के विकास को स्वीकार कर लें तो एक ही मन्दिर में वेद, गीता, पुराण, धम्मपद, बाइबिल, कुरआन, जेन्दावेस्ता, गुरु ग्रन्थ साहिब साथ ही रख सकते हैं। सभी व्यक्ति विभिन्न समयों पर हुए धर्म के विकास का सम्यक् अध्ययन कर अपने समय की आवश्यकता के अनुरूप उसमें से समुचित प्रकाश पा सकता है। इस प्रकार क्रमिक विकास का सिद्धान्त साम्प्रदायिक

टकराव को पूर्णतः समाप्त कर धार्मिक एकता व समन्वय को स्वाभाविक रूप में स्थापित कर सकता है।

प्रमुख तथ्य यह है कि धर्म के मनीषी किसी न किसी रूप में विकास की बात को मान्यता देते आये हैं, पौराणिक परम्परा में इसे अवतारवाद के रूप में मान्यता मिली। राम, कृष्ण व बुद्ध को एक ही शक्ति का विभिन्न समयों पर हुआ अवतार माना गया। यह स्वीकार किया गया कि इनके द्वारा प्रतिपादित धर्म समय के साथ अवसर के अनुकूल धर्म का क्रमशः विकास है।

इसी प्रकार ईसाई भी ईसा से पूर्व मूसा आदि पैगम्बरों या ईश्वरीय धर्म के संदेशवाहकों को स्वीकार करते हैं। मुसलमान विचार धारा में भी मौहम्मद साहब से पूर्व अनेक पैगम्बरों का होना स्वीकार किया गया है। यह माना गया कि कुरआन से पूर्व अन्य ग्रन्थ भी ईश्वर की कृपा से मनुष्य जाति को धर्म का प्रकाश देते रहे हैं तथा कुरआन उस क्रम में अन्तिम पुस्तक है।

भूल तो केवल बाद में अनुयायियों से हो गयी। गीता व पुराणों की रचना के बाद तो भारत में ही लोगों ने वेद व उपनिषद पर ध्यान नहीं दिया। ईसा व इस्लाम को मानने वालों ने भी यही किया। ईसाई केवल न्यू टेस्टामेंट पढ़ते हैं ओल्ड टेस्टामेंट किसी के पास नहीं मिलेगी। मूसा की किताब की ओर ध्यान देने की जरूरत भी कोई नहीं समझता।

इस भूल को सुधारा जाना चाहिए। धर्म के क्षेत्र में भी विज्ञान की तरह विकासवाद को स्वीकार किया जाना चाहिए। जब विज्ञान ने सिद्ध किया कि मनुष्य पहले बन्दर था तो किसी को बुरा नही लगा। इसी प्रकार कोई यह भी जिद नहीं करता कि यदि मनुष्य पहले

बन्दर था तो वह फिर से बन्दर हो जाये। इसी प्रकार यदि यह कहा जाये कि पाकिस्तान, अफगानिस्तान या बांग्लादेश के पहले के निवासी वेद या गीता के धर्म को मानते थे तो इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है। इसी तरह यह भी जिद करने की जरूरत नहीं है कि वे पुनः वेद या गीता के धर्म को स्वीकार कर ही लें।

वास्तव में वेद से लेकर गुरु ग्रन्थ साहिब तक धर्म के क्रमिक विकास को स्वीकार किया जाना चाहिए और विकास क्रम के हर स्वरूप का निष्पक्ष भाव से सभी को अध्ययन अनुशीलन करना चाहिए।

इसलिए कोई भी व्यक्ति जिस भी ग्रन्थ की जिस बात को अपने अनुकूल पाये उस पर आचरण करे। धर्म एक है, उसका सतत् प्रवाह एक है आदि से आज तक उसका सतत् विकासक्रम है अतः धर्म की दृष्टि से सभी मानव वैसे ही एक हैं जैसे विज्ञान की दृष्टि से। इसलिए किसी तरह के भेदभाव की कोई गुंजाइश बचती ही नहीं है।

51. नाकाम ही रहेंगी अधूरी कोशिशें : विकासवादी अर्थव्यवस्था ही एकमात्र विकल्प

पश्चिम की औद्योगिक क्रान्ति से चकाचौंध तथा समाजवादी आदर्श के नाम पर सरकारीकरण के दो पाटों में हमारी अर्थव्यवस्था बुरी तरह पिसकर चूर-चूर हो गयी। आज हम कर्ज के ऐसे दुश्चक्र में फंस गये हैं कि ब्याज अदा करने के लिए भी कर्ज मांगना पड़ रहा है और उसे पाने के लिए अपनी मुद्रा रुपये का भारी अवमूल्यन करना

पड़ा है। आयात से प्रतिबन्ध उठा लिये गये हैं और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को खुलकर खेलने की छूट देनी पड़ी है। इन सब आत्मघाती निर्णयों के समर्थन में केवल यही कहा जा रहा है कि अर्थव्यवस्था को किसी तरह पटरी पर ले आने का और कोई रास्ता ही नहीं बचा है

भारत जैसे विशाल और प्राचीन राष्ट्र की यह दयनीय स्थिति एक दिन में नहीं हो गयी। इसके लिए दशकों से चली आ रही नीतियां जिम्मेदार हैं। आजादी के बाद हमने जो आर्थिक नीतियां और प्राथमिकताएँ तय की, उन्हीं में भूल हो गयी। अर्थव्यवस्था की दिशा ही गलत चुन ली गयी। अर्थनीति का वह पौधा पश्चिम से लाकर देश में रोपने का प्रयास किया गया। जिसके अनुकूल न यहाँ की मिट्टी थी और न ही हवा-पानी। परिणामस्वरूप वह पौधा तो सड़ ही गया और अपने यहाँ की पौध भी खाद-पानी न मिलने से सूख गयी।

स्वाधीनता के समय भारत की अर्थव्यवस्था जर्जर थी। साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी शोषण के कारण गरीबी से दबी हुई थी। लेकिन इसके बावजूद देश में कारीगर थे और उनके पास परम्परागत शिल्प था। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व भारत का शिल्प बहुत उन्नत था। लेकिन उपनिवेशवादियों ने अपना माल खपाने के लिए भारत के शिल्प को नष्ट किया और देश को यूरोप की मिलों का मोहताज बनाने का प्रयास किया। इसके बावजूद आजादी के समय देश में पर्याप्त परम्परागत शिल्प बचा हुआ था, भले ही उतना उन्नत नहीं रह गया था क्योंकि यूरोप की मिलों का उत्पादन भारत के मध्यम और निम्न वर्ग की पहुंच से बाहर था। वह केवल उच्च वर्ग की शान का प्रतीक बना रहा,

इसीलिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कुटीर व लघु उद्योगों को बढ़ावा देने की बात कही थी, जिससे वह शिल्प विकसित हो और शिल्पकारों को सम्मानजनक आजीविका मिलती रहे। लेकिन उनके उत्तराधिकारी और भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने इस बात को नहीं माना। नेहरू पश्चिम की औद्योगिक चमक से बहुत अधिक प्रभावित थे। उन्होंने बड़े उद्योगों का रास्ता चुना। उन दिनों बड़े उद्योगों में लगाने हेतु भारी पूंजी निजी क्षेत्र के पास भी नहीं थी और समाजवाद उस समय नया फैशन था। अतः बड़े उद्योगों की जिम्मेदारी सार्वजनिक क्षेत्र अर्थात् सहकारी क्षेत्र को सौंपी गयी। गरीब देश की सरकार भी गरीब थी। अतः विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से तथा बड़े राष्ट्रों से कर्ज मांगा गया। यहीं से भारत का कर्ज के चक्रव्यूह में फंसना शुरू हो गया।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग बुरी तरह असफल हुए। इसका प्रमुख कारण था उनका उत्पादकता मूलक न होना। उनमें रोजगार को प्राथमिकता दी गयी। रोजगार भी निष्पक्ष भाव से सुयोग्य सूक्ष्म लोगों को नहीं, अपितु राजनीतिक आधार पर अयोग्य लोगों को। इससे उत्पादन भी गिरा और गुणवत्ता भी। अधिकांश सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग घाटे में चलने लगे। लेकिन सरकार ने समाजवाद के नाम पर उन्हें बनाये रखा और बजट में उत्पादक खर्चों में कटौती करके उस घाटे को पूरा करती रही। यह कर्ज में मिली पूंजी का भारी दुरुपयोग था और यही कारण है कि मूल तो दूर, ब्याज वापस करना भी कठिन होने लगा। उद्योग लगाने के लिए मिला कर्ज हमारे लिए बोझ बनकर रह गया। आज देश के प्रत्येक नागरिक पर कर्ज देश की औसत प्रति व्यक्ति वार्षिक आय का पांच गुना है। अर्थात् प्रत्येक

नागरिक को अपने पांच वर्षों की सम्पूर्ण आय विदेशी ऋण चुकाने के लिए देनी पड़ेगी।

अन्त में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी को भी कहना पड़ा था कि सार्वजनिक उद्योग देश के लिए सफेद हाथी सिद्ध हो रहे हैं। इन सफेद हाथियों को खिलाने के लिए गरीब जनता को पेट काटना पड़ रहा है। विडम्बना यह है कि यह सब हो रहा है समाजवाद के नाम पर जो गरीबों के उत्थान या उनको उचित अधिकार दिलाने का दावा करता है।

अर्थव्यवस्था अपनाने के मामले में पूंजीवाद और समाजवाद या साम्यवाद के नाम पर बहस चलती है। लेकिन हमें सोचना पड़ेगा कि भारत इतना सम्पन्न देश नहीं है कि पूंजीवादी विलासिता को ढो सके। इसी तरह साम्यवाद और समाजवाद हमारी परम्पराओं और प्रकृति के अनुकूल नहीं है। सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप में साम्यवाद की असफलता उजागर हो गयी है। वास्तव में सात दशकों के प्रयोग से सिद्ध हो चुका है मार्क्सवाद व्यावहारिक नहीं है। अतः हमें अपने राष्ट्र की संस्कृति, प्रकृति और परिस्थिति के अनुकूल जीवनदर्शन खोजना होगा। वैज्ञानिक विकासवाद ही आज की आवश्यकता है। जिसमें सभी को अपनी स्थिति से एक सीढ़ी चढ़ने का अवसर मिले। पूंजीवाद केवल पूंजीपतियों का भला कर सकता है और साम्यवाद केवल सत्तारूढ़ तानाशाहों का। सर्वे भवन्तु सुखिनः का आदर्श तभी प्राप्त हो सकता है जब सभी को विकास का अवसर देने वाला विकासवाद अपनाया जाये। पूंजीपतियों को बड़े उद्योग लगाकर हवाई जहाज बनाने दिया जाये तथा गांव के निर्धन मोची को जूता बनाने और जीविका चलाने का पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराया

जाये।

इसके लिए बड़े उद्योगों और लघु व कुटीर उद्योगों का क्षेत्र बांटना होगा। प्रतिरक्षा, परिवहन, ऊर्जा जैसे क्षेत्र ही बड़े उद्योगों को दिये जायें जो लघु उद्योगों में संभव नहीं है। उपभोक्ता वस्तुएँ जो कुटीर व लघु उद्योगों में बन सकती हैं, उन्हें बड़े उद्योगों के लिए प्रतिबन्धित रखा जाये। जब बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा नहीं होगी तो लघु व कुटीर उद्योग पनपेंगे, शिल्प में गुणवत्ता बढ़ेगी तथा बेरोजगारी समाप्त हो जायेगी। मनोरंजन तथा विलासिता की वस्तुएँ तो बड़े उद्योगों में बननी ही नहीं चाहिए। बड़े उद्योग केवल राष्ट्र की प्रतिरक्षा, परिवहन व ऊर्जा जैसी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करें तथा निर्यात कर बहुमूल्य-विदेशी मुद्रा कमायें। घरेलू उपभोक्ता बाजार में उनका प्रवेश होना ही नहीं चाहिए।

देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए उत्पादकता के सिद्धान्त पर विशेष ध्यान देना होगा। जिन वस्तुओं से 'सम्पदा' में वृद्धि नहीं होती, उनका निर्माण 'उत्पादक कार्य' नहीं कहा जा सकता। विलासिता तथा मनोरंजन की सारी वस्तुएं ऐसी ही हैं। कृषि उपज, खनिज, ऊर्जा के अलावा उत्पादन की क्षमता रखने वाली मशीनरी को ही 'सम्पदा' माना जा सकता है। इन्हीं के उत्पादन पर कम से कम पचास प्रतिशत खर्च करना चाहिए। प्रतिरक्षा, शिक्षा, चिकित्सा तथा विपणन आदि में 'उपयोगिता' का गुण है। उत्पादकता के बाद उपयोगिता का महत्व है। इन पर तीस प्रतिशत तक खर्च किया जाना चाहिए। सरकारी तन्त्र व प्रशासन पर होने वाला भारी भरकम खर्च लगभग शून्य कर देना होगा। सरकार, प्रशासन तथा मनोरंजन पर यह गरीब देश दस प्रतिशत से अधिक खर्च वहन कर

ही नहीं सकता।

अर्थव्यवस्था का कचूमर निकालने में दोषपूर्ण कर प्रणाली भी जिम्मेदार है। कर की ऊँची दरों तथा अनावश्यक आर्थिक प्रतिबन्धों के कारण कालाधन बढ़ा। अव्यवहारिक कर ढांचा तथा जटिल प्रक्रिया के कारण कर चोरी सामान्य प्रवृत्ति बन गयी है। आयकर व बिक्री कर की चोरी सबसे अधिक होती है। इन्हें समाप्त कर देना ही उचित है। इनके स्थान पर सरल व स्पष्ट कर होने चाहिए। जैसे उत्पादन कर, सम्पत्ति कर, मनोरंजन कर आदि। करों की दर भी कम होनी चाहिए, जिसे व्यक्ति स्वेच्छा से जमा करना चाहे। भूमि, भवन, वाहन तथा अन्य मूल्यवान् वस्तुओं पर व्यक्ति अपने स्वामित्व को नहीं नकारेगा। उस पर उचित कर देकर व्यक्ति अपने स्वामित्व प्रमाणित बनाये रखना चाहेगा। कर न जमा होने का यह अर्थ होगा उक्त वस्तु आपकी है ही नहीं। यह कोई नहीं चाहेगा।

यदि स्वर्ण बाण्ड योजना व्यावहारिक हो तो लोग सोना बैंक में ही रखना पसन्द करेंगे। यदि बचत की गयी धनराशि पर धनकर बैंक ब्याज दर से अधिक नहीं होगा तो लोग पैसा बैंक में ही रखेंगे और प्रसन्नता से कर भी देंगे। यदि व्यावहारिक कर ढांचा होगा तो कर चोरी रुकेगी, कालाधन समाप्त होगा और अर्थव्यवस्था बहुत कम समय में मजबूत हो जायेगी।

भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ कृषि को उद्योग के रूप में विकसित करना अनिवार्य है। अपितु कृषि को प्राथमिकता वाला उद्योग मानना चाहिए। विशेष सुविधाएँ मिलने पर कृषि उत्पादन भी बढ़ेगा और कृषि उत्पाद का लाभकारी मूल्य भी कृषि-उद्यमी कृषक को मिल सकेगा।

हर तरह का अनुदान या सब्सिडी को समाप्त होना चाहिए। इससे लाभ तो लाभार्थी तक पहुंचता नहीं, केवल अर्थव्यवस्था पर बोझ बढ़ता है। प्रत्येक उद्यम आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना चाहिए। बैंक ऋण की सरल व्यवस्था हो तथा एक वर्ष का ब्याज माफ कर दिया जाये, इतना ही प्रोत्साहन पर्याप्त होगा।

अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए अनार्थिक व अनुत्पादक सामाजिक स्थितियों को बदलना भी आवश्यक है। न्यूनतम आवश्यकता तो प्रत्येक नागरिक की पूरी होनी ही चाहिए। छोटा-सा घर, दो वक्त का भोजन तथा मौसम के अनुकूल आवश्यक वस्त्र तो सभी के पास होने ही चाहिए। इतना साधन जुटाने हेतु न्यूनतम आय का रोजगार प्रत्येक को देना कल्याणकारी राज्य का प्रथम कर्तव्य है। अन्यथा आतंकवाद, हिंसा, तोड़-फोड़, अराजकता व अपराध बढ़ेंगे ही, इसे कोई तंत्र नहीं रोक सकता। अराजकता व हिंसा से उत्पादन को क्षति पहुँचेगी और आर्थिक स्थिति अधिक खराब होगी। किसी व्यक्ति में कार्य क्षमता है और उसे कार्य करने का अवसर नहीं मिल पा रहा है तो यह भी राष्ट्र के लिए प्रत्यक्ष उत्पादन की क्षति तथा आर्थिक हानि है। इसे अनिवार्यतः रोका जाना चाहिए। शिक्षा के अभाव में किसी की कार्य क्षमता व प्रतिभा विकसित नहीं हो पा रही है तो यह भी दोष है। शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था सभी के लिए होनी ही चाहिए। भारत की आर्थिक स्थिति के लिए यह कठिन भी नहीं है। केवल अनावश्यक अनुत्पादक व विलासिता के खर्च कम किये जाएँ तथा कालाधन बाहर निकाला जाए तो यह सब सहज सम्भव हो जायेगा।

हमने राष्ट्र की आधी जनशक्ति महिलाओं को पूरी तरह से

अनार्थिक व अनुत्पादक कार्यों में लगा रखा है। अर्थव्यवस्था में बराबर की भागीदारी महिलाओं को दिया जाना आवश्यक है। इसके परिणाम चमत्कारी होंगे। साज-सज्जा, जनसम्पर्क, पुस्तकालय आदि में महिलाओं को ही स्थान देना चाहिए। अन्य कार्यों में समुचित प्रतिनिधित्व आवश्यक है, भले ही इसके लिए महिलाओं को तीस प्रतिशत आरक्षण दिया जाये। जातिगत, सामुदायिक या राजनीतिक आरक्षण के विध्वंसक विवादों से अच्छा है कि आरक्षण महिलाओं को ही दें।

यदि इस प्रकार के प्रयास किये जायें तो घाटे की अर्थव्यवस्था समाप्त हो जाएगी, जो भारत की अर्थव्यवस्था का कैंसर बन चुकी है। घाटे की अर्थव्यवस्था सदैव घातक है, वह चाहे व्यक्ति की हो, परिवार की हो या राष्ट्र की। पूंजीवाद, साम्यवाद व समाजवाद जैसे राजनीतिक आर्थिक वादों के विवादों से बचकर यदि वास्तविक विकासवाद के मार्ग पर चलना है तो घाटे की अर्थव्यवस्था छोड़कर बचत की अर्थव्यवस्था को अपना आर्थिक आदर्श बनाना पड़ेगा। प्रारम्भ में यदि बिना घाटे का बजट बनाया जाये, हम ऋण और ब्याज की किश्तें अदा करते रहें तो भी सन्तोष किया जा सकता है। लेकिन कम प्रयासों में अच्छे परिणाम की आशा करना केवल दिवास्वप्न या मृग मरीचिका ही कही जा सकती है।

हमारे देश का जटिल, भ्रष्ट व अकर्मण्य प्रशासनिक व सरकारी तन्त्र तथा लम्बी, समय-साध्य व उबाऊ प्रक्रिया भी अर्थव्यवस्था को बिगाड़ने के लिए कम दोषी नहीं है। विभिन्न सरकारी कार्यालयों व न्यायालयों में व्यक्ति का इतना मूल्यवान समय नष्ट होता है कि वह किसी भी कीमत पर इस झंझट से

बचना चाहता है। इससे भ्रष्टाचार और काले धन को बढ़ावा मिलता है। न्याय प्रक्रिया सहित सभी सरकारी कार्य प्रणाली सरल तथा स्पष्ट हो तथा उसमें लगने वाला समय भी निर्धारित हो, तो इस पर अंकुश लग सकता है। यदि मुकदमा लड़ने की मानसिकता को न्याय पाने की भावना में बदला जा सके तो तमाम सामाजिक अपराधों के साथ ही आर्थिक अपराधों पर पर्याप्त अंकुश लग सकता है।

आये दिन राजनीतिक आन्दोलनों, हड़तालों व बन्द के आयोजनों से भी उत्पादन की हानि होती है तथा अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इन्हें रोकना आवश्यक है और इसके लिए हर मुद्दे पर सुस्पष्ट, न्याय-संगत तथा दृढ़ नीति होना अनिवार्य है। अधिकांश विवाद, धर्म, जाति, भाषा व क्षेत्र को लेकर उत्पन्न होते हैं। धर्म को भी समाजशास्त्र व दर्शनशास्त्र की तरह एक विषय मानकर पढ़ाया जाये, जिसमें सभी धार्मिक मतों की विवेचना हो। साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने की अनुमति किसी को न हो। मातृभाषा के साथ प्राचीन शास्त्रीय समृद्ध भाषाओं संस्कृत, फारसी, अरबी, ग्रीक, लेटिन, हिब्रू आदि में कोई एक भाषा अवश्य पढ़ी जाये। विदेशी भाषा के प्रति आग्रह को राष्ट्रद्रोह जैसा अपराध माना जाए। फिर वह अंग्रेजी हो, कोरियाई अथवा इतालवी। कानून की दृष्टि में किसी मामले में जाति के आधार पर किसी तरह का भेदभाव न हो। क्षेत्रवाद को केवल क्षेत्रीय स्वायत्तता से ही समाप्त किया जा सकता है। क्षेत्रीय स्वायत्तता वाले छोटे राज्य स्वीकार किये जाने चाहिए। इससे आन्दोलन रुकेंगे, आतंकवाद खत्म होगा। राष्ट्रीय एकता के लिए मजबूत प्रतिरक्षा शक्ति, सुदृढ़ अर्थव्यवस्था, शान्ति तथा नागरिकों में राष्ट्र के प्रति प्राचीन गौरवशाली परम्पराओं, धरोहर और संस्कृति

तथा साहित्य के प्रति गौरव की अनुभूति एवम् प्रेम की भावना आवश्यक है। दैनिक जीवन की छोटी-छोटी बातों पर केन्द्र का नियन्त्रण राष्ट्रीय एकता में साधक नहीं बाधक है और राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए घातक।

52. परिवर्तन की कसमसाहट

आजादी के बाद हमने सभी परम्पराओं एवं व्यवस्थाओं को अपने पूर्व शासकों से ज्यों की त्यों उधार ले ली। संसदीय लोकतंत्र भी ब्रिटेन से ली गयी व्यवस्था है। ब्रिटेन के ढंग की संसदीय प्रणाली भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण समाज के लिए बिल्कुल भी उपयोगी नहीं हो सकती। पिछले चालीस वर्षों तक यह प्रणाली केवल इसलिए किसी तरह चलती रही, क्योंकि कांग्रेस ही एकमात्र राष्ट्रीय राजनीतिक दल था और आजादी दिलाने का श्रेय होने के कारण वह इतना विराट वृक्ष था कि उसके नीचे अन्य दल पनप नहीं सके।

अब चार दशक के बाद जब कांग्रेस से स्वतंत्रता सेनानियों का वर्चस्व पूरी तरह हट गया और अन्य दल भी देश की राजनीति में अपना स्थान बना सके तो इस प्रणाली की कमजोरी खुलकर सामने आ गयी। यह आशंका बढ़ती जा रही है कि भविष्य में अधिकतर त्रिशंकु संसद का ही सामना करना पड़ेगा और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं और मुद्दों पर एक दूसरे से विपरीत विचार रखने वाले दल मिल-जुलकर सरकार नहीं चला पायेंगे। अतः अब यह सोचना आवश्यक हो गया है कि मध्यावधि चुनावों के भारी आर्थिक बोझ से राष्ट्र को बचाने के लिए संसदीय लोकतंत्र में सुधार करने तथा

आवश्यक हो तो नयी प्रणाली अपनाने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

विकल्प के रूप में अध्यक्षीय प्रणाली अथवा राष्ट्रपतीय प्रणाली पर सबसे पहले विचारकों का ध्यान गया है। लेकिन विश्व में कई तरह की अध्यक्षीय प्रणालियाँ प्रचलित हैं जो किसी राष्ट्र की अपनी सामाजिक आर्थिक राजनीतिक संरचना के अनुकूल तैयार की गयी हैं।

भारत के लिए समुचित व उपयोगी राजनीतिक प्रणाली तैयार करने के लिए देश की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। इस राष्ट्र में सांस्कृतिक, भाषाई व क्षेत्रीय विविधता बहुत अधिक है। अतः इसके आधार पर छोटे-छोटे राजनीतिक दलों का जन्म होता है। ये दल किसी वर्ग या क्षेत्र विशेष के लोगों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व तो करते हैं लेकिन राष्ट्रीय समरसता तथा एक राष्ट्र की अवधारणा विकसित होने में बाधक भी सिद्ध होते है। ये अपने वर्ग या क्षेत्र में शक्तिशाली होने के कारण संसद में प्रभावशाली बन जाते हैं और राष्ट्रीयता को प्रभावित करते हैं।

यदि पूरे राष्ट्र में सीधे निर्वाचन द्वारा राष्ट्र का अध्यक्ष या राष्ट्रपति चुना जाये तो उसमें ऐसे दलों का योगदान कम होगा। अपने प्रत्याशी को राष्ट्रपति वही दल चुनाव कर सकेंगे जिनका प्रभाव हर क्षेत्र तथा वर्ग में होगा। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय दल संकीर्ण नीतियों के बजाय सम्पूर्ण को ध्यान में रखकर नीतियां बनाने के लिए बाध्य होंगे।

राष्ट्रपति के चुनाव में प्रत्याशियों की भीड़ रोकने के लिए यह

नियम बनाया जा सकता है कि मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दल का ही प्रत्याशी राष्ट्रपति का चुनाव लड़े। व्यावहारिक रूप से जिसका राष्ट्रव्यापी संगठन और प्रभाव नहीं होगा, ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति का चुनाव कभी जीत ही नहीं सकता। ऐसा प्रत्याशी केवल चुनाव प्रक्रिया को जटिल बनाने तथा लोकतंत्र का मखौल उड़ाने का ही काम कर सकता है।

जिस व्यक्ति को पूरे देश के मतदाता अपना रहनुमा चुनेंगे वह पूरे देश के हित की बात सोचेगा। प्रधानमंत्री की तरह केवल अपने चुनाव क्षेत्र के विकास पर ही ध्यान नहीं देगा।

राष्ट्रपति की कुर्सी कुछ गिने चुने सांसदों की कृपा पर निर्भर नहीं होगी। अतः पूरे पांच वर्ष तक शासन कर सकेगा। मध्यावधि चुनाव की नौबत नहीं आयेगी। राष्ट्रपति की मृत्यु या त्यागपत्र की स्थिति में भी मध्यावधि चुनाव अनिवार्य नहीं है। राष्ट्रपति का चुनाव अपने दल की नीतियों के समर्थन तथा उसकी संगठन शक्ति के बल पर ही हो सकेगा। अतः उस दल को ही यह अधिकार होगा कि वह नये व्यक्ति को राष्ट्रपति चुन सके। व्यावहारिक रूप में इस कटु सत्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि राष्ट्रपति का चुनाव भारत जैसे विशाल राष्ट्र में दल जीत सकता है व्यक्ति नहीं। लेकिन नया राष्ट्रपति मनोनीत करने का अधिकार दल को केवल राष्ट्रपति की मृत्यु या त्यागपत्र की स्थिति उत्पन्न होने पर ही होना चाहिए। सामान्य स्थिति में नहीं। अन्यथा दल स्वयं अस्थिरता उत्पन्न कर सकते हैं।

लेकिन इस स्थिति को भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित व्यक्ति या दल पूरी तरह से निरकुंश न

हो जाये। इसके लिए वर्तमान राज्यसभा काफी उपयोगी है। राज्यों के आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर संसद का गठन होना चाहिए। महत्वपूर्ण विधेयक तथा निर्णय संसद में पारित कराये जाने चाहिए। इससे किसी क्षेत्र विशेष के साथ अन्याय नहीं होने पायेगा। विदेशनीति पर भी सभी क्षेत्रों व वर्गों की राय महत्वपूर्ण होगी।

लोकसभा जैसे सीधे निर्वाचित सदस्यों के सदन की कोई आवश्यकता नहीं होगी। क्योंकि राष्ट्रपति तो सीधे निर्वाचित ही है। लेकिन ऐसा हो सकता है कि विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों का एक लघु सदन हो। वह सदन विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों का होगा। उसे राजनीतिक चुनाव लड़ने की जरूरत नहीं होगी। प्रत्येक विश्वविद्यालय ऐसे सदस्य को नामजद कर सकता है। अथवा उसे केवल उच्च शिक्षित स्नातक लोगों के ही मतों से चुना जाये। ऐसा सदन राजनीतिक उठा पटक से दूर रहेगा। तथा तकनीकी आधार पर राय दे सकेगा।

राज्यों में मुख्यमंत्री का सीधा चुनाव भी हो सकता है तथा विधायक भी अपना नेता (मुख्यमंत्री) चुन सकते हैं। राज्यों में स्थायित्व की अधिक समस्या नहीं है क्योंकि राष्ट्रपति शासन की व्यवस्था ही मध्यावधि चुनाव रोकने के लिए पर्याप्त है। जब तक विधायिका किसी व्यक्ति को अपना नेता नहीं चुन लेती तब तक राष्ट्रपति शासन लागू रह सकता है। विधान परिषद के गठन की वर्तमान व्यवस्था भी चलती रह सकती है।

वास्तव में केवल संसदीय प्रणाली के स्थान पर राष्ट्रपति प्रणाली लागू कर देने तथा निश्चित अवधि के लिए एक राष्ट्रपति नियुक्त कर देने भर से ही लोकतांत्रिक प्रणाली सम्पूर्ण नहीं हो

जाती। सम्पूर्ण लोकतांत्रिक प्रणाली के लिए आवश्यक है कि सबसे निचले स्तर पर भी लोकतांत्रिक प्रक्रिया को संवैधानिक दर्जा मिले। किसी भी गांव या नगर के वार्ड को भी अपना प्रतिनिधि चुनने से थोड़े समय के लिए भी वंचित करना संभव न हो, ऐसी संवैधानिक व्यवस्था होनी चाहिए।

इसके लिए समाजवादी विचारक डाक्टर राम मनोहर लोहिया के चौखम्भा राज की ओर ध्यान जाता है। स्थानीय प्रशासन को भी उतना ही संवैधानिक महत्व प्राप्त होना चाहिए। जितना राष्ट्रीय संसद को होता है। ग्राम स्तर के लोकतंत्र का उल्लेख प्राचीनतम वैदिक काल में भी मिलता है। प्रत्येक ग्राम का एक मुखिया चुना जाता था जिसे ग्रामणी कहते थे। बीस ग्रामों का विशपति होता था। उस व्यवस्था को पुनः लागू किया जाना चाहिए। ग्राम शब्द का वास्तविक अर्थ समूह होता है। वैदिक लोकतंत्र में संवैधानिक पारिभाषिक ग्राम शब्द में गांव या शहर का भेद नहीं होता था। नगरों के वार्ड तथा ग्राम सभायें सभी की लोकतांत्रिक इकाई ग्राम होती थी। वर्तमान विकासखण्ड इकाई के समक्ष विश को रखा जा सकता है।

यदि प्रत्येक ग्राम का मुखिया ग्रामणी हो 20 ग्राम मिलकर अपना विशपति चुने तो निचले स्तर पर लोकतंत्र मजबूत होगा। इससे सभी नागरिकों में लोकतांत्रिक चेतना आयेगी और नागरिकों की लोकतंत्र में प्रत्यक्ष भागीदारी होगी।

एक विश या विकास खण्ड स्तर पर अथवा सम्भव हो तो ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत भी होनी चाहिए। उसे न्यायिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। मकान मालिक व किरायेदार के विवाद, गांव में खेत की मेढ़ या नाली निकालने के स्थानीय छोटे-मोटे विवाद ग्राम

सभा स्तर पर ही तय होने चाहिए। स्थानीय पंचों को वस्तु स्थिति की प्रत्यक्ष जानकारी होगी, जिससे वास्तविक न्याय होने की संभावना बढ़ेगी तथा कानूनी दांव-पेच के सहारे मकुदमेंबाजी के अवसर कम होंगे। जब तक बड़े और गंभीर सम्पति सम्बन्धी या आपराधिक मामले न हों तो छोटे स्तर के विवाद ग्राम सभाओं में सामाजिक प्रभाव से सभी पक्षों की सहमति के आधार पर तय कर लिये जाने चाहिए। इससे अदालतों में मुकदमों का बोझ भी कम होगा और शीघ्र तथा सस्ता न्याय सभी को सुलभ हो जायेगा। दो भाइयों के बीच के तथा दो पड़ोसियों के बीच के विवाद जितना न्यायपूर्ण ढंग से ग्राम पंचायत हल कर सकती है, उतना निष्पक्ष न्याय जिला न्यायालयों में सम्भव नहीं। क्योंकि वहां न्यायधीशों को प्रत्यक्ष जानकारी नहीं होती। अतः झूठे सुबूत, झूठी गवाहियों तथा वकीलों के दांव पेंच ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाते हैं तथ्य नहीं।

विकास कार्यों के लिए धन का आवटंन या व्यय विकास खण्ड स्तर पर होना चाहिए। उसको ग्राम के निर्वाचित प्रतिनिधियों की सहमति से किया जाना चाहिए। इससे क्षेत्रीय असंतुलन दूर करने में सहायता मिलेगी।

इसी प्रकार से जिला परिषदों का भी लोकतांत्रिक ढंग से गठन होना चाहिए। ग्राम सभा या जिला परिषद की अनुमति के बिना धन व्यय करने का अधिकार प्रशासनिक अधिकारियों का नहीं होना चाहिए। तभी वास्तविक लोकतंत्र फलीभूत होगा और भ्रष्टाचार पर भी कुछ अंकुश लग सकेगा। एक निश्चित समय के अंदर ग्राम सभा तथा जिला परिषद की बैठक अनिवार्य रूप से होना संवैधानिक अनिवार्यता होनी चाहिए। राष्ट्रीय संसद की ही तरह जब ग्राम सभा,

जिला परिषद, प्रांतीय विधायिका तथा राष्ट्रीय संसद को समान रूप से संवैधानिक मान्यता प्राप्त होगी तो प्रशासनिक अधिकारियों की मनमानी और भ्रष्टाचार पर अंकुश भी रह सकेगा।

विकास का अवसर सभी को अनिवार्य रूप से मिले तभी लोकतंत्र सार्थक हो सकता है। लोकतांत्रिक प्रणाली में स्थायित्व या स्थिरता से भी अधिक महत्वपूर्ण है शासन में जनता की सीधी भागीदारी। ऐसा तभी संभव है जब ग्राम सभा और ग्राम पंचायतों का अधिकार संवैधानिक मान्यता प्राप्त हो।

राष्ट्रपति प्रणाली की उपयोगिता को भाजपा ने भी स्थान दिया है। उन्होंने कहा कि एक उच्च स्तरीय विद्वानों को दल राष्ट्रपति प्रणाली की संभावनाओं का पता लगायेगा और उसे लागू करने के लिए अपने विचार रखेगा।

अब जब राजनैतिक दल भी इस ओर गम्भीरता से सोच रहे हैं तो देरी किस बात की है जब यह पहल हमारे आपके द्वारा ही होनी है तो पहला कदम बढ़ाने में संकोच कैसा?

53. अर्थशास्त्रियों की उपेक्षा का परिणाम

आजादी के बाद 6 अप्रैल 1948 को तत्कालीन उद्योग मन्त्री श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने पहली उद्योग नीति घोषित की। श्री मुखर्जी गांधीवादी अर्थशास्त्र के समर्थक थे और लघु व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना चाहते थे। लेकिन जवाहर लाल नेहरू के सामने सभी का व्यक्तित्व बिल्कुल बौना था। अतः नेहरू के प्रभाव से बड़े उद्योगों व सार्वजनिक क्षेत्र को वरीयता मिली।

इससे पूर्व 1940 में ही देश के प्रमुख अर्थशास्त्रियों नानावती और अंजारिया ने सहकारी ग्राम कृषि की अवधारणा प्रस्तुत की थी। उनका मानना था कि ग्राम सभा की भूमि तथा बड़े किसानों से ली गयी। भूमि को गांव के सभी भूमिहीनों को सामूहिक रूप से सौंप दिया जाये। इससे उनमें हीनता की भावना दूर होगी और बड़ी कृषि जोत में एक साथ कार्य हो सकेगा। भूमिहीन को छोटा-सा भूखण्ड देने का कोई उपयोग नहीं है। क्योंकि वह आवश्यक हल-बैल भी नहीं जुटा सकेगा। लेकिन उनकी बात नहीं मानी गयी। नेहरूवादी माडल आगे चलकर केवल मतदाताओं को खुश करने वाला समाजवाद बन गया।

कृषि प्रधान देश होने के बावजूद हम गेहूँ अमेरिका से लेकर खाते रहे। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अमेरिका मिशन भारत से प्राप्त गेहूँ का मूल्य भारत में ही केवल प्रचार कार्य पर व्यय करता था। वह धन कभी अमेरिका गया ही नहीं। अमेरिका की कृषि व औद्योगिक प्रगति को ध्यान में रखकर कृषि उपज बढ़ाने की योजना बनी। 1979 में एक विशेष दल को भारत आमंत्रित किया। उस दल फौर फाउण्डेशन टीम ने कहा कि भारत में आमूल-चूल परिवर्तन करना पड़ेगा। खाद, सिंचाई से लेकर बीजों तक में परिवर्तन किया गया। फलस्वरूप कृषि उपज बढ़ी। वर्ष 1950 में देश की कुल कृषि उपज केवल पांच करोड़ टन थी जो बढ़कर 20 करोड़ टन तक पहुँच गयी।

नेहरू युग में ही प्रख्यात अर्थशास्त्री बिना ढांचा तैयार किए बड़े उद्योगों के अंधाधुंध पीछे भागने के पक्ष में नहीं थे। देश के शीर्ष अर्थशास्त्री पी. आर. ब्रह्मानन्द के अनुसार भारत में लघु व कुटीर उद्योग ही अर्थव्यवस्था की रीढ़ हो सकते हैं।

प्रथम योजना आयोग के प्रमुख सदस्य पी. सी. महलोनोविस ने बड़े सार्वजनिक उद्योगों का समर्थन किया। वे नेहरू के कृपा-पात्र भी थे। वह अपने समय के प्रमुख पश्चिम परस्त अर्थशास्त्री माने जाते थे। उन्हीं की राय से कर्ज के सहारे औद्योगिक ढाँचा खड़ा किया गया और देश ऋण जाल में फंसता चला गया।

प्रमुख गांधीवादी अर्थशास्त्री डॉ. एम. पी. गोस्वामी के अनुसार वर्तमान नीतियों के चलते प्रतिघण्टा चालीस करोड़ रुपये का कालाधन बढ़ रहा है। डॉ. गोस्वामी का कहना है कि विलासिता की वस्तुओं का आयात पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिए। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को इसी शर्त पर पूंजी लगाने की अनुमति देनी चाहिए कि वे अपने उत्पादन का 75 प्रतिशत अवश्य निर्यात करेंगे, अन्यथा ये घातक सिद्ध होंगे। उन्होंने कहा कि जनसंख्या नियन्त्रण की राष्ट्रीय नीति बने और सख्ती से लागू की जाए। गत जुलाई में किये गये मुद्रा अवमूल्यन को उन्होंने अनिवार्य मजबूरी बताया लेकिन इससे देश को बहुत अधिक लाभ की आशा नहीं है। गत दो नवम्बर को, प्रसारित रेडियो वार्ता में उन्होंने कहा था कि पिछले दो बार के भारी अवमूल्यन से भी देश को लाभ नहीं मिला था, इस बार भी विशेष उम्मीद नहीं है। रुपये का पहला अवमूल्यन 19 सितम्बर 1949 को अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण करना पड़ा था। उस समय ब्रिटेन के स्टर्लिंग सहित अनेक मुद्राओं का अवमूल्यन हुआ था। अतः डालर संकट के कारण भारत को भी मुद्रा अवमूल्यन करना पड़ा। इसके बाद 6 जून, 1966 को दूसरा बड़ा अवमूल्यन किया गया। वह अवमूल्यन आज जैसे तर्कों के आधार पर किया गया था। लेकिन उसका समुचित लाभ नहीं मिला। उलटे आयात खर्च बढ़ गया और

उत्पादन भी गिरा।

इसके बाद 1 जुलाई व 3 जुलाई, 1991 को 48 घण्टों में दो बार अवमूल्यन कर रुपये की कीमत बीस प्रतिशत कम कर दी गयी। इस अवमूल्यन से पेट्रोलियम पदार्थों तथा खाद पर आयात खर्च एकदम बढ़ गया। पेट्रोलियम की कीमतें तो बढ़नी ही थीं, उसका कोई विकल्प नहीं है। खाद की भी कीमत बढ़नी ही हैं, क्योंकि उस पर अनुदान या सब्सिडी बढ़ाना भी सरकार के लिए सम्भव नहीं है। कुल मिलाकर इस भारी अवमूल्यन के फलस्वरूप आयात खर्च बढ़ेगा, देश में महँगाई बढ़ेगी और आम आदमी की परेशानियां भी बढ़ेंगी। विदेशी मुद्रा की स्थिति में तात्कालिक सुधार दिखायी दे रहा है। लेकिन कुछ सप्ताहों के आयात भर का ही भण्डार इस समय सुधार के बाद भी हमारे पास है, जबकि सुरक्षित स्थिति तब मानी जाती है, जब कम से कम चार माह के आयात के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा भण्डार हो।

कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति आशाजनक बिल्कुल नहीं है। भारत की अर्थव्यवस्था कर्ज और घाटे की ऐसी अंधेरी सुरंग में प्रवेश कर गयी है जहाँ से निकलने का कोई मार्ग सामने नजर नहीं आ रहा है। इसका अब एक ही समाधान सम्भव है कि अर्थव्यवस्था का पूरा ढांचा बदला जाए और नये सिरे से आर्थिक-सामाजिक पुनर्रचना की जाए।

54. भारत के एक राष्ट्र होने पर उठते सवाल

हम विश्व के सबसे प्राचीन राष्ट्र होने का दावा करते हैं।

हजारों वर्षों से महान राष्ट्र के रूप में हमारा अस्तित्व और पहचान है। बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव, शाक्त, सिख, मुस्लिम, ईसाई, पारसी जैसे अनेक मत-मतान्तरों के बावजूद हमने सदैव स्वयं को एक भारतीय नागरिक के रूप में देखा है। सैकड़ों छोटे-छोटे राज्यों में बंटकर भी 'एक राष्ट्र भारत' के अस्तित्व पर कभी भी प्रश्न चिह्न नहीं लगा। किसी भी छोटे से राज्य का स्वतन्त्र शासक स्वयं को भारतीय राजा, सुल्तान या नवाब ही कहता था। टीपू सुल्तान हो या रणजीत सिंह, औरंगजेब हो या शिवाजी, सभी ने स्वयं को भारतीय शासक ही समझा। सभी स्वतन्त्र शासकों की इच्छा रही कि वह सम्पूर्ण भारतवर्ष का एक छत्र सम्राट या बादशाह बन सके। अतः स्पष्ट है कि मत-मतान्तर, अनेक सम्प्रदाय व विभिन्न भाषाओं के बावजूद, सम्पूर्ण भारत वर्ष के शासक व निवासी स्वयं को भारतीय ही मानते थे। अनादि काल से ऐसा कुछ अवश्य रहा है, जो भारत को एक राष्ट्र के रूप में परिभाषित करता रहा है।

स्वाभाविक एक भारत राष्ट्र पर पहली बार प्रश्न चिह्न इसी बीसवीं सदी में ही लगा। जवाहर लाल नेहरू व मोहम्मद अली जिन्ना की महत्त्वाकांक्षाओं को अंग्रेज शासकों ने साम्प्रदायिकता तथा द्विराष्ट्रवाद का ईंधन दिया। कई शताब्दी के इस्लामी शासन में देश को बांटने की बात नहीं उठी, लेकिन आजादी के बाद राजगद्दी को लेकर द्विराष्ट्रवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिया गया। पहली बार जनता को बताया गया कि अलग सम्प्रदाय वालों का अलग राष्ट्र होता है। अलग विचारधारा वाले लोग एक राष्ट्र में नहीं रह सकते हैं। सबको डेढ़ ईंट की अपनी अलग मस्जिद बनानी चाहिए और अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकानी चाहिए।

इस तरह विघटनकारी सिद्धान्त, उसकी प्रतिक्रिया और फिर उस प्रतिक्रिया की प्रतिक्रिया कुछ इस तरह तीखी, कर्कश और कठोर होने लगी कि ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो भारत राष्ट्र का कभी कोई अस्तित्व ही न रहा हो। अब तो यह भी कहा जाने लगा है कि भारत को वास्तव में स्वायत्त स्वतन्त्र व सम्प्रभु गणराज्यों का संघ होना चाहिए। इसे 'एक राष्ट्र' कहना ही गलत माना जाने लगा। मुसलमानों के लिए पाकिस्तान सिखों के लिए खालिस्तान, ईसाइयों के लिए मसीहिस्तान और तो और कुछ लोगों ने दलितस्तान की भी मांग उठा दी। भाषाओं के आधार पर प्रान्तों का निर्माण तो हो ही चुका है। कल हर भाषा-भाषी प्रांत अलग स्वायत्त राष्ट्र की बात उठा सकता है। यदि तुरन्त इस विषय पर गम्भीरता से नहीं सोचा गया तो निकट भविष्य में संयुक्त दक्षिण एशिया गणराज्य संघ और उसके बाद हर तथाकथित गणराज्य को संघ से अलग होने का लोकतांत्रिक अधिकार देने की भी मांग उठायी जा सकती है।

आज बहुराष्ट्रवाद को बढ़ावा देने, अपनी पहचान अलग बनाये रखने की प्रवृत्ति को उकसाने तथा राजनीतिक क्षुद्र स्वार्थों के कारण ऐसी अलगाववादी प्रवृत्तियों का पोषण करने के कारण इतना उलझाव उत्पन्न हो गया है कि वास्तव में भारत राष्ट्र कहीं खो गया लगता है। आज भारतीय राष्ट्र की पहचान कोई सर्वमान्य लक्षण या परिभाषा करना बहुत कठिन लगने लगा है। हम एक भी बिन्दु ऐसा नहीं तलाश पा रहे हैं, जिस पर सभी पक्ष एक मत हो सकें और उसे 'भारतीय राष्ट्र' की सर्वमान्य परिभाषा बनायी जा सके।

एक ओर तथाकथित हिन्दूराष्ट्रवादी शक्तियाँ हैं, जो हिन्दुत्व को ही भारतीयता मानती हैं। उनकी नजर में जो स्वयं को हिन्दू

कहता है और भारत को केवल हिन्दुओं का देश मानने के पक्षधर हैं, वही राष्ट्रवादी भारतीय हैं। इन लोगों के पास भारतीय राष्ट्र तो दूर, हिन्दुत्व की भी कोई परिभाषा स्पष्ट नहीं है, जो अयोध्या में एक निश्चित स्थान पर श्रीराम जन्म भूमि मंदिर बनाने के पक्षधर हैं, जो किसी भी धार्मिक या वैधानिक मान्यता में कोई आस्था नहीं रखता, वही हिन्दू है, जो किसी भी आस्था की बात करता है, वही उनकी दृष्टि में साम्प्रदायिक और राष्ट्रविरोधी हैं।

यह हिन्दूवादी अराजकता वास्तव में द्विराष्ट्रवाद और आगे चलकर प्रतिपादित बहुराष्ट्रवाद की प्रतिक्रिया मात्र ही है, इसीलिए हिन्दू राष्ट्रवादी कोई स्पष्ट अवधारणा देने में असफल रहे हैं। यह राजनीतिक प्रचार केवल प्रतिक्रिया पर आधारित है और इसके पीछे कोई स्पष्ट अवधारणा भी नहीं है। वह अपनी कमजोरी भी जानते हैं। स्वयं को हिन्दू कहने वाला समाज आज इतना सुविधाजीवी और विभाजित हो गया है कि उसे किसी निश्चित अनुशासन में बांधना इन नेताओं को सम्भव नहीं लगता है। यदि धार्मिक एकता व अनुशासन की बात की जायेगी, तो लोग एक झण्डे के नीचे एकत्र नहीं हो सकेंगे, क्योंकि किसी भी अनुशासन से किसी न किसी की सुविधा में कमी अवश्य आयेगी। जिसकी सुविधा में कमी आयेगी, वही उस अनुशासन का और उसे लागू करने वाले संगठन का विरोध करने लगेगा। अतः इस वर्ग के नेताओं के लिए सुविधाजनक यही है कि हिन्दुत्व की परिभाषा को अनिर्णीत रहने दिया जाये और हिन्दू कहलाने वाले लोगों को केवल राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित किया जाये। अयोध्या में राममंदिर बनाने पर सहमत कर लेना इसलिए कठिन नहीं है, क्योंकि इसे किसी भी हिन्दू को अपनी

सुविधा में कोई कटौती नहीं करनी पड़ेगी। अतः हिन्दू एकता का आधार ईंट-गारे के ढेर को बनाया गया।

दूसरा वर्ग इससे भी अधिक विचारहीन और सुविधावादी है। राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की किसी परिभाषा या पचड़े में पड़े बिना वह मानता है कि दिल्ली साम्राज्य की सीमा के अन्दर जो भी रहता है, वह भारतीय है। उसका विचार, आचरण या जीवन मूल्य कुछ भी हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। यह अवसरवादी राजनीति और भी अधिक अराजक और घातक है। इस विचारधारा वाले लोग विदेशी आकांक्षाओं के अनुसार देश का स्पष्ट विरोध करने वालों को भी कोई अनुशासन सिखाने की जरूरत नहीं समझते। सोवियत संघ और ब्रिटेन मित्र हो तो भारत के सोवियत भक्त कम्युनिस्ट ब्रिटेन से विरुद्ध होने के कारण भारत की स्वाधीनता का भी विरोध करते हैं और उन्हें ऐसा करने की छूट ये यथास्थितिवादी राजनीतिक दल देते हैं। यदि कम्युनिस्ट भारत में आक्रमण के समय आक्रमणकारी चीनी सेना का स्वागत करने के लिए तैयार हों और कहें कि इससे भारत को कम्युनिस्ट राष्ट्र बनाने में मदद मिलेगी, तो भी ऐसे लोग ध्यान नहीं देते। 1962 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी कहा था कि यदि चीन का बम गिरेगा तो वह यह नहीं देखेगा कि उससे मरने वाला व्यक्ति कम्युनिस्ट है या गैर कम्युनिस्ट। अतः कुछ तो तय करना ही पड़ेगा।

अब इस बात पर विचार करना आवश्यक हो गया है कि यह स्पष्ट रूप से निश्चित किया जाये कि राष्ट्र क्या होता है? भारतीय राष्ट्र की क्या सर्वमान्य और आधारभूत मान्यताएँ होनी चाहिए और सम्पूर्ण राष्ट्र को कम से कम किन मौलिक अनुशासनों का पालन

करना चाहिए?

यहां पर यह ध्यान देने योग्य है कि राष्ट्र केवल राजनीतिक इकाई नहीं है। वर्तमान भारत जिस भारत के विभाजन का हम सभी को दुःख है, वह अखण्ड भारतवर्ष शायद ही इतिहास में कभी एक राजनीतिक इकाई रहा हो। एक शासन व एक झण्डे के नीचे इतना विशाल राष्ट्र कभी नहीं रहा, लेकिन फिर भी सदैव से हमने भी और विदेशियों ने भी इसे एक राष्ट्र के रूप में देखा। इसे भारतवर्ष, हिन्द, हिन्दुस्तान या इण्डिया - कुछ भी कहा गया हो, लेकिन एक राष्ट्र के रूप में ही सदैव देखा गया। पहले ऐसा कोई संवैधानिक बंधन या उच्चतम न्यायालय का डर भी नहीं था, लेकिन सभी लोग स्वाभाविक रूप से इसे एक राष्ट्र मानते थे, क्योंकि वास्तव में भारतवर्ष एक राष्ट्र था। भले ही यह अनेक स्वतन्त्र राज्यों में बंटा रहा हो। अंग्रेजों के एक छत्र राज्य में विश्व का बहुत बड़ा क्षेत्र था, लेकिन सम्पूर्ण क्षेत्र को कभी एक राष्ट्र नहीं माना गया।

इससे यह स्पष्ट होता है कि केवल लंदन की केन्द्रीय सत्ता में संचालित होने मात्र से सम्पूर्ण क्षेत्र एक राष्ट्र नहीं हो सकता और अलग-अलग स्वतन्त्र राज्य हो जाने से ही दिल्ली, महोबा, लखनऊ, पटना अलग-अलग राष्ट्र नहीं हो जाते। अतः राजनीतिक सीमा से परे भी राष्ट्र की परिभाषा खोजनी होगी।

वास्तव में राष्ट्र उस भौगोलिक इकाई को कहते हैं, जिसका एक साझा इतिहास रहा हो। इतिहास में राजनीतिक सत्ता से लेकर साहित्यिक, सांस्कृतिक व सामाजिक विकासक्रम भी शामिल है। राष्ट्र के सभी नागरिकों के अन्दर अपने राष्ट्र की उपलब्धियों, उसकी भाषा, साहित्य, संस्कृति, चिन्तनधारा के साथ ही नदी, पर्वत, भूमि

तथा अन्य प्राकृतिक उपादानों के प्रति अपनेपन की भावना भी अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। इसके बिना राष्ट्र व राष्ट्रीयता की बात करना बेमानी ही है।

आज किसी नागरिक की भाषा या विचारधारा कुछ भी हो सकती है, लेकिन राष्ट्रीय साहित्यिक विरासत और चिन्तन का संरक्षण करने और प्राचीन भाषा की रक्षा करने की भावना प्रत्येक नागरिक में होनी चाहिए, जो वैचारिक या साम्प्रदायिक मतभेद के कारण देश के किसी भी साहित्य या विचार को नष्ट हो जाने देना चाहता है, संरक्षण नहीं करता, उसे राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता है। विश्व की कोई भी भाषा पढ़ी जा सकती है, पर देश की भाषा से अधिक महत्व विदेशी भाषा को नहीं दिया जा सकता, जो लोग अपने दैनिक जीवन में विदेशी भाषा, विदेशी लिपि या विदेशी साहित्य को अपने देश की भाषा व साहित्य से अधिक महत्व देते हैं, उन्हें भी राष्ट्रीय नहीं माना जा सकता।

जिस राष्ट्र के पास प्रशासन चलाने के लिए अपनी भाषा न हो, यदि उसे एक राष्ट्र मानने में संदेह किया जाये, तो यह स्वाभाविक ही है। यदि इस देश के मूल निवासी तथा मुख्यधारा होने का दावा करने वाले हिन्दू अपनी कोई भी एक भाषा प्रशासन और परस्पर सम्पर्क के लिए स्वीकार कर लें तो मेरा विश्वास है कि अन्य वर्ग उसे अवश्य स्वीकार कर लेंगे। यदि सभी हिन्दू अपनी धार्मिक भाषा संस्कृत को ही सम्पर्क भाषा मान लें, तो हिन्दूवाद से इस गूंगे देश को एक भाषा तो मिल ही जाये। यही योगदान राष्ट्र के लिए बहुत होगा। मेरा विश्वास है कि मुसलमान व अन्य लोग भी संस्कृत का विरोध नहीं करेंगे यदि सभी प्रान्तों के हिन्दू उसे जीवन में अपना

लेंगे। यदि हिन्दू नेताओं की आशंका को स्वीकार भी कर लें, तो भारत का मुसलमान उर्दू, फारसी या अरबी किसी एक भाषा में एकमत तो हो ही जायेगा। दो भाषाओं में भी यदि इतना विशाल राष्ट्र चलने की स्थिति बना लें तो भी राष्ट्रहित बहुत बड़ी उपलब्धि है, वैसे अभी भी अनेक मुसलमान संस्कृत के विद्वान् हैं तथा अनेक हिन्दू, उर्दू व फारसी के माहिर।

55. सर्वस्वीकार्य न्याय चाहिए, मुकदमे में हार-जीत नहीं

गणतंत्र को बेमानी बनाने में ब्रिटिश न्याय प्रणाली का भी काफी योगदान है, जिनको वर्तमान भारतीय न्याय प्रक्रिया का थोड़ा-सा भी अनुभव होगा, वे बड़ी सरलता से समझ सकते हैं कि जटिल अदालती प्रक्रिया का एकमात्र उपयोग प्रतिपक्षी को उत्पीड़ित करने के लिए ही किया जाता है। अपना पक्ष न्याय संगत हो या नहीं तथा न्यायालय का निर्णय अन्ततः किसी भी समर्थन में जाये, लेकिन जटिल व उबाऊ न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा दूसरे पक्ष को वर्षों तक मानसिक शांति, समय-श्रम तथा घर की धन सम्पत्ति को पूरी तरह से बर्बाद करने के बाद फैसला अपने पक्ष में हो भी जाये तो भी न्याय पाने की प्रसन्नता से अधिक सब कुछ या काफी कुछ खो देने का दुख ही अधिक अनुभव होता है। वास्तव में मुकदमेबाजी बिल्कुल विनाशकारी युद्ध की ही तरह है, जिसमें कोई पक्ष जीते या कोई पक्ष हारे, लेकिन दोनों ही पक्ष बुरी तरह बर्बाद हो जाते हैं।

अतः यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है कि आज

कोई भी विवेकशील एक सीमा तक अन्याय सहकर व हानि उठाकर भी तथाकथित न्याय पाने का प्रयास न करके अदालती झंझट व मुकदमेबाजी से बचना चाहता है। बुद्धिमान व्यक्ति अदालत के चक्कर में तभी पड़ता है जब युद्ध की तरह उसके ऊपर कोई जबरदस्ती मुकदमेबाजी थोप ही दे। ऐसी स्थिति में उसे लगता है कि अब तो अपना बचाव करने के लिए मजबूरी है। कभी-कभी वह ऊब कर और झुंझलाकर हिंसक अपराधों की ओर भी भागता है और सोचता है कि जब बिना कुछ अपराध किये ही मुकदमेबाजी भुगतनी पड़ रही है तो क्यों न प्रतिपक्षी को तबाह करके ही मुकदमा लड़ा जाये।

इससे नये अपराध तथा नये मुकदमे बढ़ते हैं और अदालतों में लम्बित मुकदमों का ढेर बढ़ता ही जाता है। इस स्थिति को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि न्याय की प्रक्रिया को अत्यन्त सरल बनाया जाये। न्याय पाना बिल्कुल खर्चीला न हो तथा लम्बा समय भी नष्ट न करे।

लम्बी मुकदमेबाजी की जटिल, खर्चीली व उबाऊ प्रक्रिया व्यक्ति के विकास में स्पष्टतः बाधक है तथा उसे विकास के अवसर से वंचित करती है। अतः वर्तमान न्यायिक प्रक्रिया विकासवाद की दृष्टि से पूरी तरह अनुचित तथा त्याज्य है। न्याय की प्रक्रिया में समय-सीमा का होना बहुत आवश्यक है। विलम्ब से न्याय मिलना भी अन्याय ही है।

मनुष्य का जीवन काल बहुत कम है। तुलनात्मक रूप से मुकदमे काफी लम्बे समय तक चलते हैं। यदि जीवन के प्रभात में कोई व्यक्ति अन्याय का शिकार होता है और उसे जीवनकाल की

संध्या में वृद्धावस्था में न्याय मिल भी जाता है तो उस न्याय का उस व्यक्ति के लिए कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं होता और मुकदमे तो एक व्यक्ति के जीवनकाल में समाप्त ही नहीं हो पाते। कभी-कभी तो कई पीढ़ी तक चलते हैं। ऐसी स्थिति में न्याय तो साक्षात् अन्याय का रूप बनकर रह जाता है।

ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि प्रणाली बदली जाये तथा समय सीमा निश्चित की जाये। पारिवारिक तथा सामाजिक विवादों के मामलों में अन्तिम निर्णय अधिकतम एक वर्ष के अन्दर हो ही जाना चाहिए। ऐसे मामलों में किसी के पक्ष में तथा किसी के विरुद्ध निर्णय देने के स्थान पर दोनों पक्षों की आपसी सहमति से कोई रास्ता निकालने का प्रयास किया जाना चाहिए। यही वास्तविक न्याय होगा।

पारिवारिक तथा सामाजिक मामलों में दोनों पक्षों की आपसी सहमति से हल निकालने की व्यवस्था में आपसी कटुता समाप्त हो सकेंगे। इससे भविष्य में अपील या अन्य कानूनी दांव-पेचों से फिर से मुकदमेबाजी शुरू करने की संभावना भी समाप्त होगी। अदालतों में मुकदमों का भार कम होगा तथा समाज में कटुता, शत्रुता, संघर्ष व अपराध कम होंगे।

कुछ जटिल मुकदमों में अधिक समय की आवश्यकता हो सकती है। लेकिन किसी भी स्थिति में पांच वर्ष से अधिक एक विवाद को अदालत में चलना ही नहीं चाहिए। किसी व्यक्ति की आजीविका के साधन भूमि, दुकान या उसकी नौकरी ही यदि अन्यायपूर्वक छीन ली जाये तो बीस वर्ष बाद न्याय मिलने का क्या उपयोग है। तब तक तो आर्थिक संकट के कारण उस परिवार का पूरी तरह से विनाश हो चुका होगा। अतः सीमित व निश्चित समय

अवधि के अन्दर मुकदमे का फैसला न हो पाना न्याय देने वाली व्यवस्था का अपराध माना जाना चाहिए। साथ ही यदि कोई न्यायाधीश समिति समय के अन्दर दोनों पक्षों में समझौता कराकर अन्तिम फैसला कर दे तो इसे उस विद्वान् न्यायमूर्ति की विशेष क्षमता मानते हुए पुरस्कार दिया जाना चाहिए। जिस न्यायाधीश के निर्णय से दोनों पक्ष सन्तुष्ट हों तथा आगे ऊंची अदालत में अपील न करें, उसे ही प्रोन्नति दी जानी चाहिए।

वर्तमान न्याय व्यवस्था में इतना सुधार तो सरलता से किया ही जा सकता है। इसके लिए पूरे ढांचे में मौलिक परिवर्तन करने की भी आवश्यकता नहीं है। अतः एक अध्यादेश जारी करके अथवा एक सरल सा अधिनियम पारित करके तुरन्त इतना कर ही दिया जाना चाहिए।

विकासवादी समाज व्यवस्था में तो न्याय प्रणाली का पूरा आधारभूत ढांचा ही बदल दिया जायेगा। वादी या प्रतिवादी किसी को भी मुकदमा नहीं लड़ना पड़ेगा। अदालत का चक्कर लगाना या वकीलों के जाल में उलझना नहीं पड़ेगा। न्यायाधीश स्वयं अपने नीर-क्षीर विवेक तथा न्यायालय के संसाधनों से वास्तविकता का पता लगाकर न्याय करेंगे। अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए गवाह व प्रमाण जुटाने का दायित्व वादी या प्रतिवादी का नहीं होगा। बीमारी का बहाना बनाकर या वकील के न होने के बहाने से तारीखें बढ़वा कर मुकदमेबाजी को लम्बा खींचने की सुविधा किसी को नहीं दी जायेगी।

मुख्य बात यह होगी कि हिंसा, लूटपाट, चोरी या इसी प्रकार के संगीन अपराधों के अलावा अन्य द्विपक्षीय मामलों का निर्णय ऐसा करना अनिवार्य होगा, जिसे सभी पक्ष स्वीकार्य करें। ऐसी

क्षमता न्यायाधीश के लिए अनिवार्य योग्यता मानी जायेगी।

यदि किसी व्यक्ति के साथ अन्याय होता है तो वह न्याय पाने के लिए साधारण ढंग से आवेदन करेगा जिसमें मामले का विवरण स्पष्ट किया जायेगा। इसमें पेशेवर वकील की कोई भूमिका नहीं होगी। आवेदन की प्रति प्राप्तकर्ता न्यायालय कर्मचारी आवेदक को प्राप्ति स्वीकृति देकर वापस कर देगा। इसके बाद आवेदक को अपना समय नष्ट कर वकील या अदालत के चक्कर नहीं लगाने पड़ेंगे।

न्यायालय किसी पंजीकृत कानूनविद जांचकर्ता को मामले की जांच के लिए नियुक्त करेगा। वह जांचकर्ता न्यायाधीश की ओर से आवेदनकर्ता तथा उसने जिनके विरुद्ध शिकायत की है, उन सभी व्यक्तियों से उनके निवास या कार्यस्थल पर सुविधानुसार सम्पर्क कर आवश्यक जानकारी एकत्र करेगा। स्वयं जांचकर्ता के घटनास्थल पर जाने से तथा सम्बन्धित व्यक्तियों से स्वयं मिलने से नकली गवाहों तथा वकीलों के दावपेंच की गुंजाइश ही नहीं रहेगी। वकालत करने वाले कानूनवेत्ता तब जांचकर्ता के रूप में निष्पक्ष कार्य कर सकेंगे। उनका कार्य छोटे स्तर पर जांच आयोग जैसा होगा। दोनों पक्षों से मिलेंगे और आपसी सहमति तथा मेल मिलाप का माहौल बनाने में भी सहायक होंगे, क्योंकि सफल होने पर शासन की ओर से प्रोत्साहन तथा दोनों पक्षों से न्यायालय द्वारा स्वीकृत पारिश्रमिक पा सकेंगे।

विवाद सुलझाने पर लाभ होने की व्यवस्था के कारण प्रतिमास एक जांचकर्ता अधिक से अधिक मामले सुलझाना चाहेगा, जिससे अधिक आय हो सके। यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना

आवश्यक है कि न्यायाधीश अपना निर्णय साधारणतः जांचकर्ता द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर ही देगा क्योंकि उसके पास वस्तुस्थिति की जानकारी का वही प्रत्यक्ष माध्यम या साधन है। लेकिन जांच कर्ता मनमानी रिपोर्ट नहीं दे सकेगा। उसे अपनी रिपोर्ट के समर्थन में पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करने होंगे। जांच आयोग भी केवल अपनी मर्जी से रिपोर्ट नहीं दे पाते हैं। फिर रिपोर्ट के एकपक्षीय होने तथा मनमानी पाये जाने पर उसका पंजीकरण निलंबित या रद्द किया जा सकता है। गलत रिपोर्ट देने पर उसके विरुद्ध भी शिकायत हो सकती है। न्यायाधीश उचित समझे तो एक से अधिक जांचकर्ता से अलग-अलग रिपोर्ट मंगवा सकता है।

रिपोर्ट प्रस्तुत होने के बाद न्यायाधीश के समक्ष दोनों पक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं। फिर न्यायाधीश स्वयं ही रिपोर्ट की निष्पक्षता का निर्णय कर सकेंगे। न्यायाधीश अपने निर्णय की प्रति सम्बन्धित पक्षों को स्वयं प्रदान करेंगे। न्यायाधीश तथा जाँचकर्ता की महत्ता का आकलन इसी बात से किया जायेगा कि कम से कम समय में कितने मामलों का सर्वस्वीकार्य हल निकालने में सफल रहे, जिस निर्णय के विरुद्ध अपील करने की आवश्यकता किसी को अनुभव न हो।

56. 6 घण्टे में संस्कृत सीखें

संस्कृत को 6 घण्टे में व्याकरण के आधारभूत अवयवों को एक आम संस्कृत जिज्ञासु के मस्तिष्क में बिठाकर उसे देववाणी

संस्कृत को सरलता से सिखाया जा सकता है। इस पद्धति को अनेक संस्कृत आचार्यों एवं सामान्य विद्यार्थियों तथा जिज्ञासुओं ने भी स्वीकार किया है। विकसित संस्कृत शिक्षा की नयी पद्धति वास्तव में न केवल व्याकरण सम्मत है बल्कि आम आदमी के लिए सहज ग्राह्य भी है। आम जन इस पद्धति से संस्कृत का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने में महत्वपूर्ण लाभ उठा सकता है।

यदि संस्कृत भाषा को वैज्ञानिक ढंग से सिखाया जाये तो इसे केवल छह घण्टे में सीखा जा सकता है। क्रियाओं या अन्य शब्दों के रूप तथा कठिन सूत्र रटने की कोई आवश्यकता नहीं है। इन्हीं कारणों से संस्कृत को कठिन माना जाता है।

कई आधुनिक शब्दों के रूप तो परम्परागत सारणियों या रूपावली के सहारे बन ही नहीं सकते। संस्कृत को आधुनिक संचार माध्यमों तथा प्रौद्योगिकी की भाषा बनाने में इस नयी पद्धति का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। यदि इस पद्धति को अपनाया जाये तो संस्कृत सर्वमान्य सम्पर्क भाषा बन सकती है।

परम्परागत व्याकरण में क्रियाओं के रूप बीस प्रकार से तथा अन्य शब्दों के रूप तीस प्रकार से चलते हैं। इसके अलावा कई शब्दों के रूप अपवाद रूप में भिन्न प्रकार से बनते हैं। इतने रूप रटना पूरी तरह अव्यावहारिक तथा अनावश्यक भी है।

प्राचीन व्याकरणशास्त्रों में ही ऐसे नियम बताये गये हैं जिनके द्वारा सभी तरह के शब्दों के रूप एक ही व्यापक नियम से सरलता से बन सकते हैं। यदि ऐसे नियमों को प्रमुखता देकर अपनाया जाये तो संस्कृत सबसे अधिक सरल व लोकप्रिय हो जायेगी।

सरल व्याकरण में अंग्रेजी के टेन्स की तरह आधुनिक लकार प्रणाली विधि से छात्रों को संस्कृत सिखायी जाये तो इसमें रुचि बढ़ेगी। पूर्ण वैज्ञानिक और समृद्ध भाषा संस्कृत में विविधता है लेकिन व्यापक नियम तथा वस्तुनिष्ठता भी है। यदि विविधता में उलझेंगे तो संस्कृत कठिन लगेगी। यदि व्यापकता को अपनायेंगे तो संस्कृत अत्यन्त सरल और चिर परिचित लगेगी।

संस्कृत भारत के सभी प्रदेशों में सम्मानित है। यह भारत की वास्तविक राष्ट्रीय भाषा है। राष्ट्रीय अखण्डता व सांस्कृतिक एकता का आधार संस्कृत ही है। हाईस्कूल तक के छात्रों को सरल आधुनिक व्याकरण को ही पाठ्यक्रम में रखना चाहिए। भाषा पर पूर्ण अधिकार हो जाने और सहज लिखना-पढ़ना सीख लेने के बाद उच्च कक्षाओं में ही पाणिनीय व्याकरण से परिचय कराया जाना चाहिए।

संस्कृत भाषा विज्ञान समझने के लिए यह विधि पूरी तरह शास्त्र सम्मत है और इस विधि से संस्कृत पढ़ायी जाये तो छात्रों की इसमें रुचि भी बढ़ेगी। विविधता में उलझने से यह दुष्कर हो जायेगी।

57. संस्कृत सीखना इतना मुश्किल नहीं

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम, सर्वाधिक समृद्ध तथा सबसे वैज्ञानिक भाषा है। विश्व का प्राचीनतम ज्ञान-विज्ञान तथा संस्कृति की धरोहर संस्कृत भाषा में ही सुरक्षित है। अतः मानवता की प्राचीनतम धरोहर व विकास के प्रारम्भिक सोपानों को सुरक्षित बनाये रखने के लिए संस्कृत भाषा का संरक्षण आवश्यक है। संस्कृत मधुर तथा मनोहारी भाषा है। इसे पढ़ने की इच्छा भी बहुत लोगों में होती

है। लेकिन क्या व्याकरण काफी जटिल होने के कारण लोग इससे दूर भागते हैं। परीक्षाओं में भी संस्कृत में अच्छे अंक मिलते हैं। अतः यह छात्रों में लोकप्रिय विषय है। केवल व्याकरण ही आड़े आती है।

प्राचीन व्याकरणाचार्यों ने भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से संस्कृत का व्यापक अध्ययन किया। वह सम्पूर्ण शोधकार्य व्याकरण के रूप में पढ़ाया जाता है। यही कारण है कि संस्कृत व्याकरण अपने आप में स्वतन्त्र विषय है। जबकि वास्तव में व्याकरण किसी भाषा को सीखने का माध्यम-मात्र होता है, स्वयं अलग विषय नहीं।

संस्कृत व्याकरण जटिल और दुरूह होने के कारणों में अति प्राचीन ढंग से पढ़ाया जाना प्रमुख है। संस्कृत भाषा की लिपि तक बदल गयी। अब ब्राह्मी लिपि का नाम तक किसी को पता नहीं, जो संस्कृत भाषा की प्राचीन लिपि थी। लेकिन व्याकरण की पद्धति वही बनी हुई है जो साढ़े चार हजार वर्षों से भी पहले प्रचलित थी। इस पद्धति में प्रत्येक शब्द के अलग-अलग रूप रहना सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। अब यह प्रणाली नीरस, उबाऊ और छात्रों पर बोझ है। यदि क्रियाओं तथा अन्य शब्दों के रूप रटने न पड़े तथा पाणिनि के जटिल सूत्रों से पीछा छूट जाए तो संस्कृत फिर से लोकप्रिय हो सकती है।

संस्कृत भाषा के तटस्थ सर्वेक्षण तथा व्याकरण के शोधपूर्ण विश्लेषण से मुझे व्याकरण प्रणाली का विकास करने में सफलता मिली है। इस प्रणाली में कोई रूप नहीं रटना पड़ता है। सूत्रों की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। अन्य भाषाओं की तरह आधुनिक वैज्ञानिक भाषा से संस्कृत भाषा केवल छह घण्टे में सिखायी जा सकती है। संस्कृत वैज्ञानिक भाषा होने के कारण सबसे सरल है।

प्राचीन शब्द रूप पद्धति से आधुनिक शब्दों के रूप नहीं बनाये जा सकते हैं। शब्द के अन्त में ऊ, ऐ, आदि होने पर रूप बनाने की कोई सारणी नहीं है। अतः नेहरू, भण्डारनायके आदि शब्दों के रूप बन ही नहीं सकते। शब्द के अन्त में क्, स्, च् आदि व्यंजनों के होने पर तो रूप बनाने की व्यवस्था है। इनके अलावा कोई अन्य व्यंजन शब्द के अन्त में हो तब कैसे रूप बनेंगे, यह भी समस्या है। शब्द के अन्त में ई, आ होने पर स्त्रीलिंग में रूप-सारिणी है। लेकिन पुल्लिंग शब्दों के अन्त में आ या ई आ जाए तो रूप बनाने में समस्या होगी। स्त्रीलिंग शब्द के अन्त में 'अ' हो तो भी किसी सारिणी से रूप नहीं बन सकता।

यदि संस्कृत को केवल पुस्तकालय में सीमित नहीं कर देना है तो ऐसे सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग करने की व्यवस्था व्याकरण में बताना पड़ेगा। यह तभी संभव है, जब शब्द-रूप की सीमा से बाहर निकला जाये। वास्तव में मूल-व्याकरण में इन सारिणियों का कोई स्थान है ही नहीं। भाषा में स्थिरता व सरलता लाने के लिए बनायी गयी शब्द व धातु रूपावली केवल जड़ता व जटिलता ही दे सकी। पुल्लिंग व नपुंसकलिंग में दस-दस तथा स्त्रीलिंग में ग्यारह शब्द रूप प्रमुख माने गये हैं। इस तरह कम से कम 32 शब्दों के चौबीस-चौबीस रूप रहना आवश्यक है। इसके बाद भी आधुनिक युग में अनेक शब्दों का रूप बनाना संभव नहीं। क्रियाओं अथवा धातुओं के रूप अलग हैं। रूप बनाने की दृष्टि से ग्यारह लकार मुख्य हैं। क्रियाओं में आत्मने पद व परस्मैपद नाम के दो पद होते हैं। प्रत्येक लकार में एक पद में धातु के न्यूनतम 9 रूप बनते हैं। इस प्रकार दो पदों में अठारह रूप बनेंगे। इस प्रकार एक

धातु के न्यूनतम 198 अर्थात् औसतन दो सौ रूप रटने पड़ेंगे। धातुओं के रूप दस प्रकार से बनते हैं। अर्थात् कम से कम 10 धातुओं के दो सौ-दो सौ रूप याद करने पड़ेंगे। वैसे केवल इस धातु से काम चलेगा नहीं। उक्त ग्यारह लकारों में सतत् लकार व पूर्ण लकार शामिल नहीं है।

परन्तु वास्तव में संस्कृत भाषा इतनी कठिन है नहीं। केवल व्याकरण पद्धति के पुनर्गठन की आवश्यकता है। क्रियाओं के रूप लकार के अनुसार वचन व पुरुष के अनुसार चलते हैं। पूर्ण लकारों व सतत् लकारों में लिंग व वचन का प्रभाव पड़ता है, पुरुष का नहीं। आधुनिक संस्कृत व्याकरण में सोलह लकारों को व्यवस्थित किया गया है। वर्तमान काल व भूतकाल में छह लकार हैं तथा भविष्यत् काल में चार लकार हैं। प्रत्येक लकार में मूल धातु से परसर्ग या प्रत्यय जुड़ता है। उन प्रत्ययों को प्रयोग लकार के अनुसार सिखा दिया जाता है। जैसे स्वभाव वर्तमान काल में हिन्दी में ता है, ती है, ते हैं, ता हूँ, ते हो आदि प्रत्यय जुड़ते हैं। अंग्रेजी में इनके स्थान पर एस् या ई-एस जुड़ते हैं। इस प्रकार से अंग्रेजी टेन्स में संस्कृत लकार समझना सरल है।

वर्तमान काल में सामान्य, स्वभाव, सतत्, पूर्ण, निर्देश तथा आज्ञा लकार हैं। भूतकाल में सामान्य, स्वभाव, सतत्, पूर्ण, विधि तथा अनुबन्ध हैं। भविष्यत्काल में स्वभाव, सतत्, पूर्ण तथा आशीष लकार होते हैं। इस प्रकार लकार प्रणाली को नये वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित किया गया है। सहायक क्रिया की भी अवधारणा नये रूप में प्रस्तुत की है। इससे लकार काफी सरलता से स्पष्ट हो गये हैं। इसके अलावा विशिष्ट क्रिया का प्रयोग सीखने से सन्देह की

स्थितियों में शुद्ध व सरल वाक्य रचना सम्भव हो गयी है।

प्रत्येक भाषा में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। इनका शब्दार्थ ही याद किया जा सकता है, जो आवश्यक ही है। सर्वनाम भी हर भाषा के अपने होते हैं। संस्कृत में कुछ सर्वनाम स्वतन्त्र अव्यय हैं। इनके अलावा अन्य सर्वनाम शब्दों में चिंता, वचन व कारक के अनुसार परिवर्तन होता है। इन परिवर्तनों के नियम बहुत सरल हैं।

इनके अतिरिक्त संज्ञा व विशेषण शब्दों के रूप बनाना जटिल समस्या नहीं है। इनमें भी परिवर्तन के कारण लिंग, वचन व कारक ही होते हैं। इन्हीं के लिए बत्तीस शब्दों के चौबीस-चौबीस रूप रटाये जाते हैं। इनके स्थान पर केवल बीस विभक्ति प्रत्यय सीख लिये जाते हैं तो सभी शब्दों को लिंग, वचन, कारक के अनुसार प्रयोग किया जा सकता है। इन विभक्तियों का प्रयोग स्पष्ट करने के लिए ही शब्द रूपावली बनायी गयी है।

विभक्ति प्रत्यय के कुछ उदाहरण देखें। कर्ताकारक एकवचन में शब्द के अन्त में अ, इ, उ होने पर विसर्ग लगता है। शेष में कुछ नहीं। श्री शब्द ही अपवाद है। उसमें विसर्ग लगता है। तीन कारकों करण, सम्प्रदान व अपादान में द्विवचन में भ्याम् होता है। सम्प्रदान व अपादान बहुवचन में भ्यः होता है। अन्य विभक्ति प्रत्ययों के प्रयोग भी इसी तरह समझे जा सकते हैं।

संस्कृत में वाक्य रचना सबसे सरल है। प्रत्येक शब्द और क्रियापद में उचित प्रत्यय लगे होने के कारण वाक्य में शब्दों का स्थान निश्चित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कोई भी शब्द वाक्य में किसी भी स्थान पर आ सकता है। उसका अर्थ एक ही

रहेगा।

इतनी व्याकरण के अलावा केवल 'वाच्य' सीखना और रह जाता है। वाच्य प्रकरण में कर्म को कर्ता के रूप में प्रयोग करना सीखते हैं। जैसे पुस्तक पढ़ी जाती है। पुस्तक इस वाक्य में पढ़ने का कार्य नहीं करती फिर भी कर्ता के रूप में प्रयोग है।

संस्कृत भाषा लिपि भी अलग नहीं है। इसे मुख्य रूप से नागरी लिपि में ही लिखा जाता है। अन्य भारतीय लिपियों में भी इसे लिखने की सुविधा है। सभी भारतीय भाषाओं में सत्तर से नब्बे प्रतिशत तक संस्कृत शब्द ही मूलरूप में प्रयोग होते हैं। सर्वनाम, अव्यय तथा कुछ क्रियाएँ ही सीखनी पड़ती हैं। इतनी शब्दावली तो एक माह के व्याकरण के अभ्यास के दौरान स्वतः ही याद हो जायेगी। अतः किसी भी भारतीय के लिए संस्कृत सबसे सरल दूसरी भाषा हो सकती है। यह सम्पर्क भाषा के रूप में पुनः अपना स्थान थोड़े से ही प्रयासों से प्राप्त कर सकती है। यदि सरल व्याकरण प्रणाली को अपनाया जाये तो भारत जैसे बहुभाषा भाषी देश की जटिल भाषी समस्या का समाधान हमें संस्कृत के रूप में प्राप्त हो सकता है।

आधुनिक वैज्ञानिक व्याकरण का सिद्धान्त अपनाया गया व्याकरण शास्त्र के कुछ प्रकरण सभी भाषाओं में लागू होते हैं। शब्द विभाग, लिंग, वचन, कारक, पुरुष तथा लकार मूल व्याकरण के अन्तर्गत माने जा सकते हैं। इन्हीं 6 प्रकरणों को समझ लिया जाये तो मोटे तौर पर व्याकरण सम्पूर्ण हो जाती है।

सभी छात्रों ने हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी व्याकरण पढ़ते समय इन प्रकरणों का अध्ययन किया है। शब्द भेद पांच हैं - संज्ञा,

सर्वनाम, क्रिया, विशेषण और अव्यय। व्याकरण में संज्ञा, सर्वनाम व विशेषण शब्दों में रूप परिवर्तन एक ही प्रकार से होते हैं। अतः संस्कृत में इन तीनों प्रकार के शब्दों को एक ही विभाग 'नाम' के अन्तर्गत भी रखा जाता है। 'नाम' में परिवर्तन लिंग, वचन व कारक के अनुसार होता है। संस्कृत भाषा में वचन व कारक के अनुसार परिवर्तन करना बहुत सरल है। तीनों वचनों एक वचन, द्विवचन व बहुवचन सभी कारणों में अलग-अलग विभक्ति चिह्न् हैं। ये शब्दांश विभक्ति जोड़ देने से ही अभीष्ट कारक व वचन का रूप बन जाता है। हर शब्द का एक वचन - द्विवचन व बहुवचन रटना नहीं पड़ता है, जैसा अंग्रेजी में होता है। अंग्रेजी प्रिपोजीशन की तरह विभक्तियों का प्रयोग सीखना ही पर्याप्त है।

संस्कृत को व्यावहारिक और व्यापक भाषा बनाने के लिए हमें परम्परागत शैली में कुछ सामान्य परिवर्तन करने होंगे। संचार माध्यमों, संगणकों (कम्प्यूटर) व बोलचाल की भाषा के रूप में विकसित करने के लिए वाक्य रचना की शैली को तो सरल बनाना ही होगा। ऐसा करने से संस्कृत की मूल प्रकृति या शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन नहीं होगा।

किसी का पता लिखने में सामान्यतः व्यक्ति का नाम, ग्राम व मोहल्ले का नाम तथा नगर व जनपद का नाम होता है। इन नामों को मूल रूप में ही लिखना चाहिए। रमेश चन्द्र, राजेन्द्र नगर, बरेली ही पर्याप्त है। इसमें रमेश चन्द्र, राजेन्द्र नगरे, बरेली जनपदे अथवा बरेलीय या बरेलीस्य जैसे रूप में लिखना आवश्यक नहीं है।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है संधियों के अनावश्यक प्रयोग से बचना। संस्कृत को कठिन बनाने में संधियों के अधिक प्रयोग का

बहुत योगदान है। लंबी-लंबी संधियों को तोड़कर अर्थ निकालना वास्तव में कठिन होता है। कभी-कभी संधि-पदों को कई तरह से तोड़ा जा सकता है और एक ही शब्द के कई अलग-अलग अर्थ निकल आते हैं। अतः वाक्य रचना में संधियों का प्रयोग लगभग नहीं ही होना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर नये शब्दों के निर्माण में तो संधि उपयोगी है, अन्यथा नहीं।

संस्कृत में नये-नये आधुनिक शब्दों का प्रयोग स्वीकार करना पड़ेगा। व्याकरण में यह क्षमता उत्पन्न करनी पड़ेगी। नेहरू, माओ, टीटो, सिरिमाओ भण्डारनायके व जयवर्द्धने जैसे शब्दों के रूप परम्परागत सारणियों, रूपावलियों के सहारे नहीं चलाये जा सकते। क्योंकि इनमें ऊकारान्त, एकारान्त व ओकारान्त शब्दों की कोई व्यवस्था नहीं है। लेकिन ऐसे शब्दों की समाचार पत्रों, आकाशवाणी व दूरदर्शन पर मूल रूप में प्रयोग करना ही होगा। तभी संस्कृत को वैज्ञानिक व प्रौद्योगिक विषयों में अनिवार्यतः लागू किया जा सकेगा।

इस समय प्रथमाक्षर संक्षेप प्रणाली का बहुत प्रचलन है। भाजपा, माकपा, रासेवा (राष्ट्रीय सेवा योजना), टी. वी., वी.सी.आर., लो.स., रा.स., वि.स., वि.प. जैसे शब्दों का प्रयोग करने में भी व्याकरण को सक्षम होना चाहिए। परम्परागत शब्द रूपावली के सहारे इस प्रकार के संक्षेप-संकेतों का प्रयोग नहीं हो सकता।

ऐसी अनेक समस्याओं के समाधान के लिए व्यापक विभक्ति -प्रत्ययों का निर्धारण व प्रयोग आवश्यक है। सौभाग्य से बहुत अधिक विविधता के बावजूद कुछ विभक्ति-प्रत्यय ऐसे अवश्य हैं, जो शब्द के अन्त में कोई भी वर्ण होने पर प्रयोग किये जा सकते हैं। जैसे तृतीया एकवचन करण कारक में देवेन, रामेण, गुरुणा, सरिता, नद्या

जैसे अनेकधा रूप बनते हैं।

अच्छा हो कि प्रारम्भिक कक्षाओं में छात्रों को ऐसे व्यापक प्रयोग वाले विभक्ति चिह्न ही सिखाए जाएँ। इससे छात्रों को संस्कृत सरल लगेगी तथा उसे अपना सकेंगे। उच्चतर कक्षाओं में ही विविधतापूर्ण जटिल रूपों का सूक्ष्म ज्ञान कराया जाये।

58. जनसामान्य से जुड़ने के लिए संस्कृत का सरल होना जरूरी

परम्पराओं व सिद्धान्तों के अनावश्यक बोझ से संस्कृत भाषा कठिन ही नहीं हुई बल्कि यह लोक जीवन से कटती चली गयी। आवश्यकता इस बात की है कि संस्कृत को सरल व बोधगम्य बनाकर इसे अन्य आधुनिक भाषाओं के समकक्ष खड़ा किया जाये।

अंग्रेजी की प्रतिस्पर्धा में पिछड़ती संस्कृत बोलचाल की व्यवहार की भाषा रही है। तभी हमें पांचाल से जुड़े पांचाली व विदर्भ से जुड़े वैदर्भी जैसी शैलियों का परिचय मिलता है। स्थान विशेष से जुड़ी शैलियाँ यह बताती हैं कि यहाँ कभी संस्कृत बोली जाती रही। संस्कृत को प्रशासनिक व मेडिकल व इंजीनियरिंग आदि की परीक्षाओं से भी जोड़ा जाये। संस्कृत से जुड़ने के लिए इस भाषा में निमंत्रण पत्र व संस्कृत पत्रिकाएँ पढ़ने और उनको व्यवहार में लाया जाये। यदि हम अनावश्यक पांडित्य के प्रदर्शन से बच सकें तो कोई कारण नहीं कि छात्रों में संस्कृत के प्रति रुचि नहीं पैदा की जा सकती है। अनावश्यक दुरूहता के कारण ही छात्र संस्कृत भाषा से नहीं जुड़ पाता। प्रारम्भिक तौर पर संस्कृत सीखने वाला इसके प्रयोग में

गलतियां कर सकता है किन्तु मात्र इसलिए उन विद्वानों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। पतन संस्कृत का नहीं हमारा हुआ है और आज हमें अपने ही उत्थान के लिए संस्कृत अपनाने की परम आवश्यकता है।

59. वैज्ञानिक नागरी लिपि

देवनागरी अथवा नागरी लिपि ध्वनि विज्ञान की दृष्टि से विश्व की सर्वश्रेष्ठ लिपि है। अपनी वैज्ञानिकता के कारण भाषा विज्ञान तथा लिपि विज्ञान में इसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह महान् उपलब्धि भारतीय लिपि के चित्र लिपि से विकसित होकर वर्तमान रूप प्राप्त करने तक की सुदीर्घ यात्रा का सत्परिणाम है, जिसमें लगभग दश हजार वर्षों से अधिक का समय लगा है। हड़प्पा तथा मोहन जोदड़ो की खुदाई में भारतीय लिपि के प्राचीनतम नमूने प्राप्त हुये हैं। इनको चित्रलिपि स्वीकार किया गया है। तत्कालीन सिक्कों आदि में इस लिपि के अवशेष खुदाई में प्राप्त हुये हैं। इस लिपि का समय 1500 से 3000 वर्ष कृष्ण पूर्व अर्थात् इस समय से 6500 से 8000 वर्ष पूर्व का माना जाता है। स्वाभाविक है कि जिस दिन पहला लेख लिखा गया, वही लेख खुदाई में नहीं मिला है। अपितु इससे पूर्व हजारों वर्षों से यहाँ सप्तसैन्धव प्रदेश (वर्तमान पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान) में लेखन कला तथा लिपि विकसित हो रही थी। सिन्धु घाटी की लिपि चित्रात्मकता से ध्वन्यात्मक लिपि के रूप में विकसित होती हुई, अवस्था की है।

वर्तमान नागरी लिपि का विकास कृष्ण की 41वीं शताब्दी में

प्रारम्भ हुआ तथा कृष्ण की 45वीं शताब्दी में वर्तमान रूप स्थिर हुआ। इस प्रकार कृष्ण की 45वीं शताब्दी से वर्तमान 53वीं शताब्दी तक निरन्तर 8 शताब्दियों तक नागरी लिपि मध्य देश के विशाल भू -भाग के विचारों को वहन करने का माध्यम है। वर्तमान समय में नागरी लिपि का क्षेत्र महाराष्ट्र प्रदेश से, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश होता हुआ विहार तक फैला हुआ है। भारतीय सीमा के आस-पास नेपाल देश की प्रमुख लिपि नागरी ही है। नेपाल के सिक्कों से लेकर जनजीवन तक नागरी लिपि का व्यापक प्रयोग होता है।

पूर्ण वैज्ञानिक लिपि

नागरी लिपि में संसार की समस्त ध्वनियां पायी जाती हैं। प्रत्येक ध्वनि के लिये इसमें पृथक् चिह्न है। संसार की किसी भी भाषा के किसी भी शब्द को वैसा का वैसा ही नागरी लिपि में लिखा जा सकता है। यह क्षमता भारतीय लिपि के अतिरिक्त संसार की किसी भी लिपि में नहीं पायी जाती। इसी कारण से नागरी लिपि को पूर्ण वैज्ञानिक लिपि कहा जाता है। एक ही परम्परा खरोष्टी तथा ब्राहमी लिपि के क्रम से विकसित होने के कारण सभी भारतीय लिपियों में यह गुण विद्यमान है। ध्वनियाँ तथा उच्चारण सभी भारतीय लिपियों के समान ही हैं। केवल उन ध्वनियों के चिन्हों की आकृतियों में ही थोड़ा बहुत भेद है।

अल्प न्यूनतायें

पूर्ण वैज्ञानिक लिपि कहे जाने पर भी नागरी लिपि में अति अल्प सूक्ष्म न्यूनतायें भी हैं, जिन्हें सरलता से दूर किया जा सकता है।

प्रथमतः इ (ह्रस्व इकार) की मात्रा का चिह्न उचित नहीं है। हम स्वर 'इ' का उच्चारण व्यञ्जन के बाद करते हैं, जबकि लिपि में मात्रा का चिह्न पहले आ जाता है। इससे लिखते समय बहुधा मात्रा छूट जाती है।

द्वितीयतः नागरी में कुछ स्वरों जैसे- , ओ, ऐ, औ के ह्रस्व रूप के चिन्ह नहीं हैं। उदाहरणार्थ शब्द 'प्रेस' में स्वर 'ए' ह्रस्व रूप में उच्चारण किया जाता है। किन्तु दीर्घ रूप में ही लिखना पड़ता है। इसका समाधान सरलता से किया जा सकता है। दीर्घ के नीचे छोटी सी पड़ी रेखा (-) प्रकार की खींच देना चाहिए।

जैसे- 'प्रेस' कालेज में 'ए' ह्रस्व रूप में हैं। तथा 'प्रेम' 'प्रेषक' में 'ए' स्वर दीर्घ रूप में है।

इसी प्रकार 'इ' के परम्परागत मात्रा के चिह्न को हटाकर दीर्घ 'ई' के मात्रा के चिह्न के नीचे इसी प्रकार पड़ी रेखा खींच कर इस त्रुटि को दूर किया जा सकता है। जैसे, 'लिपि' को इस प्रकार लिखा जाये–लीपी।

रोमन ध्वनि '0' के लिये अर्ध चन्द्र का चिह्न स्वीकृत ही है उचित है। उदाहरण के लिये - डॉक्टर, कॉलेज, कॉम्पाउण्ड इत्यादि।

पूर्ण वर्णमाला

इस प्रकार पूर्ण नागरी वर्णमाला में 60 ध्वनियाँ या अक्षर होंगे।

ह्रस्व स्वर– अ, इ, उ, ए, ऐ ओ, औ।

दीर्घ स्वर– आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऑ।

अर्ध स्वर– ऋ, ऌ

अनुस्वार–

व्यञ्जन– 'क्' वर्ग, च् वर्ग, ट् वर्ग, त् वर्ग, प् वर्ग–कुल पाँच वर्ग 25 वर्ण।

अन्तस्थ– य्, र्, ल्, व्।

ऊष्म– श्, ष्, स्, ह्,।

संयुक्त– क्ष, ज्ञ।

नवीन– ड़, ढ़।

वैदिक– ळ।

इस प्रकार 60 ध्वनियों की पूर्ण वर्णमाला पूर्णतः वैज्ञानिक है।

60. यान्त्रिक नागरी लिपि

नागरी लिपि ध्वनि विज्ञान की दृष्टि में विश्व की सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक लिपि है। जैसा कि मैंने 'वैज्ञानिक नागरी लिपि' शीर्षक लेख में लिखा था, वे थोड़े से सुधार स्वीकार कर लेने पर नागरी लिपि एक 'आदर्श वैज्ञानिक लिपि' बन जाती है। परन्तु वर्तमान यान्त्रिक युग में यान्त्रिक दृष्टि से उपयोगिता भी आवश्यक है।

यान्त्रिक उपयोगिता की दृष्टि से हमे विचार करना होता है कि कोई लिपि आधुनिक यन्त्रों–टाइपराइटर, मुद्रण (टेली प्रिन्टर) दूर मुद्रण, कम्प्यूटर आदि में कितनी सरलता से प्रयोग की जा सकती है। इस दृष्टि से निश्चित रूप से ही 'रोमन लिपि' सर्वाधिक उपयोगी है। किन्तु यान्त्रिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी होते हुये भी इसे हम पूर्णतः इसलिये नहीं अपना सकते क्योंकि ध्वनि विज्ञान की दृष्टि से यह लिपि बिल्कुल ही असमर्थ है। इसमें केवल 26 अक्षर हैं। जबकि विश्व में कुल ध्वनियों की संख्या इसके दो गुने से भी अधिक है।

इसके अतिरिक्त एक ही अक्षर कई ध्वनियाँ ('सी'-से ही 'क' तथा स या 'टी'-से ट तथा च इत्यादि) निकलती हैं। इसी प्रकार एक ही ध्वनि कई अक्षरों से भी व्यक्त हो जाती है। अक्षरों की ध्वनियां बिल्कुल भी निश्चित नहीं हैं। उदाहरणार्थ– 'पी-यू-टी' से 'पुट' तथा 'सी-यू-टी' से 'कट' का उदाहरण बहुत प्रसिद्ध है। इसी प्रकार शब्द में अक्षर के न होते हुये भी उस अक्षर की ध्वनि का उच्चारण होना ('कर्नल' आदि) तथा अक्षर के होते हुये भी उस ध्वनि का उच्चारण न होना (कुड, शुड इत्यादि) जैसे दोष अत्यधिक हैं। अतः इस लिपि का ध्वनि विज्ञान से दूर का भी सम्बन्ध नहीं दिखता।

अतः सर्वश्रेष्ठ सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि नागरी लिपि में ही कुछ सुधार करके इसे यान्त्रिक प्रयोगों के अनुरूप बनाना अनिवार्य आवश्यकता है। जैसा कि 'रोमन' लिपि में लिखने तथा छापने के अक्षर अलग होते हैं तथा ये छापे के अक्षर ही यन्त्रों में प्रयोग किये जाते हैं। उसी प्रकार नागरी लिपि के अक्षरों में भी थोड़ा स्वरूप-परिवर्तन करके छापे का रूप पृथक तैयार कर लें तो यान्त्रिक युग की समस्या हल हो सकती है। 'रोमन' लिपि का छोटे तथा बड़े अक्षर का रोग न तो नागरी लिपि में है और न आवश्यकता ही है।

वर्तमान नागरी लिपि में केवल दो छोटे-छोटे साधारण सुधार करके इस लिपि को 'आदर्श वैज्ञानिक लिपि' के साथ–साथ एक उत्तम उपयुक्त यान्त्रिक लिपि भी बनाया जा सकता है।

सुधार की आवश्यकता

यान्त्रिक उपयोगिता की दृष्टि से नागरी लिपि का एकमात्र दोष इसके स्वरों की लगने वाली पृथक मात्राएँ तथा संयुक्ताक्षरों का अत्यधिक प्रयोग है।

प्रथम समस्या– मात्राओं की है। मूल व्यञ्जन के ऊपर नीचे लगने वाली मात्रायें यान्त्रिक प्रयोग में जटिलता तथा कठिनाई उत्पन्न करती हैं। रोमन लिपि में इन मात्राओं के स्थान पर मूल स्वरों का ही प्रयोग होता है। जैसे– 'कैट' शब्द को रोमन में 'सी-ए-टी' लिखेंगे। किन्तु इसमें यह स्पष्ट नहीं है कि इस शब्द में आये स्वर 'ए' का स्वतन्त्र स्वर की भांति उच्चारण होगा अथवा यह 'ए' स्वर व्यञ्जन 'सी' पर मात्रा लगाने का कार्य करेगा। अर्थात् हम 'सी-ए-टी' को कैट पढ़ेगे अथवा 'क-ए-ट' पढ़ेगे। दोनों ही उच्चारण के लिए रोमन में 'सी-ए-टी' ही लिखा जायेगा। यह बिल्कुल अनुचित है।

नागरी लिपि के यान्त्रिक रूप में हम भी 'रोमन लिपि' की ही विधि के अनुसार मान्त्राओं के स्थान पर मूल स्वरों का ही प्रयोग करेगें। किन्तु इस अस्पष्टता के दोष को दूर करने के लिए हम जिस स्वर का प्रयोग मात्रा लगाने के लिये करेंगे, उस स्वर के ऊपर एक छोटी सी पड़ी लकीर (-) इस प्रकार बना देंगे। उदाहरण के लिये हम 'राम' शब्द को इस प्रकार– 'र आ म' लिखेंगे। जिन स्वरों का उच्चारण स्वतन्त्र स्वर के रूप में होना है, उन स्वरों के ऊपर यह पड़ी रेखा नहीं होगी। जैसे- आम, 'प इ त आ ओं' (पिताओं) इत्यादि।

द्वितीय समस्या– संयुक्ताक्षरों की अधिकता है। इसका समाधान अति सरल है। संयुक्ताक्षरों के हलन्त वर्ण के लिए हलन्त

चिन्ह (-) प्रचलित है ही। सभी हलन्त वर्णों के लिए इसी चिन्ह का प्रयोग किया जाये। जैसे हम 'जन्म' शब्द को 'जन्.म' लिखेगें। इस प्रकार संयुक्ताक्षरों के लिये अलग से टाइप नहीं बनाने पड़ेंगे। इसी प्रकार हम ' कर्.म' (कर्म) ' क्.रम' (क्रम) आदि लिख सकते हैं। जिस ध्वनि का उच्चारण पहले होगा उस वर्ण को पहले लिखा जायेगा चाहे वह हलन्त हो या - अजन्त (स्वरान्त) हो। इस प्रकार की नागरी लिपि यान्त्रिक प्रयोगों के लिये सर्वथा उपयुक्त होगी।

यान्त्रिक नागरी लिपि में मुद्रित एक वाक्य देखें-

'वह धर्म क ए पथ पर चलतआ हए। है को इस प्रकार भी लिख सकते हैं– ह ऐ'। इसी प्रकार– 'एक' नएक, सओम इत्यादि। शिरो रेखा हटा देने पर समय की बचत हो सकती है। जैसे– 'परमात्मआ' (परमात्मा)। शिरो रेखा को हटाना यान्त्रिक लिपि की अपेक्षा हस्त लेख में अधिक उपयोगी होगा। गुजराती लिपि में यह शिरो रेखा हटा दी गयी है। यह एक अच्छा कार्य है।

61. समाचार पत्र और हिन्दी भाषा का स्वरूप

आज समाचार पत्रों की पहुंच गांव-गांव तक है। हिन्दी का जो रूप सबसे अधिक लोगों तक पहुंचता है, वह समाचार पत्रों की ही हिन्दी है। साधारण लोग, अखबारों की भाषा को ही आदर्श और प्रामाणिक मानते हैं और उसी से शब्द रचना और वाक्य रचना सीखते भी हैं। अखबार केवल घटनाओं की सूचना का ही माध्यम नहीं है, वे किसी भाषा के प्रचार-प्रसार और उसे एक मानक रूप देने के सशक्त साधन भी हैं। हिन्दी भाषा के सबसे प्रमुख क्षेत्र उत्तर प्रदेश और दिल्ली में सबसे मजबूत पकड़ होने के कारण जागरण का

भी इसमें बहुत अधिक महत्व है, काफी अहम् भूमिका है।

हिन्दी अपेक्षाकृत नयी और विकासशील भाषा है। मानक खड़ी बोली हिन्दी के भाषा का रूप लेने के साथ ही मुद्रण और अखबारों का युग शुरू हो गया था। यह अवधि लगभग डेढ़ शताब्दी है। इस अवधि में जितनी तेजी से खड़ी बोली हिन्दी का प्रसार हुआ, वह विश्व इतिहास में एक मात्र उदाहरण है। ब्रज भाषा को अपदस्थ कर खड़ी बोली शिक्षित, साहित्यिक वर्ग की भाषा बनी और केवल एक शताब्दी में पूरे भारत वर्ष पर छा गयी, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्थान भी बना लिया। इतने कम समय में कोई भाषा इतनी प्रगति नहीं कर सकी है। हिन्दी को सरकारी महत्व न मिलने कारण राजनीतिक स्वार्थ है। उससे प्रगति पर प्रभाव नहीं पड़ता।

लेकिन इतनी तेज प्रगति से विपरीत प्रभाव भी पड़ा। हिन्दी की कोई मानक व्याकरण नहीं बन सकी और शब्दों का रूप निश्चित नहीं हो सका। एक तरफ संस्कृत की परम्परा का बोझ और दूसरी ओर व्यावहारिकता के आग्रह के नाम पर घोर अराजकता हिन्दी भाषा इन दो पाटों के बीच में पिसकर रह गयी।

हिन्दी व्याकरण के क्षेत्र में विवेचना, नियमन और चिन्तन पर प्रचार शक्ति हावी रही। हमारी भाषा कितनी भी लोक ग्राह्य, सरल नियमबद्ध व मानक क्यों न हो, यदि उनके पास ज्यादा अखबार बेच पाने के संसाधन हैं, तो वह अपनी भाषाई अराजकता जनमानस पर थोपने में समर्थ है। समाचार पत्र के उद्योग बन जाने और गला काट व्यावसायिकता के कारण कैसी भी भाषा में बिकाऊ चीज कम पैसे में लिख देने वाले प्रभावी हो गये और भाषा के प्रति सावधानी का आग्रह करने वाले पर्दे के पीछे चले गये।

इस क्षेत्र में दैनिक जागरण की भूमिका अपेक्षाकृत अच्छी है। सर्वाधिक प्रसार के कारण जागरण के प्रयोग का महत्व भी है और सम्पादकीय साथियों में भाषा को मानक रूप देने के प्रति सतर्कता भी। जागरण ने कई अच्छे शब्द भी हिन्दी को दिये हैं और एक शालीन तथा गम्भीर शैली भी। शब्दों में तर्क संगत और व्याकरण सम्मत एकरूपता बनाये रखने का प्रयास सराहनीय कहा जा सकता है।

भाषा के सम्बन्ध में थोड़ा-सा विवेचन यहां जरूरी है। भाषा का मूल तत्व व्याकरण और शब्द है। इसके अलावा लिपि की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लिपि के दो अंग होते हैं - अक्षर संकेत तथा वर्ण माला। हिन्दी में प्रयोग होने वाली नागरी लिपि दोनों दृष्टियों से विश्व की सर्वश्रेष्ठ लिपि है। सभी ध्वनियों के पृथक और स्पष्ट संकेत इसमें हैं। किसी ध्वनि के लिए एक से अधिक पेचीदे संकेत नहीं हैं। किसी एक संकेत से एक से अधिक ध्वनि व्यक्त नहीं होती है। अतः लिपि पूरी तरह वैज्ञानिक तथा सरलतम है।

हिन्दी की शब्द सम्पदा भी काफी समृद्ध है। संस्कृत की गौरवशाली विरासत के अलावा फारसी अरबी ने अनेक अच्छे शब्दों से हिन्दी का भण्डार भरा है। अंग्रेजी सहित अनेक यूरोपीय भाषाओं के शब्दों ने आधुनिकता प्रदान की है। क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों ने हिन्दी को जन-साधारण में दुलार दिया है।

व्याकरण भाषा का मेरुदण्ड होता है। हमें यह स्वीकार करने का साहस करना चाहिए कि हिन्दी का यह अंग काफी कमजोर है। कम से कम इतना मजबूत तो नहीं ही है कि इतनी विराट और गौरवशाली भाषा को सही आकृति दे पाने की रीढ़ की भूमिका सही

ढंग से निभा सके। इस दिशा में पर्याप्त ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। इसके लिए हिन्दी के मनीषियों को, विशेष रूप से शिक्षकों और पत्रकारों को बहुत गंभीर भूमिका निभानी होगी।

एक पक्ष व्याकरण को संस्कृत के परिप्रेक्ष्य में अति जटिल शास्त्र के रूप में देखता है और दूसरा पक्ष सम्भवतः इसी कारण से व्याकरण को व्यर्थ की कवायद मानता है। वह व्याकरण को अनावश्यक तथा भाषा के लिए बन्धन के रूप में देखता है। इसका कारण भ्रम और अज्ञानता ही है। संस्कृत में जिसे व्याकरण कहा जाता है, खासकर पाणिनीय अष्टाध्यायी, वह सम्पूर्ण भाषा विज्ञान है। साधारण पाठक व लेखक पर उसे लादना वास्तव में अन्याय है, अत्याचार है, लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं है कि व्याकरण को नकार कर अराजकता की स्थिति को मान्यता प्रदान कर दी जाये।

यदि ईमानदारी से विवेचना करें, तो व्याकरण बहुत संक्षिप्त और सरल होगी। मूल व्याकरण केवल शब्द रचना और वाक्य रचना ही है। शब्द रचना में संस्कृत की व्युत्पत्ति प्रणाली अति उत्तम और और उपयोगी है। सभी शब्दों के तीन भाग माने गये हैं - **धातु, उपसर्ग और प्रत्यय। धातु से अर्थ उस मूल शब्दांश से, जो शब्द का आधार है और उसे मौलिक अर्थ प्रदान करता है। जरूरी नहीं कि वह क्रिया ही हो। यद्यपि अधिकांशतः ऐसा होता ही है। उस धातु से पहले जो शब्दांश जुड़ते हैं - वे उपसर्ग कहलाते हैं और जो शब्दांश बाद में जुड़ते हैं - वे प्रत्यय कहलाते हैं।** इनसे शब्द को विशिष्ट अर्थ प्राप्त होता है। जैसे एक धातु है - लिख्। इससे बना लिखित अर्थात् लिखा हुआ और अलिखित अर्थात् नहीं लिखा हुआ।

शब्दों के आगे पीछे शब्दांश (उपसर्ग या प्रत्यय) जोड़ने के

लिए कोई व्याकरण शास्त्र या नियम सीखने की जरूरत नहीं है। जैसे लिखित बना, वैसे ही पठित, दमित, शमित, क्रमित, भ्रमित, श्रमित भी बनेगा। जैसे एक शब्द से पहले अ लगने से नकारात्मक अर्थ हो गया, उसी तरह किसी भी शब्द से पहले अ लगाने से नकारात्मक अर्थ निकल आयेगा। केवल इस साधारण नियम का ध्यान रखना है कि किसी भी प्रचलित शब्द का रूप किसी मूल शब्दांश के आगे-पीछे कुछ जोड़ने से ही बनता है। इससे एक शब्द के कई रूप प्रचलित होने की समस्या सरलता से हल हो जाती है। या ई, ये, ए आदि में कहाँ क्या होगा, इसका विवाद समाप्त हो जाता है। **मूल शब्द है - गया। इससे गये व गयी ही बन सकता है, गए या गई नहीं। नया से नये, नयी ही बनेगा और नए या नई अशुद्ध माना जायेगा। सम्प्रदान कारक का चिह्न के लिए (हेतु अर्थ में) स्वतन्त्र शब्द होने से सही है। कुआं से कुएं बनेगा, कुयें गलत है, क्योंकि मूल शब्द में 'य' नहीं है।**

जहां तक संभव हो, संस्कृत के मूल शब्दों को यथावत लिखना चाहिए, बिगड़ा हुआ रूप नहीं। इसी प्रकार यदि सटीक और प्रचलन योग्य भारतीय शब्द उपलब्ध हो, तो उसके स्थान पर अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग नहीं ही करना चाहिए।

यदि उपयुक्त भारतीय शब्द उपलब्ध न हो, तो किसी भी भाषा का शब्द लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। लेकिन विदेशी शब्दों के स्थान पर अन्य भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों को वरीयता देनी चाहिए। बंगला से लिया गया धन्यवाद शब्द इसका अच्छा उदाहरण है।

हिन्दी में सबसे बड़ी समस्या लिंग निर्धारण की है। स्कूटर

खड़ा है और मोटर साइकिल खड़ी है। यदि कोई लिखे स्कूटर खड़ी है या मोटर साइकिल खड़ा है, तो गलत कहा जायेगा। लेकिन इसका कोई नियम नहीं बताया जा सकता कि ऐसा क्यों है। निर्जीव वस्तुओं में किसे स्त्रीलिंग माने और किसे पुल्लिंग, इसका कोई आधार हिन्दी में नहीं है। इसमें क्षेत्रीय मतभेद भी हैं। कुछ पूर्व में स्त्रीलिंग हैं और पश्चिम में पुल्लिंग।

हिन्दी भाषा में विभिन्न वस्तुओं और उनके वाचक शब्दों के लिंग निर्धारण का कोई नियम नहीं है और न खोजा ही जा सकता है। जीवित प्राणियों में स्त्रीलिंग व पुल्लिंग स्पष्ट हो जाता है, लेकिन निर्जीव वस्तुओं में यह गम्भीर समस्या है। इसके दो ही समाधान सम्भव हैं - **एक तो सर्वेक्षण विधि और दूसरी नियमन विधि।**

व्याकरण में इन दोनों ही विधियों का उपयोग किया जाता है। व्याकरण शास्त्रीयभाषा में अधिकांशतः प्रयुक्त होने वाले रूपों का सर्वेक्षण करके नियम निर्धारित और फिर उस नियम को उन थोड़े से रूपों पर भी लागू करके नियमन करता है - जिन पर अपवाद स्वरूप पहले से लागू नहीं होता है।

लिंग निर्धारण में सर्वेक्षण विधि से समाधान यही सम्भव है कि सभी हिन्दी शब्दों की सूची बनायी जाये और उनका स्वीकार्य लिंग निर्धारित करके लिख दिया जाये। जिसे शंका हो या जो गैर हिन्दी भाषी सीखना चाहें, वह उस सूची के आधार पर लिंग ज्ञात कर लें। निश्चित रूप से अवैज्ञानिक निर्णय है और काफी जटिल भी। जिन शब्दों के लिंग पर मतभेद होगा, उनका सर्वमान्य लिंग निर्धारण करना कठिन समस्या होगी। कोई नियम न होने से प्रत्येक विद्वान् अपनी मान्यता, अपने आग्रह पर अटल रहेगा और तार्किक आधार

पर किसी को भी अपने पक्ष या आग्रह छोड़ने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा। जिसकी सूची अधिक संख्या में छप जायेगी और अधिक प्रचारित हो जायेगी, उसका प्रयोग अधिक होगा, लेकिन अन्य विद्वानों के मतभेद बने ही रहेंगे। इसके अलावा प्रत्येक नया शब्द प्रचलन में लाते ही उसके लिंग निर्धारण की समस्या खड़ी होती रहेगी।

नियमन विधि का प्रयोग अधिक साहस की अपेक्षा रखता है, क्योंकि इसमें प्रचलन की धारा के विपरीत तैरना पड़ेगा। लेकिन यदि मान्यता प्राप्त विद्वान एक बार साहस कर लें, तो प्रत्येक शब्द के साथ अलग-अलग माथापच्ची करने या विवाद की गुंजाइश ही शेष नहीं रह जायेगी। हम बड़े गर्व से अपनी भाषा को वैज्ञानिक भाषा कहना चाहते हैं। स्पष्ट है कि वैज्ञानिक तौर पर प्राणियों में स्त्रीलिंग व पुल्लिंग लक्षण के आधार स्पष्ट स्वीकार किये जायें तथा जो न स्त्रीलिंग है और न पुल्लिंग ही उस वस्तु को उभयलिंग या नपुंसक लिंग ही माना जा सकता है। उभय का शाब्दिक अर्थ है दोनों। उभयलिंग अर्थात् दोनों लिंग। ऐसे शब्दों को दोनों लिंगों में प्रयोग किया जा सकता है। अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। व्याकरण का मूल उद्देश्य अर्थ स्पष्ट करना ही तो है। जब अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता तो व्याकरण की दृष्टि में दोनों ही सही हैं। जैसे जल लिखें, पानी या अम्बु कहें, अर्थ एक ही निकलता है। अतः वैज्ञानिक व्याकरण की दृष्टि से दोनों ही सही हैं।

अब हम या तो यह छूट दे सकते हैं कि दोनों में से किसी भी लिंग का प्रयोग उभयलिंग वाले शब्दों में किया जा सकता है अथवा यह निश्चय कर सकते हैं कि उभयलिंग शब्दों का प्रयोग सदैव

पुल्लिंग में ही किया जायेगा अथवा सदैव स्त्रीलिंग में ही किया जायेगा। हिन्दी भाषा में लिंग की समस्या अत्यन्त जटिल और उबाऊ है तथा उसके समाधान के लिए उक्त उपायों के अलावा और कोई मार्ग संभव ही नहीं है। एक बार साहस तो करना ही होगा।

हिन्दी में वाक्य रचना मूल रूप में कोई समस्या तो नहीं है, लेकिन असावधानीवश बहुधा हास्यास्पद गलतियाँ होती रहती हैं। 'रमेश की कार से दुर्घटना' वाक्य का स्पष्ट अर्थ है कि एक दुर्घटना हुई जिसका यम या कारण रमेश की कार थी। लेकिन एक अन्य वाक्य देखिए - 'डाक्टर की तलवार से हत्या'। इसका स्पष्ट अर्थ यही हुआ कि यह हत्या हुई, जिसका कारण या माध्यम डाक्टर की तलवार थी, लेकिन समाचार पत्रों में इस शीर्षक को इस अर्थ में लगा दिया जाता है कि डाक्टर की हत्या हुई। किसी अन्य हत्यारे की तलवार से। वास्तव में ऐसी घटना का शीर्षक होना चाहिए 'तलवार से डाक्टर की हत्या'।

यह वाक्य रचना भेद नियम संगत है। **वाक्य में शब्दों का प्रयोग कारक क्रम - कर्ता - कर्म - करण - सम्प्रदान - अपादान - सम्बन्ध - अधिकरण के क्रम से करना चाहिए। दूसरी बात ध्यान में यह रखनी है कि सम्बन्ध कारक में जिन दो शब्दों का सम्बन्ध सूचित हो, वे निकट रखे जायें। यदि तलवार का सम्बन्ध रमेश से है, तो रमेश की तलवार लिखा जाये और यदि हत्या का सम्बन्ध रमेश से हो, तो रमेश की हत्या ही लिखें।** यदि इतना ध्यान रखा जायेगा तो वाक्य रचना कभी गलत या भ्रम उत्पन्न करने वाली नहीं होगी।

एक बात और। आवश्यकता होने पर नये शब्दों का प्रयोग अवश्य किया जाये। लेकिन वे व्याकरण सम्मत हों, तभी बोध गम्य

भी होंगे। केवल नया करने के नाम पर शब्दों को बिगाड़ कर नया प्रयोग करना ठीक नहीं। इसके अलावा उपयुक्त अच्छा शब्द प्रचलित होने पर उसके स्थान पर अप्रचलित नया शब्द नहीं प्रयोग होना चाहिए।

62. कविता और छन्द विज्ञान

कविता या पद्य का प्राण तत्व छन्द है। कविता को गद्य से पृथक् करने वाला तत्व छन्द ही है। अलंकार, रस, भाषा-शैली आदि से कविता का शृंगार होता है, वह श्रेष्ठ बनती है। परन्तु छन्द न होने पर तो वह रचना कविता हो ही नहीं सकती है चाहे उसमें अन्य गुण कितने भी श्रेष्ठ क्यों न हों। वास्तव में कविता, पद्य और छन्द समानार्थी या पर्यायवाची शब्द है।

छन्द के मूल तत्व दो हैं– (1) लय (2) मात्रा। लय का अर्थ है प्रवाह। कविता पढ़ते समय कहीं भी लय न टूटे, प्रवाह न रुके, तभी उसे कविता कहा जा सकता है, वह श्रेष्ठ काव्य हो या साधारण कविता। इसके साथ प्रत्येक चरण या पंक्ति में मात्राएं समान होनी चाहिए। मात्रा से यहाँ आशय उच्चारण में लगने वाला समय है। अतः प्रत्येक चरण के उच्चारण में समान समय लगे तथा कहीं भी लय या प्रवाह न टूटे तो उसे पद्य, छन्द या कविता कह सकते हैं।

छन्द में मुख्य बात केवल इतनी ही है। इसे हमने छन्द विज्ञान कहा है। यह विज्ञान इसलिए है क्योंकि यह नियम प्रत्येक देश काल, परिस्थिति, भाषा तथा व्यक्ति पर समान रूप से लागू होता है विभिन्न देश-काल में, विभिन्न भाषाओं में काव्यशास्त्र के आचार्यों ने छन्द सम्बन्धी नियम बनाये हैं। उन सभी का आधार

यही छन्द विज्ञान है। नियम तो समझाने के लिए सरल भाषा में छन्द विज्ञान को स्पष्ट करने का प्रयास मात्र है।

नियमों में सामान्यतः मात्राओं की गणना करने के सरल तरीके बताये जाते हैं। यदि कोई साधारण त्रुटि उस समय के अधिकांश काव्य में व्यापक रूप से मिलती है तो उसको काव्य शास्त्र के आचार्य छूट के रूप में नियमों में शामिल कर लेते हैं तथा उन त्रुटियों को दोष नहीं मानते हैं। परन्तु वास्तव में वह दोष है, उससे काव्य की आत्मा का हनन होता है, अतः उसे दोष माना ही जाना चाहिए भले ही साधारण तथा यत्र-तत्र मिलने वाले ऐसे दोषों के होने पर भी उस कवि और काव्य को पूरी तरह अस्वीकार न किया जाए।

छन्द में मात्राएं गिनने के लिए भी वैज्ञानिक प्रणाली अपनायी जाती है। **बिना स्वर के किसी व्यंजन का उच्चारण सम्भव नहीं है। अतः मात्रा की गणना में स्वर को आधार बनाया गया है। लघु स्वर अ, इ, उ, ऋ के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसकी तुलना में दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ के उच्चारण में दो गुना समय लगता है। अतः सुविधा के लिए लघु स्वर में एक तथा दीर्घ स्वर में दो मात्राएं मानी जाती हैं।** इसी प्रकार यदि लघु स्वर के बाद कोई स्वर रहित व्यंजन हो तो उस व्यंजन को पहले के स्वर के साथ बोलना पड़ता है तथा उस लघु स्वर की मात्रा दो हो जाती हैं। यहाँ ध्यान रखना चाहिए बिना स्वर वाले व्यंजन का उच्चारण ही सम्भव नहीं है अतः अलग से उसकी मात्रा की गणना नहीं करते हैं। वास्तव में बिना स्वर वाले या 'अस्वर' व्यंजन (हलन्त) की मात्रा लगभग आधी या एक से कम होती है। अतः वह अपने पूर्व लघु स्वर की अपनी मात्रा जोड़कर दीर्घ जैसा दो मात्रा का बना देता है। यदि दीर्घ

स्वर के बाद कोई अस्वर व्यंजन (हलन्त) आता है तो संयुक्त रूप से उच्चारित होने वाले उस दीर्घ स्वर तथा अस्वर व्यंजन की मात्रा सामान्यतः दो ही मानते हैं। वास्तव में वह दो से अधिक कम से कम ढाई तो होती ही है। अतः कहीं-कहीं उसे तीन मात्रा भी मान लेते हैं। छन्द विज्ञान की दृष्टि से दोनों ही समान रूप से शुद्ध या अशुद्ध हैं। अतः दीर्घ स्वर तथा अस्वर व्यंजन को मिलाकर दो मात्रा मानना भी उचित है तथा तीन मात्रा मानना भी। इतनी छूट इसलिए देना अनिवार्य है क्योंकि कोई विकल्प नहीं है। परन्तु वर्णिक छन्दों में, जहाँ वर्णों की मात्रा नहीं, केवल लघु और गुरु वर्ण ही गिने जाते हैं, वहाँ पर तो दीर्घ स्वर तथा अस्वर व्यंजन मिलाकर दीर्घ वर्ण ही माना जाएगा। यहाँ पर अस्वर व्यंजन को स्वतंत्र लघु वर्ण मानने की छूट देना उचित नहीं माना जा सकता है। यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि इस एकमात्र अनिवार्य छूट को उदाहरण बनाकर कविता में कहीं भी लघु को दीर्घ या दीर्घ को लघु मान लेने की छूट देना छन्द की हत्या करना ही है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि छन्द विज्ञान की दृष्टि से मात्रिक छन्द तथा वर्णिक छन्द में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। दोनों प्रकार के छन्दों में प्रत्येक चरण में मात्राएं समान होती हैं। वर्णिक छन्दों में मात्राओं के साथ ही वर्णों की संख्या भी निश्चित होती है। उसमें यह भी निश्चित रहता है कि एक चरण में कुल कितने वर्ण होंगे, उनमें कितने लघु तथा कितने दीर्घ होंगे तथा उनका क्रम क्या होगा। यदि यह निश्चित है कि किसी छन्द के एक चरण में पांच दीर्घ तथा छह लघु वर्ण रहेंगे तो यह तो निश्चित हो ही गया कि उसके एक चरण में सदैव सोलह मात्राएं ही रहेंगी। यदि

लघु और गुरू वर्णों की संख्या तथा क्रम का ध्यान न रखा जाए तथा सोलह मात्राओं का एक चरण माना जाए तो उसे मात्रिक छन्द कहेंगे। अतः **प्रत्येक वर्णिक छन्द मात्रिक भी होता ही है। परन्तु प्रत्येक मात्रिक छन्द वर्णिक नहीं हो सकता ।**

अतः स्पष्ट है कि छन्द विज्ञान की दृष्टि से कविता के प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या समान होनी चाहिए तथा लय या प्रवाह बना रहना चाहिए तो उसे छन्द या पद्य कहा जा सकता है। यदि इतनी बात समझ ली जाए तो छन्द शास्त्र का कोई और नियम जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल इसी आधार पर समझा जा सकता है कि कोई कविता छन्द की दृष्टि शुद्ध है या दोषपूर्ण।

छन्द को लेकर विवाद किसी दोष को छूट देने तथा किसी दोष को बलपूर्वक दोष कहने से उत्पन्न होता है। इस दृष्टि से विभिन्न समूहों ने अपने-अपने नियम बना लिये हैं तथा उसी पैमाने से सबको नापना चाहते हैं। लिपि के दोषों ने भी इस समस्या को बढ़ावा दिया है। प्रेम में 'प्रे' दीर्घ है तथा प्रेस में 'प्रे' लघु नागरी लिपि में भी दोनों 'प्रे' एक जैसे लिखे जाते हैं। वास्तव में लघु ए को लिखने का कोई अन्य तरीका होना चाहिए। यही समस्या 'ओ' के साथ भी है। ए तथा ओ के नीचे पड़ी रेखा खींच कर इनके लघु रूप को लिखा जाए तो यह समस्या हल हो सकती है। तब हम 'प्रेम' को इसी तरह तथा 'प्रेस' को इस तरह लिखेंगे। इस तरह स्पष्ट हो जाएगा कि प्रेस में प्रे लघु है तथा उसे एक मात्रा में पढ़ा जाता है। नागरी में कई सुधार हुए हैं यह भी कर लेना चाहिए।

लिपि के छोटे से दोष ने कविता के क्षेत्र में अराजकता उत्पन्न कर दी है। कुछ लोगों ने मान लिया कि ए और ओ को जब

भी चाहें दीर्घ या लघु अपनी इच्छा के अनुसार पढ़ सकते हैं फिर कुछ लोग इसमें और आगे बढ़े और उन्होंने मान लिया जब दीर्घ ए तथा ओ को लघु पढ़ा जा सकता है तो किसी भी दीर्घ वर्ण को छन्द की आवश्यकता के अनुसार लघु पढ़ा जा सकता है। फिर दो लघु को मिलाकर दीर्घ पढ़ा जाने लगा और उससे भी आगे बढ़कर किसी शब्द के अन्तिम स्वर को गायब करके उसमें उसके बाद वाले शब्द के पहले स्वर अक्षर को जोड़कर पढ़ा जाने लगा।

फारसी, उर्दू के माध्यम में भारत से आयी गजल विधा में यह स्थिति बहुत व्यापक है। एक भी उर्दू गजल मिलना कठिन है जिसमें कई दीर्घ वर्णों को लघु न पढ़ना पड़ता हो। चिन्ताजनक बात है कि यह रोग उर्दू गजल के माध्यम से हिन्दी गजल से होते हुए गीतों सहित पूरी हिन्दी कविता में फैलता जा रहा है।

उदाहरण के लिए देखें- बहुत प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं-

दिले नांदां तुझे हुआ क्या है।
आखिर इस दर्द की दवा क्या है।

इसे छन्द की दृष्टि से इस प्रकार पढ़ा जाता है-

दिल् ए नादां तुझे हुआ क्या है।
आखिरिस् दर्द की दवा क्या है।

अब ये पंक्तियाँ छन्द की दृष्टि से दोषमुक्त हैं भले ही अर्थ की दृष्टि से कमी आयी है। गजल वर्णिक छन्द की विधा है। इन पंक्तियों में वर्णों का क्रम है–2-1-2-2-1-2-1-2-2-2 कुल वर्ण 10 हैं। प्रत्येक पंक्ति में दस वर्ण तथा सत्रह मात्राएं होंगी। पूरी गजल पढ़कर देख लें।

छन्द की दृष्टि से शुद्ध वही रचना कही जा सकती है जिसमें

प्रत्येक शब्द का प्रत्येक अपने मूल रूप में पढ़ा जाए तथा प्रत्येक चरण में मात्राएं समान रहें। किसी गुरु को लघु या किसी लघु को गुरु वर्ण के रुप में न पढ़ना पढ़े। संस्कृत काव्य में केवल चरण का अन्तिम वर्ण गुरु के स्थान पर लघु आने की स्वीकृति अपवाद स्वरूप दी गयी है। इस छूट का उपयोग भी बहुत कम लगभग न के बराबर ही किया गया है। फिर भी इसे दोष ही माना जाता है। इसी तरह उर्दू में चरण पूरा होने के बाद एक वर्ण अधिक होने की स्वीकृति है जिसका खूब उपयोग होता है। दीर्घ को लघु पढ़ने तथा चरण पूरा होने पर अतिरिक्त वर्ण की छूट के कारण छन्द के प्रति बहुत अधिक आग्रह होने पर भी प्रत्येक गजल में छन्द दोष मिलना सामान्य बात है। भले ही इन दोषों को छूट के रूप में विद्वानों की स्वीकृति मिल-जाने के कारण लोग दोष न मानते हों। खड़ी बोली हिन्दी काव्य इस दोष से मुक्त है। मध्यकालीन हिन्दी काव्य में शब्दों की तोड़-मरोड़ की प्रवृत्ति रही है लेकिन उसमें जो लिखा जाता है, वही पढ़ते हैं और छन्द दोष नहीं है इतना अवश्य है कि यदि किसी कवि के विशाल रचना संसार मे कहीं कोई चूक मिल जाए तो उसे अपवाद माना जाएगा, उदाहरण नहीं। उस अपवाद को भी दोष ही कहेंगे और सुधार की अपेक्षा रखेंगे। उचित यही है कि शब्दों में न तोड़-मरोड़ या विकृति लायी जाए और न पढ़ते समय ही उसे बिगाड़कर पढ़ना पड़े। इसके लिए आवश्यक है कि गम्भीर स्वाध्याय किया जाए तथा गुरु के मार्ग दर्शन में काव्य प्रतिभा का विकास-परिष्कार किया जाए।

काव्य प्रतिभा केवल जन्मजात ईश्वर देन ही नहीं है। उचित वातावरण से इसका विकास होता है तथा समर्थ गुरु से समुचित प्रशिक्षण प्राप्त कर उसका परिष्कार परिमार्जन किया जा सकता है

अन्य विद्याओं की तरह काव्य साधना में भी गुरु-शिष्य परम्परा का महत्व है। गुरु के आशीर्वाद तथा प्रशिक्षण से जन्मजात काव्य प्रतिभा न होने पर भी श्रेष्ठ कवि के रूप में विकास हो सकता है। अध्ययन, अभ्यास, साधना, समर्पण तथा प्रशिक्षण का कोई विकल्प नहीं है।

कुछ शब्दों के प्रारम्भ में ही अस्वर व्यंजन होते हैं जैसे श्याम, स्नेह आदि। इनमें इन अस्वर व्यंजनों को बाद वाले वर्ण के साथ मिलाकर बोला जाता है। अतः मात्राओं की गणना में इनकी कोई मात्रा नहीं होती है। श्याम में 'श्या' एक ही दीर्घ वर्ण माना जाएगा। घनश्याम में श्याम का अस्वर 'श्' घन के 'न' को दीर्घ नहीं करता है, परन्तु अस्वर व्यंजन को उसके पूर्व वर्ण के साथ बोलने पर वह दीर्घ हो जाता है। जैसे- सत्य में अस्वर 'त्' का 'स' के साथ बोलते हैं तथा सत् को एक वर्ण मानकर उसे दीर्घ माना जाता है। इसी तरह घनश्याम में 'श' को 'न' के साथ पढ़े तो 'न' दीर्घ हो जाएगा। तब इसे 'घनश्-याम' के रूप में पढ़ना होगा। घन-श्याम तथा घनश्-याम में सभी ध्वनियाँ या अक्षर समान हैं। परन्तु घन-श्याम में पांच मात्राएं हैं जबकि 'घनश्-याम' में छह मात्राएं। अतः कवि को इतनी छूट उचित ही मिल जाती है कि वह 'घनश्याम' शब्द को आवश्यकता के अनुसार पांच या छह मात्राओं में प्रयोग कर ले। इसे दोष नहीं कहा जा सकता है।

63. अन्त्यानुप्रास या तुकान्त अलंकार

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले तत्वों को अलंकार कहते हैं। यदि एक ही अक्षर बार-बार आये तो उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं। यदि

छन्द के प्रत्येक चरण के अन्त में समान अक्षर आयें तो उसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं। इसे तुकान्त भी कहा जाता है। संस्कृत साहित्य में अन्य अलंकारों की तरह ही इसका भी प्रयोग हुआ है। परन्तु हिन्दी-उर्दू में इसका प्रयोग इतना अधिक हुआ है कि इसे कुछ लोग कविता का अनिवार्य अंग ही मानने लगे हैं। अन्त्य अनुप्रास भी एक अलंकार है, इससे कविता का सौन्दर्य बढ़ता है, परन्तु यह उसका अनिवार्य तत्व नहीं है। अतः इसके अभाव में या तुकान्त न मिलने पर दोष नहीं मानना चाहिए।

अन्त्य अनुप्रास या तुकान्त के अनेक भेद होते हैं। पूर्ण तुकान्त में समान स्वर के बाद आने वाले सभी वर्ण समान होते हैं। जैसे, राम, श्याम, काम, नाम आदि इनमें तुकान्त स्वर या समान स्वर 'आ' के बाद म वर्ण सभी में समान है। अन्य तुकान्त में समान या तुकान्त स्वर 'आ' के बाद कोई वर्ण नहीं आया है। शब्द तुकान्त में प्रत्येक चरण के अन्त में एक या अधिक शब्द समान होते हैं। अनेक वेद सूक्तों में इसका प्रयोग हुआ है। सूक्त में प्रत्येक मंत्र के अन्त में अनेक पद समान हैं। शिव संकल्प सूक्त इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। उसके प्रत्येक मंत्र के अन्त में **'तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु'** आता है। इसी तरह एक अन्य सूक्त के मंत्रों के अन्त में **'कस्मै देवाय हविषा विधेम'** आता है। गजल में भी इसका प्रयोग बहुतायत से होता है। गजल में शब्द तुकान्त से पूर्व पूर्ण तुकान्त या अल्प तुकान्त की भी परम्परा है।

निष्कर्ष यह है कि **तुकान्त एक अलंकार है। अतः इसका होना गुण है परन्तु न होना कोई दोष नहीं है। काव्य का मुख्य तत्व छन्द है, अन्त्य अनुप्रास (तुकान्त) या कोई भी अन्य अलंकार नहीं।**

अन्य अलंकारों के समान ही इस अलंकार को भी माना जाना चाहिए।

64. हमारा योग धक्का खाये
उनका 'योगा' घर-घर जाये

बीसवीं शताब्दी में भौतिक विज्ञान में आशातीत प्रगति हुई है और प्रकृति की शक्तियाँ मनुष्य की मुट्ठी में समाती प्रतीत हो रही हैं। यह कलियुग अर्थात् मशीन युग बनकर हमारे सामने है। लेकिन भौतिक विज्ञान की इस दिशाहीन व अन्धाधुन्ध प्रगति ने मानव को भी एक मशीन बनाकर रख दिया है। इस मशीनी जिन्दगी की आपाधापी और भागमभाग में फंसकर आज का 'प्रगतिशील' मानव इतनी समस्याओं से घिर गया है, जिसकी इससे पूर्व कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अनेक प्रकार के नये-नये रोगों से घिरा, मानसिक तनाव से बोझिल तथा गलाकाट 'प्रतियोगिता' के जाल में फंसा प्रकृतिजयी होकर भी लाचार बेबस मानव को कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है।

आधुनिक मानव समाज की इन्हीं जटिल समस्याओं का निदान करने के लिए कुछ लोगों ने योग विद्या की मोटी-मोटी बातें लेकर लोगों को आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया। पश्चिमी देशों में यह विधा 'योग' के नाम से फली-फूली और योग की बड़ी दुकानें चल निकली। क्योंकि योग ने एलोपैथिक कैप्सूलों व इंजेक्शनों की तरह न सही, परन्तु होम्योपैथिक की मीठी गोलियों की तरह अवश्य असर किया, धीरे-धीरे लेकिन गहराई से। अधकचरे ही सही, लेकिन इस योग के सम्पर्क में आकर लोगों का गठिया ठीक हुआ, चश्मा छूटा,

मोटापा घटा, दमा से मुक्ति मिली, असाध्य समझे जाने वाले व जाने कितने रोग भाग खड़े हुए और कुछ मानसिक शान्ति भी मिली। यही कारण है कि मध्यकाल में जो योग लुप्त-सा हो गया था, आज तेजी से चारो तरफ छाता जा रहा है। पिछली 19वीं शताब्दी वाले पहले व्यक्ति स्वामी विवेकानन्द ही थे। लेकिन आज इतने लोग अमेरिका व योरोप के देशों में योग का प्रचार कर रहे हैं कि उनकी गिनती करना भी कठिन है। आज स्थिति यह है कि कोई साधारण भारतीय भी इन 'विकसित' देशों में साधारण धोती-कुर्ता पहनकर पहुँच जाये तो भारी भीड़ उसे घेर लेती है और एक ही सवाल गूंजता है 'क्या आप योग जानते हैं?' क्योंकि जो समाज भौतिक दृष्टि से जितना विकसित है, वह उतनी ही अधिक समस्याओं से घिरा है और उन समस्याओं का समाधान एक ही है वह है योग। योग को अपनाने से शरीर निरोग व स्वस्थ बनता है तथा कठिन से कठिन विपरीत परिस्थितियों में भी मानसिक शांति बनी रहती है। इसीलिए आज के मशीनी युग में योग की महत्ता हजारों गुना बढ़ गयी है। आज समाचार पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं से लेकर दूरदर्शन तक 'योग' का बड़े जोर-शोर से प्रचार हो रहा है। लेकिन इन प्रचार माध्यमों से हमें जो कुछ सिखाया जा रहा है क्या वही 'योग' है? इसका उत्तर निश्चित रूप से होगा, नहीं। वह तो योग की तैयारी या कलेवर मात्र है।

यदि योग के मोटे-मोटे ग्रन्थों को अलग करके सोचें 'योग' शब्द का साधारण सा अर्थ है - जोग। जैसे अंकगणित में तीन और दो का योग पांच होता है। इस प्रकार अध्यात्म में आत्मा और परमात्मा का योग है। परमात्मा जो समाधि अवस्था में प्रत्यक्ष होता है। जैसे गणित शास्त्र का नियम है कि अनन्त में कुछ भी जोड़ने से

योग अनन्त ही होता है, उसी प्रकार परमात्मा अनन्त है, उसमें भी 'योग' करने से फल परमात्मा ही होता है। अब प्रश्न उठता है कि परमात्मा से आत्मा को जोड़ा कैसे जाये? उसी विद्या अथवा प्रक्रिया का नाम है 'योग'।

योग क्यों किया जाये, इसका सैद्धान्तिक आधार समझना भी जरूरी है। हम एक बल्व को बैटरी से भी प्रकाशित कर सकते हैं। लेकिन कुछ ही समय बाद बैटरी की शक्ति समाप्त हो जायेगी और बल्व बुझ जायेगा। लेकिन यदि उस बल्व को बैटरी से न जोड़कर उसको पावर हाउस से आ रही लाइन से जोड़ दें तो वह बल्व तब तक नहीं बुझेगा जब तक लाइन में कोई खराबी नहीं आती है। हमारा शरीर अपने अन्दर स्थित क्षुद्रप्राण की शक्ति से कार्य करता है और प्राण आत्मा की शक्ति का एक रूप है। यदि आत्मा का सम्बन्ध प्राण या चेतना के अनन्त स्रोत परमात्मा से जोड़ दिया जाये अर्थात् आत्मा व परमात्मा का 'योग' कर दिया जाये तो हमें अधिक शक्तिशाली प्राण ऊर्जा मिलने लगेगी और जब तक यह योग बना रहेगा और व्यक्ति सांसारिक प्रपंचों में पड़कर योग का मार्ग छोड़ नहीं देगा, उसे अनन्त स्रोत से प्राण ऊर्जा मिलती रहेगी। यहाँ सांसारिक प्रपंचों को छोड़ने का तात्पर्य अपने कर्तव्यों से विमुख होना नहीं है, अपितु इसका भाव इतना ही है कि सांसारिक आपाधापी में इतना न फंसे कि चरित्र भ्रष्ट होकर योग का पथ छोड़ दें। योग में सफलता मिलने पर चेतना व आत्मबल इतना प्रखर हो जाता है कि शरीर में किसी प्रकार का रोग भय, तनाव, चिन्ता आदि के रहने की सम्भावना ही समाप्त हो जाती है क्योंकि शत्रु कमजोर पर ही आक्रमण करते हैं।

योग के चमत्कारी लाभों को देखते हुए अनेक लोगों ने इसे व्यवसाय बना लिया है तथा लोगों की रुचि व जिज्ञासा को आसानी से भुनाकर धन तथा यश के लालच में योग के आसान तरीके या 'शार्टकट' खोज लिये हैं। यह पूरे दावे के साथ कहा जा सकता है कि 'शार्टकट' से कोई सफल योग नहीं बन सकता, भले ही उसे कुछ तात्कालिक लाभ मिल जाये। जैसे किसी को विज्ञान की प्रारम्भिक शिक्षा के बिना उच्च स्तर का विज्ञान नाभिकीय भौतिकी आदि नहीं पढ़ायी जा सकती। उसी प्रकार योग की प्रारम्भिक बातों को पूरा किये बिना कोई कुण्डलिनी जगाना या समाधि नहीं सीख सकता है। सच पूछा जाये तो ध्यान या समाधि सीखने या करने के लिए है ही नहीं, अपितु यह तो योग पथ के पथिक की मंजिल या उपलब्धि है। हमें चलना सीखना होता है, फिर चलना होता है, मंजिल तो मार्ग के अन्त में मिलती ही है। लेकिन आजकल के नये शार्टकट वाले 'योगी' सीधे कुण्डलिनी जगाने और ध्यान समाधि लगाना सिखाने की ही बात करते हैं।

भ्रम से बचने के लिए यह भी समझ लेना आवश्यक है कि योग दो शाखाओं में बंट गया है - राजयोग तथा हठयोग। हमने जिस योग का परिचय दिया है वह राजयोग है तथा अध्यात्म की दृष्टि से वही वास्तविक योग है। हठ योग बाद का आविष्कार है और बौद्ध सम्प्रदाय की कुछ शाखाओं ने इस पर खोज तथा प्रसार का कार्य किया है उनमें सिद्धों तथा नाथों की परम्परा प्रमुख है। गुरु मत्स्येन्द्र नाथ तथा गुरु गोरखनाथ इसी परम्परा में आते हैं। **इन्हीं नाथों की सूची में ईशनाथ का नाम भी आता है, जिन्हें आज सारा संसार ईसामसीह के नाम से जानता है।**

हठयोग का चरम लक्ष्य यह पंचभौतिक शरीर ही है। यह शरीर कैसे निरोग, स्वस्थ तथा दीर्घजीवी बने यही हठयोग का एकमात्र विचारणीय विषय है। हठयोग की आत्मा, परमात्मा या 'चेतना' जैसे किसी चीज से कोई लेना देना नहीं। शरीर साधना के ही उद्देश्य से हठयोगियों ने नेति, नौलि, धौति, बस्ति, कुंजर, बाघी शंख प्रक्षालन, शरीर को अनेक प्रकार की स्थितियों में रखना अर्थात् आसन व्यायाम आदि तरीके खोजे हैं जिनसे शरीर रोगमुक्त होकर स्वस्थ रहे। इन्हें हठयोगी षट्कर्म कहते हैं जो आयुर्वेद में वर्णित पंचकर्म वमन, विरेचन, स्वेदन आदि का ही परिवर्तित रूप है। हठयोग में आसनों की संख्या तो सैकड़ों में है, जिनमें 84 मुख्य बताये जाते हैं। लेकिन वास्तविक योग से इन विचित्र आसनों का कोई सम्बन्ध नहीं है। वैसे हठयोग की इतनी उपयोगिता तो है ही कि जब तक शरीर स्वस्थ नहीं होगा, योग साधना भी सम्भव न हो सकेगी। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हम चिकित्सा विज्ञान आयुर्वेद का सहारा लें या हठयोग का। यह इस बात पर निर्भर है कि व्यक्ति विशेष को क्या सुविधाजनक या अनुकूल बैठता है।

भगवान श्रीकृष्ण मूलतः राजनैतिक व्यक्ति होने के साथ-साथ महान् योगी भी थे, अतः उन्हें योगिराज भी कहा जाता है। उनका कहना है कि कर्मों को कुशलतापूर्वक निर्वाह करना ही योग है। योगी व्यक्ति अपने कार्य को कुशलतापूर्वक करता है, अव्यवस्थित ढंग से नहीं। और योग सम्भव होता है समत्व भाव के जीवन से। योग के विद्यार्थी को अति का त्याग करना चाहिए। अधिक सोना, अधिक जागना, अधिक खाना या अधिक उपवास करना, अधिक भोग अथवा इन्द्रिय दमन आदि हर प्रकार की अति से बचना चाहिए। श्री कृष्ण

के अनुसार उचित आहार-विहार कर्मों में उचित चेष्टा, उचित मात्रा में सोने व जागने वाला व्यक्ति ही योगी होकर दुःखों से छूट सकता है।

योग विद्या के अधिकारी विद्वान् महान आचार्य महर्षि पातंजलि ने अष्टांग योग का वर्णन किया है। योग के विद्यार्थी को क्रमशः इन आठो अंगों का अभ्यास करना चाहिए तथा जब ये आठो अंग उसके जीवन का अंग बन जायें तभी उसे पूर्ण योगी कहा जा सकता है।

इन आठ अंगों में पहले दो यम व नियम चरित्र निर्माण से सम्बन्धित हैं। यम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह (जमाखोरी न करना) आते हैं। नियम में भी पांच बातें शौच (पवित्रता-अंदर व बाहर से), सन्तोष, तप (कठोर जीवन), स्वाध्याय (वेद का अध्ययन), ईश्वर प्रणिधान (परमात्मा के प्रति आत्मसमर्पण) हैं। **इन्हीं दस बातों को धर्म के दस लक्षण कहा जाता है तथा इन्हीं दस सद्गुणों की समष्टि का नाम धर्म है।** इस धर्म को धारण किये बिना कोई योग साधना सम्भव नहीं। तीसरा अंग है आसन। आसन का अर्थ है बैठना। योग के अंग के रूप में आसन बैठने की उस स्थिति को कहते हैं जिस स्थिति में अधिक से अधिक देर तक सुखपूर्वक बैठा जा सके। हठयोग के कष्टसाध्य आसन यहाँ बिल्कुल व्यर्थ हैं। बैठने में केवल इतना ध्यान रखना अनिवार्य है कि मेरुदण्ड (रीढ़) सीधी रहे तथा मस्तिष्क में स्थित ब्रह्मरंध्र भी उसकी सीध में हो। किसी भी ऐसे आसन में कम से कम आधे घण्टे बैठने का अभ्यास होना चाहिए, तभी योगाभ्यास प्रारम्भ किया जा सकता है।

योग का चौथा अंग है प्राणायाम। प्राणायाम सिद्ध होने पर

अर्थात् प्राण पर नियन्त्रण हो जाने पर योगी को दृश्य व अदृश्य जगत् पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। लेकिन इस अधिकार की सीमा प्रत्येक योगी की अलग-अलग हो सकती है। कई योगी केवल कुछ मीटर की दूरी तक अपना प्रभाव रख सकता है तथा कोई महायोगी चन्द्र, सूर्य, तारों पर भी अपना नियन्त्रण स्थापित कर सकता है। लेकिन यह बहुत उच्च स्थिति है, सबको सहज सुलभ नहीं हो सकती। प्राण का सबसे स्थूल रूप श्वांस है। पहले हम प्राणायाम की पहली सीढ़ी के रूप में इसकी श्वांस पर नियन्त्रण पाने का प्रयास करते हैं और इस पर नियन्त्रण करके अपने शारीरिक रोग, तनाव, चिन्ता आदि को दूर करना कुछ महीनों या एक-दो वर्षों के अभ्यास से सम्भव हो सकता है।

योग का पांचवां अंग प्रत्याहार है। प्रत्याहार की साधना में मन को बाहरी विषयों से खींचकर उसे इन्द्रियों से मुक्त करना होता है। जब व्यक्ति साधना में बैठता है उसे बाहरी विषयों, ध्वनि, गन्ध, स्पर्श आदि का अनुभव नहीं होता। मन इन विषयों के प्रति उदासीन हो जाता है। जब तक मन इतना नियन्त्रित नहीं होता तब तक योगाभ्यास की मंजिल-आत्मा व परमात्मा का योग सम्भव नहीं है। मन पर इतना नियन्त्रण हो जाने के बाद छठवां अंग धारणा का आरम्भ होगा। धारणा का तात्पर्य है मन को किसी स्थान विशेष पर धारण करना, केन्द्रित या स्थापित करना। यदि हमने मन हृदय पर धारण किया है तो हृदय के अतिरिक्त किसी वस्तु की अनुभूति या विचार नहीं आना चाहिए। धारणा सिद्ध होने पर प्राण को उस अंग विशेष पर केन्द्रित करके उसके विकारों को दूर कर निरोग किया जा सकता है। यह सरल व अनुभूत प्रयोग है।

बस योगाभ्यासी को धारणा तक का ही अभ्यास करना पड़ता है। यही योग की प्रारम्भिक शर्त है। इन छः बातों का अभ्यास किये बिना कोई योगी नहीं हो सकता। इनके बिना जो योग की बात अथवा दावा करते हैं उसे ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। जब साधक अनन्त चेतन, अनन्त प्रकाश पुंज परमात्मा में मन की धारणा कुछ काल तक कर सकने में सक्षम होता है तो उसे ध्यान सिद्ध होता है। वह योगी सुदूर स्थान पर बैठे हुए व्यक्ति के मस्तिष्क में अपना संदेश प्रेषित कर सकता है। आधुनिक परामनोविज्ञान इसको 'टेलीपैथी' के नाम से वर्णन करता है जो योगी के लिए बहुत ही साधारण उपलब्धि है। ध्यानस्थ योगी एक स्थान पर बैठे हुए देश-देशान्तरों, गृह-नक्षत्रों का हाल ज्ञात कर सकता है। योगी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं होती।

ध्यान के बाद सर्वोच्च अवस्था समाधि प्राप्त होती है जो योग का आठवां अंग व चरम लक्ष्य है। इसकी अनुभूति को अनिर्वचनीय कहा गया है अर्थात् उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है। वह परम आनन्द की सच्चिदानन्द की अवस्था है।

इस अवस्था को तो प्रत्येक साधक नहीं पा सकता लेकिन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तक तो पहुंचा ही जा सकता है और इतने मात्र से वर्तमान तनावग्रस्त जीवन की सारी समस्या हल हो सकती है तथा सभी रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। ऐसा कोई रोग नहीं जिसका इलाज न हो, ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान न हो।

योग जीवन जीने की सम्पूर्ण कला है। इससे किसी प्रकार की

हानि कभी भी किसी को भी नहीं हो सकती। हठयोग के दुःसाध्य आसनों व क्रियाओं से बचना चाहिए, उनसे हानि की सम्भावना अधिक रहती है। उन 'गुरुओं' से बचना चाहिए जो क्रमशः योग का मार्ग न बताकर 'सम्मोहन' आदि मन को जड़ करने वाले तरीकों से तुरन्त ध्यान सिद्ध कराने का लालच देते हैं। इन 'शार्ट कट' के तरीकों से योग तो सम्भव नहीं होता, व्यक्ति के विक्षिप्त हो जाने का खतरा अवश्य उत्पन्न हो जाता है। योग के क्षेत्र में नयी-नयी खोजों के चक्कर में न पड़ना ही श्रेयस्कर है।

प्रचार माध्यमों द्वारा योग का काफी प्रचार किया जा रहा है। इसके साथ ही विद्यालयों में योग शिक्षा अनिवार्य कर दी जाये तो व्यक्तिगत समस्याओं, पारिवारिक कलह, विघटन, सामाजिक विद्वेष तथा राष्ट्रीय स्तर की समस्याएँ, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, भ्रष्टाचार जैसी कोई बात दिखायी भी न पड़े और हमारा समाज फिर से उस युग में पहुँच सकता है जब लोगों को घर में ताले लगाने की जरूरत नहीं हुआ करती थी। यदि बालक प्रारम्भिक अवस्था से योग की दिशा में थोड़ा भी बढ़ने लगेगा तो कम से कम सदाचारी, नैतिक, न्यायप्रिय, स्वस्थ चरित्रवान् नागरिक तो बन ही जायेगा। भले ही वह समाधि सिद्ध योगी न बनें, पर समाज के लिए उपयोगी तो होगा ही।

आज सारे संसार में जगह-जगह योग केन्द्र खुले हैं। लेकिन आज भी भारत की अपेक्षा पश्चिमी देशों में उनकी संख्या अधिक है। पश्चिमी लोगों में योग का अपेक्षाकृत काफी अधिक प्रचार-प्रसार हुआ है। कारण स्पष्ट है, दवा वही खायेगा जो बीमार होगा और दवा खरीद सकेगा। भौतिक प्रगति के कारण पश्चिमी देशों में मानसिक तनाव, भ्रष्टाचार, अनैतिकता भारत की अपेक्षा कई गुना अधिक है।

इसके अतिरिक्त उनके पास संसाधन भी हैं। वे योग शिक्षक को अधिक से अधिक व्यय उठाकर बुलाकर सीख सकते हैं, योग साधना के लिए एक कमरा अलग रख सकते हैं। आवश्यक साधन सामग्री सरलता से जुटा सकते हैं।

परन्तु यदि हम चाहते हैं कि हमारा जीवन, हमारा समाज सुखी व समृद्ध रहे तो हमें बिना बीमार होने की प्रतीक्षा किये ही योग को पूरी तरह अपना लेना चाहिए, क्योंकि कहा गया है कि इलाज से बचाव अच्छा होता है। संसाधनों से सरलता तो हो सकती है लेकिन संसाधनों का अभाव योग साधना में इतना बाधक भी नहीं है कि इस कमी को बहाना बनाया जा सके। यदि अलग कमरा न हो तो अलग समय तो चौबीस घण्टों में आधा घंटा निकाला ही जा सकता है जब कोई व्यवधान न पड़े और हम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान के लिए आसन जमा सकें व प्राणायाम कर सकें। कम से कम यम व नियम का पालन कर नैतिक बल तो प्राप्त कर ही सकते हैं।

65. केवल दुःख नश्वर है

सुख और दुःख मानव जीवन में इस प्रकार घुले मिले हैं कि उनके अलग कर पाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। संसार में ऐसा व्यक्ति खोजना असम्भव ही है जिसे जीवन में कोई सुख न मिला हो और ऐसा व्यक्ति भी नहीं मिलेगा जिसे कोई दुःख न हो। लेकिन कोई भी दुःख को सहज ही स्वीकार नहीं कर पाता। यह जानते हुए भी कि सुख-दुःख तो जीवन में दिन व रात की तरह आते जाते रहते हैं, मनुष्य दुःख से बचने के लिए अनेक प्रयास करता

रहता है और नये-नये दुःखों को एक तरह से आमंत्रित करता है।

प्रश्न उठता है दुःखों से बचने का कोई उपाय वास्तव में है भी या नहीं। उत्तर स्पष्ट है, उपाय है, निश्चित रूप से है और वह एकमात्र उपाय है सुख-दुःख की भावना से ऊपर उठना। हमें इस सत्य को हृदयंगम करना पड़ेगा कि जीवमात्र आनन्द के अनन्त स्रोत परमात्मा का ही एक अंश होने के कारण अखण्ड आनन्द का अनन्त भण्डार है। आवश्यकता केवल इतनी-सी है कि उस आनन्द को पहचाना जाये, अनुभव किया जाये तथा उसमें लीन रहा जाये। ऐसा होने पर संसार के छोटे-मोटे लाभ-हानि हमें सुख-दुःख नहीं पहुंचा सकेंगे। ऐसा नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को कोई लाभ या कष्ट मिलेगा ही नहीं। होगा केवल इतना उसे इन घटनाओं के होने पर भी सुख या दुःख भाव की तीव्र अनुभूति नहीं होगी।

यहां यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सुख और आनन्द में मौलिक अन्तर है। कोई प्रिय व्यक्ति व वस्तु जब मिलती है तो सुख का अनुभव होता है। सु-अच्छा, ख-अनुभव। हमें इस अच्छे व बुरे अनुभव की स्थिति से ऊपर उठना होगा और हृदय को इतना शक्तिशाली बनाना होगा कि वह छोटी-छोटी बातों से हार न माने और विजयी योद्धा की तरह अटल रहे। जैसा कि महाभारतकार ने कहा है-

सुख हो या दुःख हो, प्रिय हो या अप्रिय हो, जो कुछ भी मिल जाये उसे सहज भाव से स्वीकार करना चाहिए - हृदय से अपराजित रहकर। बस केवल मन के हारे हार है मन के जीते जीत।

किन्तु 'हृदयेनापराजितः' कहना तो सरल था, किन्तु वास्तव में हृदय को इतना मजबूत बना लेना सरल कार्य नहीं है। वर्षों की

साधना से ही यह संभव हो सकता है। वर्तमान मशीनी जिन्दगी के तनाव से पीड़ित मनुष्य के पास इतना धैर्य भी नहीं है कि वह एक क्षण भी साधना पथ पर अविचल बढ़ सके। अतः एक मार्ग और है जो दुःखों से मुक्त कर आनन्द में पूर्णरूपेण लीन भले ही न कर सके लेकिन आये दिन के दुःख से काफी बचा जा सकता है। वह मार्ग है अपने जीवन के सम्मुख महान् आदर्श, महान् उद्देश्य और महान् लक्ष्य रखना। यह मार्ग न तो अव्यावहारिक है, न कठिन और न ही इसके लिए बहुत लम्बे समय तक धैर्यपूर्वक साधना करने की ही आवश्यकता है।

इस बात को आसानी से इस प्रकार समझा जा सकता है कि एक छोटे बच्चे के लिए एक सुन्दर-सा मिट्टी का खिलौना ही परम धन होता है, उसके टूट जाने पर उसे बड़ा दुःख होता है, वह बहुत रोता चिल्लाता है। लेकिन उसके माता-पिता को उस खिलौने के टूट जाने से कोई दुःख नहीं होता क्योंकि उनके लिए उससे बड़ा लक्ष्य या उद्देश्य प्रमुख होता है। लेकिन यदि वह बच्चा अपना पैर तोड़ ले तो माता-पिता को भी बहुत दुःख होता है। कहीं बच्चे की मृत्यु हो जाये तो माता-पिता को भी अपार दुःख होता है, लेकिन गुरुगोविन्द सिंह भी एक पिता थे जिनके चार बच्चे जीवित ही दीवार में चुन दिये गये लेकिन उनकी आंखों में आंसू नहीं आये। ऐसा कैसे संभव हुआ? ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि गोविन्द सिंह के जीवन में बच्चे ही प्रमुख नहीं थे। उनके जीवन में बड़ा उद्देश्य था - देश को विदेशी, अत्याचारी, अधर्मी शासन से मुक्त कराना। अतः उस महान् उद्देश्य के लिए चार बच्चे जैसी छोटी-सी चीज को बलिदान कर वे दुःखी नहीं हुए। यदि बच्चे पैदा करना, उनको पालना ही परम लक्ष्य होता है तो शायद

इस घटना के बाद वे विक्षिप्त हो गये होते।

यदि किसी व्यक्ति की घड़ी खो जाये तो वह बहुत परेशान होता है लेकिन महाराणा प्रताप का पूरा राज्य खो गया। वे जंगल-जंगल भटकते रहे तथा घास की रोटियाँ तक खायीं लेकिन विचलित नहीं हुए; क्योंकि उनके जीवन में सम्पति, वैभव व साम्राज्य से भी बड़ा लक्ष्य था - देश को विदेशी शासन से स्वतन्त्र कराना। इस प्रकार का कोई महान् लक्ष्य हम भी जीवन में अपना लें तो हमें भी रोज-रोज के दुःखों से सहज ही छुटकारा मिल सकता है। हमारे आसपास अपने परिचितों में भी ऐसे बहुत से उदाहरण मिल जायेंगे, जिन्होंने अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आंसू नहीं बहाये तथा धैर्य नहीं खोया। वे हंसते-मुस्कुराते रहे जबकि अन्य हितैषी उनके ऊपर तरस खाकर द्रवित होते रहे।

यदि हम शांत चित्त होकर विचार करें तो शायद हमें अपने ऊपर ही हंसी आयेगी कि कितनी छोटी-छोटी बातों को लेकर हम परेशान होते हैं, दुःखी होते हैं और उद्विग्न रहते हैं। जरा-जरा सी बात पर झुंझला जाते हैं औऱ अपने सुन्दर जीवन को नर्क बना लेते हैं।

हमें चाहिए कि अपने जीवन का कोई लक्ष्य अपनी रुचि के अनुसार निर्धारित कर लें। अपनी पहुंच के क्षेत्र में शिक्षा का प्रसार करेंगे, नागरिक चेतना विकसित करेंगे, राष्ट्रीयता, नैतिकता व न्याय की भावना का विस्तार करेंगे। कम से कम स्वयं अपनायेंगे औऱ अपनों को ऐसा करने के लिए प्रेरित करेंगे अथवा अपनी रुचि के अनुकूल शिक्षा, कला, संस्कृति, चिकित्सा, सेवा किसी भी क्षेत्र को चुना जा सकता है। यदि हम किसी महान् कार्य में व्यस्त रहेंगे तो

छोटी-छोटी बातों पर सोचने और दुःखी होने का हमारे पास समय नहीं बचेगा। तो दुःखों से बचने का एक बहुत साधारण और कारगर उपाय यह भी है कि स्वयं को किसी महान् और ऐसे लक्ष्य के प्रति व्यस्त रखें जो शीघ्र कुछ दिनों, सप्ताहों या महीनों में पूरा होने वाला न हो। केवल निजी हित का साधन करने वाला न हो, अपितु व्यापक हो।

हमारे आसपास ऐसे लोग भी मिलेंगे जो इतनी-सी बात पर परेशान रहते हैं कि परिवार का अमुख सदस्य उनका ध्यान नहीं रखता। उनकी बात नहीं सुनता या उनसे बात नहीं करता। साथ ही ऐसे लोग भी मिलेंगे जिनको परवाह ही नहीं है और उनके पास समय भी नहीं है कि वे सोच सकें कि परिवार का कौन सा सदस्य उनके बारे में क्या सोचता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे व्यस्त लोगों के पास दुःखों के लिए कोई अवकाश नहीं होता है।

यदि कोई व्यक्ति इतना भी न कर सके तो कम से कम इतना धैर्य तो विकसित कर ही सकता है कि विपरीत परिस्थितियों में भी विवेक न खोये। हम बहुधा सुनते हैं दूसरों की परेशानियों के समय सलाह देना तो सरल है लेकिन अपने ऊपर पड़ती है तो विवेक कार्य नहीं करता। ऐसा होना नहीं चाहिए। यदि अपने ऊपर आ पड़े संकट के समय भी हम अपना विवेक सन्तुलित रख सकें तो कोई भी संकट हमारे लिए मुसीबत नहीं बन सकता, परेशानी का कारण नहीं बन सकता।

इसके लिए हमें तटस्थ भाव अपनाना पड़ेगा। उस संकट की स्थिति से कुछ क्षणों के लिए अलग हटकर सोचना होगा, मानसिक रूप से उस स्थिति से दूर होना होगा। ऐसा करने से मानसिक तनाव

व उद्विग्नता कम होगी और शान्त मन से विवेकपूर्ण ढंग से हम समस्या का समाधान खोज सकेंगे। मेरा यह अखण्ड विश्वास है कि संसार की कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसका समाधान न हो। आवश्यकता केवल इतनी है कि शान्त मस्तिष्क से हल खोजा जाये तथा धैर्य व साहस के साथ उस पर अमल किया जाये। अपने हृदय में इतना विश्वास उत्पन्न कर लिया जाये, धैर्य व साहस को अपना साथी बना लिया जाये तो ऐसी कोई घटना या परिस्थिति हो ही नहीं सकती जो हमें परेशान कर सके, दुःखी कर सके। हमें इतना विश्वास होना ही चाहिए कि नश्वर यदि कुछ भी है तो केवल दुःख ही है। सुख की नश्वरता का चिन्तन कमजोरी है।

66. सबका सम्मान करें

वेद हमें बड़े और छोटे तथा अच्छे और बुरे सभी तरह के लोगों का सम्मान करने का आदेश देते हैं। वेद भगवान् की दृष्टि में कोई भी छोटा-बड़ा या अच्छा-बुरा नहीं है। सभी परमात्मा के ही स्वरूप हैं और आदरणीय हैं।

यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय के 32वें मन्त्र में कहा गया है कि अपने से बड़ों को प्रणाम, अपने से छोटों को प्रणाम, अपने पूर्वजों को प्रणाम तथा बच्चों को भी प्रणाम करने का आदेश इस मंत्र में दिया गया है। इससे भी आगे बढ़कर बहुत बुरे जघन्य कर्म करने वाले दुष्टों तथा बुद्धिमान लोगों को प्रणाम करने का निर्देश भी एक साथ दिया गया है। अतः सभी का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है।

अपने से बड़े, बुद्धिमान तथा समर्थ लोगों का सम्मान तो

लोग करते ही हैं। वेद इससे आगे बढ़कर अपने बच्चों तथा बुरे कहे जाने वाले लोगों का सम्मान करना भी सिखाते हैं। गायत्री परिवार के संस्थापक श्रीराम शर्मा आचार्य ने भी कहा है कि किसी को कोसने से और बुरा कहने से उसमें सुधार नहीं हो सकता है। यदि सम्मानपूर्वक किसी की भावना को सुना और समझा जाए तो बुरा से बुरा व्यक्ति भी सुधर सकता है। वेदमूर्ति श्रीराम शर्मा ने इस वेद मन्त्र को जीवनभर अपनाया और लाखों लोगों को अपना बनाते चले गये। उनके प्यार और प्रेरणा से अनेक लोगों ने बुराइयाँ छोड़ीं और साधु पुरुष बन गये। यह चमत्कार वेद भगवान् को अपनाने से ही सम्भव हो सका। अतः जो लोग स्वयम् को वेदमूर्ति श्रीराम शर्मा का शिष्य मानते हैं, उनको प्रतिदिन वेद का पाठ और स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। गुरुदेव ने सम्पूर्ण वेदों का भाष्य किया है तो शिष्यों को पढ़ तो लेना ही चाहिए।

67. जीवन में निश्चित लक्ष्य होना जरूरी

पृथ्वी के प्राणियों में केवल मनुष्य को ही विचार शीलता व विवेक का वरदान मिला है। यह वह तत्व है जो उसको अन्य जीवों-पशुओं, कीट-पतंगों, जलचरों व पक्षियों आदि से अलग करता है। इसके बिना मनुष्य व पशु में कोई भेद नहीं रह जाता।

इसी विचारशीलता, विवेक व भावानुभूति के कारण ही मनुष्य दिन प्रतिदिन नयी नयी उपलब्धियाँ प्राप्त कर रहा है और नित्य नयी परेशानियों से भी आमना-सामना होता है। कहना चाहिए कि यही सम्पूर्ण प्रगति का कारक है व सारे दुखों का मूल भी। जिस

आग से हवन होता और भोजन तैयार होता है उसी से घर भी जल जाता है। विद्युत से हीटर जलता है, कूलर चलता है और वही जानलेवा भी सिद्ध होती है।

यदि विचार शक्ति न होती तो हम न तो भविष्य के बारे में कुछ सोच पाते न भूत के विषय में ही आनन्दित या दुखी होते। हम भविष्य के बारे में सोचते हैं, योजना बनाते हैं क्रमशः प्रगति करते हैं, कभी कभी अपनी सोच में बाधा आने पर दुखी और परेशान भी होते हैं।

यदि हम तटस्थ होकर विचार करेंगे तो ऐसा महसूस होगा कि बहुधा हमारे दुखों का कारण कोई बड़ी मुसीबत नहीं होती। अधिकतर हम बहुत ही छोटी-छोटी बातों पर दुखी होते हैं। बहुत से लोग ताश समय काटने के लिए खेलते हैं लेकिन खेलते-खेलते इतने उत्तेजित हो जाते हैं कि मारपीट तक की नौबत आ जाती है। किसी सम्बन्धी परिचित के वापस अपने घर जाने मात्र से ही हम दुखी हो जाते हैं। बच्चों की छोटी-छोटी बातों पर दुखी होते हैं जिसका यथार्थ में कोई महत्व नहीं होता उससे कोई लाभ या हानि होने की संभावना नहीं रहती। इसका कारण यह है कि हमारे पास इन सब बातों के लिए खाली समय होता है।

यदि हमारे जीवन का कोई निश्चित उद्देश्य हो और हम उस उद्देश्य के लिए निरन्तर प्रयत्नशील व समर्पित तथा व्यस्त रहें तो हमारे पास इन छोटी-मोटी बातों से परेशान होने के लिए समय ही नहीं होगा।

लक्ष्यहीन जीवन भी कोई जीवन है। जीने के लिए जीवन कोई अच्छा व स्पष्ट लक्ष्य तो होना ही चाहिए। अन्यथा जीवन कटी

पतंग की तरह निरुद्देश्य लक्ष्यहीन भटकता रहेगा। यह भटकाव तो जीवन नहीं है। हमें इस भटकाव से बचना चाहिए। जीवन का एक निश्चित लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए। यदि जीवन दिशाहीन होगा तो कटी पतंग की तरह ही हवा के झोंकों से कष्ट पाता हुआ झंझावातों व बाधाओं से कष्ट प्रभावित होता रहेगा। एक पत्थर उठाइये, उसे निश्चित दिशा में निश्चित लक्ष्य की ओर फेंक दीजिए। फिर देखिये, वह पत्थर एक ही दिशा में चलता हुआ सीधे अपने लक्ष्य से टकरायेगा, इधर-उधर भटकेगा नहीं। हवा के झोंको से विचलित नहीं होगा, झंझावातों से परेशान नहीं होगा और तेजी से लक्ष्य पर पहुंचकर ही विश्राम लेगा।

अपने जीवन को कटी पतंग नहीं बनने देना है। स्वयं को पत्थर की तरह मजबूत बनाइये, सामने देखिए, जीवन की अवधि कम है और जीवन का रास्ता बहुत लम्बा है। तेजी से, तीर की तरह बढ़िये और अपने लक्ष्य को भेदकर ही दम लीजिए। जब तीर की तेजी के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे तो छोटी-छोटी बातों से परेशान होने के लिए हमारे पास समय नहीं होगा। तीर के सामने जो भी आयेगा, उसी का भेदन होगा, हर बाधा को पार करता हुआ, उसे नष्ट करता हुआ तीर सीधे अपने लक्ष्य से ही टकरायेगा।

हमें समझना होगा कि मानव जीवन केवल खाने, सोने और मर जाने के लिए नहीं। जीवन का अंतिम लक्ष्य भस्म नही है। भस्म तो इस पंचभौतिक शरीर को होना ही है। इस जीवन के बाद भी लोग यशः शरीर से जीवित रहते हैं वे युग-युगान्तर के लिए अमर हो जाते हैं वही सच्चे अर्थों में मानव होते हैं मनु का अर्थ है मननशील प्राणी और इस मनु का ही पुत्र है मानव। यदि हम इतनी सी बात पर

मनन नहीं कर सके तो हमें मनु का वंशज या उत्तराधिकारी अर्थात् मानव कहलाने का भी अधिकार नहीं है।

हमें अपना लक्ष्य स्वयं ही निर्धारित करना होगा। हमारा लक्ष्य बताने के लिए कोई और महापुरुष अवतरित नहीं होगा। अपनी परिस्थितियों योग्यताओं, क्षमताओं तथा साधनों को ध्यान में रखते हुए लक्ष्य का निर्धारण करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य अलग अलग होता है। किन्हीं भी दो व्यक्तियों का लक्ष्य एक नहीं हो सकता। ऐसा हो सकता है कि कुछ ऐसे लोग हों जिनकी मंजिल अलग-अलग होते हुए भी रास्ते कुछ दूर तक या काफी दूर तक साथ -साथ जाते हों। ऐसे लोग दूरी तक एक साथ चल सकते हैं।

जीवन के प्रभातकाल में, विद्यार्थी जीवन में तो लक्ष्य एक और केवल एक ही होता है अपनी क्षमताओं का विकास करना। बौद्धिक क्षमताओं का विकास करने के लिए विद्या अध्ययन करना होता है। पुस्तकों को पढ़कर, गुरु के चरणों में बैठकर हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। अपने आसपास के वातावरण-परिवेश से अनुभव द्वारा भी बहुत कुछ सीखा जाता है। लोक व्यवहार सीखने का तो यही एकमात्र मार्ग है, दूसरा कोई तरीका है ही नहीं।

मानसिक शक्ति का विकास करने के लिए चिन्तन-मनन का मार्ग अपनाया जाता है। ध्यान-साधना मानसिक शक्ति के विकास का सर्वाधिक सशक्त साधन है। विद्यार्थी जीवन में मानसिक शक्ति का विकास प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए क्योंकि इसी समय जीवन की आधारशिला रखी जाती है और मानसिक शक्ति ही वह सम्बल है, जिसके सहारे हम जीवन का रास्ता सरलतापूर्वक और सफलतापूर्वक तय कर सकते हैं। इसके लिए प्रतिदिन दस मिनट से तीस मिनट

तक का समय मानसिक शान्ति के लिए देना पर्याप्त होगा। उस समय हम अपने इष्ट का नाम लें, सांसारिक झंझटों से मुक्त होकर सम्पूर्ण सृष्टि, विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त अखण्ड आनन्द की अनुभूति करने का प्रयास करें। शान्त होकर बैठें और उस परम आनन्द का अनुभव करें। इससे हमारे तनाव दूर होंगे शान्ति की अनुभूति होगी और मानसिक क्षमता में वृद्धि होगी।

हमें सोचना होगा कि मनुष्य व पशु में अन्तर केवल इस मानसिक क्षमता का ही है। शान्त भाव तथा ध्यान साधना द्वारा मानसिक शक्ति बढ़ाकर ही हम सच्चे मनुष्यत्व को प्राप्त कर सकते हैं, सच्चे अर्थों में मानव कहलाने के अधिकारी बन सकते हैं।

विद्या अध्ययन तथा अपनी क्षमताओं के विकास के बाद हम संसार क्षेत्र में कुछ जौहर दिखाने के लिए उतरते हैं। न्याय व नैतिकतापूर्ण अर्थोपार्जन करना, समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करना, जीवन में आगे बढ़ना इस समय हमारा लक्ष्य होता है और होना चाहिए। यहाँ केवल इतना कहना है कि लक्ष्य निश्चित अवश्य होना चाहिए और अच्छा हो कि लक्ष्य का निर्धारण समयबद्ध ढंग से किया जाये। हालांकि सफलता या प्रगति केवल हमारे ऊपर निर्भर नहीं होती। उसके लिए अनेक परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं। लेकिन उन परिस्थितियों का सही आकलन करके यदि हम समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित करें और उसके लिए समुचित प्रयास करें तो वह समय सारिणी बहुत अंशों तक प्रभावी रहता है। यदि हमने किसी कार्य के लिए तीन वर्षों की अवधि तय की है तो हो सकता है कि वह कार्य ठीक तीन वर्षों में पूरा न हो पाये। उसमें साढें तीन या चार वर्ष भी लग सकते हैं और यह भी हो सकता है कि वह कार्य अनुकूल

स्थितियां बन जाने से दो या ढाई वर्षों में ही हो जाये। लेकिन समयबद्ध योजना होने से जीवन की गाड़ी सरलता से निश्चितता पूर्वक चलती चली जायेगी।

समयावधि निर्धारित करने का यह अर्थ नहीं है कि इसके लिए हम अपनी मानसिक शान्ति ही नष्ट कर लें और जीवन को नरक बना डालें। लक्ष्य निर्धारित कर नियमित ढंग से आगे बढ़ने का उद्देश्य ही यही है कि रोज-रोज के तनावों से मुक्त रहकर शान्तिपूर्वक जीवन जी सकें तथा सफलतायें प्राप्त कर सकें। मानसिक शान्ति खोकर कुछ भी पा लेना घाटे का ही सौदा होगा। हमें यह घाटे का सौदा नहीं करना है। अपनी ओर से तो प्रयास लाभ का सौदा करने का ही होना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का स्थूल लक्ष्य तो अलग-अलग हो सकता है, यो कहें कि होता ही है। लेकिन सभी मनुष्यों के जीवन का एक सामान्य सर्वनिष्ठ लक्ष्य भी है और वह है आनन्द। हम जो तात्कालिक लक्ष्य निर्धारित करते हैं उन सभी का अंतिम साध्य आनन्द की प्राप्ति ही है। सम्पत्ति, वैभव, संतान, यश, पद आदि हम जो कुछ भी चाहते हैं उसका एक और केवल एक ही उद्देश्य होता है जीवन को आनन्दमय बनाना रोज-रोज के दुखों-तनावों व कष्टों से छुटकारा पाना। पर इसके लिए करना क्या है यह प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग ढंग से सोचना होता है और इसीलिए सभी को अलग-अलग लक्ष्य निर्धारित करना होता है।

❖❖ ❖ ❖❖

ॐ

चतुर्वेद सरल पाठ सम्पादक एवम् भाष्यकार, वृहद् संस्कृत धात्वादि कोश, वैदिक शब्दकोश, सरल संस्कृत व्याकरण, वैदिक इतिहास प्रणेता

स्वामी शरण कृत साहित्य

मो. सम्पर्क - 9839105629

1. ऋग्वेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य के इस सार-संक्षेप संस्करण में सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ को भी प्रस्तुत किया गया है। प्रथम बार प्रस्तुत सन्धियों से मुक्त सरल पाठ जन साधारण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 1500.00**

2. अथर्ववेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य की तरह अथर्ववेद का सार-संक्षेप संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 1500.00**

3. सामवेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य की तरह सामवेद का सम्पूर्ण संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 1500.00**

4. यजुर्वेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य की तरह यजुर्वेद का सम्पूर्ण संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 1500.00**

5. वेदायन भाष्य :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का सरल पाठ के साथ ही सरस गेय पद्यानुवाद प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ भी दिया गया है। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल पाठ से साधारण जन भी शुद्ध पाठ कर सकते हैं।
(बृहद आकार) **रु. 400.00**

6. चतुर्वेद सरल पाठ :- प्रथम बार प्रस्तुत सन्धियों से मुक्त चारो वेदों का सरल पाठ जन साधारण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।
(बृहद् आकार) **रु. 2500.00**

7. ऋग्वेद सरल पाठ :- ऋग्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। (बृहद् आकार) **रु. 900.00**

8. सामवेद सरल पाठ :- सामवेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत

किया जा रहा है। **रु. 500.00**

9. अथर्ववेद सरल पाठ :- अथर्ववेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। (वृहद् आकार) **रु. 700.00**

10. यजुर्वेद सरल पाठ :- यजुर्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। **रु. 700.00**

11. वेदायन :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्त का सरस गेय पद्यानुवाद दिया गया है। **रु. 100.00**

12. वैदिक शब्द कोश :- वैदिक पदों (शब्दों) का धातुज अर्थ।
(बृहद आकार) **रु. 900.00**

13. संस्कृत धात्वादि कोश :- पाणिनि तथा काशकृत्स्न प्रोक्त धातुपाठों को समाहित कर सम्पूर्ण धातुकोश तैयार किया गया है। इसमें उपसर्ग, अव्यय, संख्या, सर्वनाम शब्द भी दे दिये गये हैं। इसकी सहायता से वेद सहित सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का अर्थ किया जा सकता है। जन सामान्य के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

14. सरल संस्कृत व्याकरण :- व्याकरण के मूल तत्वों पर आधारित इस पद्धति से शब्द रूप, धातु रूप रटे बिना एक मास में संस्कृत पढ़ना, लिखना व बोलना सीख सकते हैं। तीन दशकों के शोध व प्रशिक्षण अनुभव के बाद प्रस्तुत सबके लिए उपयोगी चमत्कारिक व्याकरण प्रणाली। **रु. 95.00**

15. वैदिक इतिहास :- ब्रह्मा व मनु से आरम्भ कर बुद्ध तक का सम्पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास। सूर्यवंश की सवा सौ पीढ़ियों का इतिहास प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में सूर्यवंश, चन्द्रवंश की शाखाओं सहित, मनु से भोज तक सम्पूर्ण वंशावली भी दी गयी है। **रु. 200.00**

16. ओम् साधना :- ओम् साधना, वैदिक आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना एवम् योग चिकित्सा। **रु. 100.00**

17. चिन्तन प्रवाह :- वैदिक संस्कृति तथा जीवन दर्शन सम्बन्धी चिन्तन। **रु. 500.00**

18. युगबोध :- प्रबन्ध काव्य। **रु. 300.00**

❖❖ ❖ ❖❖

पालीवाल प्रकाशन

मोबाइल - 9839105629, 8687849004

website : www.vedayan.simplesite.com

email : paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com

❖❖ ❖ ❖❖